प्रकाशक :
मैसर्स पब्लिकेशन स्कीम,
57, मिश्रराजाजी का रास्ता,
जयपुर–302001

प्रथम संस्करण

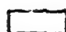
मूल्य : 50 रुपये

वितरक :
शरण बुक डिपो
गलता मार्ग,
जयपुर–302003

आवरण शिल्पी
श्री शुक्ला

मुद्रक :
प्रद्युम्न कुमार शर्मा
श्रीबालचन्द्र यन्त्रालय,
दुर्गापुरा रोड, जयपुर–302011

विषयानुक्रम



अनुवादकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'मरहठा कालीन गुजरात' वास्तव में अलेक्जेण्डर किन्लॉक फॉर्ब्स लिखित गुजरात के इतिहास 'रासमाला' के तीसरे भाग का हिन्दी अनुवाद है। विविध स्रोतों से जुटाकर प्रासंगिक टिप्पणियाँ भी इसमें संदृब्ध की गई हैं जैसा कि प्रथम दो भागों में हुआ है। दूसरे भाग का प्रकाशन 1964 ई. में सम्पन्न हो चुका था। इसके वाद ही मुझे पूर्व प्रकाशक महोदय ने भाग 3 और 4 का काम भी शीघ्र पूरा कर देने को कहा। तदनुसार मैंने 1965 में यह कार्य समाप्त करके पाण्डुलिपि सौंप दी। तव से 1977 तक यह उनके पास पड़ी रही और उनको प्रकाशन के लिए अनुकूल अवसर नहीं मिला। अन्त में 1977 के मध्य में मुझ पर सदय होकर उन्होंने अपनी विवशता प्रकट करते हुए पाण्डुलिपि लौटा दी और मुझे अन्य प्रवन्ध करने को कह दिया।

सन् 1967 में राज्य-सेवा से निवृत्त होने के बाद मैंने जयपुर के महाराजा संग्रहालय (अव म. सवाई मानसिंह द्वि. संग्रहालय) में कार्य करना आरम्भ कर दिया था। यहीं आकर श्री मंगल जी ने मुझे सामग्री लौटाई थी। उस समय मेरा स्वास्थ्य बहुत शिथिल चल रहा था अतः मैंने पाण्डुलिपि यहीं पड़ी रखी और मेरा मन इस ओर से खिन्न-सा हो गया। इसी वीच इस संग्रहालय की रजिस्ट्रार डॉ. (श्रीमती) चन्द्रमणि जी ने उत्सुकतावश इस पाण्डुलिपि को मेरे पास देखा और वड़े चाव से पढ़ डाला। तदनन्तर ये इसको छपवाने का अनुरोध करने लगीं परन्तु मुझे कोई उत्साह नहीं हो रहा था। परन्तु डॉ चन्द्रमणि कला के साथ-साथ विद्यानुरागिणी भी हैं। शायद इनको मेरे श्रम के व्यर्थ चले जाने का भी विचार हुआ। अतः इन्होंने पाण्डुलिपि में आवश्यक संशोधन आदि करके इसको टंकित भी करा लिया और प्रकाशन का अवसर ढूँढ़ने में सचेष्ट रही। संयोग से हम लोगों को पब्लिकेशन स्कीम जयपुर के अधिष्ठाता सियाशरणजी नाटाणी मिल गए और इन्होंने पुस्तक का प्रकाशन करना स्वीकार कर लिया। मैंने अपनी ओर से सम्पूर्ण कार्य चन्द्रमणिजी पर ही छोड़ दिया। सौभाग्य से इन्हीं दिनों में मेरे परम आत्मीय गुरुकल्प मित्र स्व. पण्डित मोतीलालजी शास्त्री के पौत्र चि. प्रद्युम्न कुमारजी शर्मा भी सम्पर्क में आए और मुद्रण कार्य के लिए रुचिपूर्वक तत्पर हुए। इन्हीं हितैषियों ने मिलकर यह पुस्तक छापकर तैयार कर दी है। पुस्तक की अनुक्रमणिका तैयार करने में मेरे मातुल पुत्र चि. रवीन्द्र (व्यास) ने सहायता की स्वास्थ्य शैथिल्य के कारण मुझसे इतना हो भी न पाता अतः मैं इनका हृदय से आभारी हूँ और इनके लिए मंगलकामना करता हूँ।

गुजरात प्रान्त का चित्रोपम इतिहास विविधताओं से भरा पड़ा है। रास-माला में तो फॉर्ब्स साहब ने स्थानीय रास-साहित्य के आधार का साज सजाया जिससे यह सामान्य पाठक के लिए भी रस लेने योग्य बन गया है। अनुवाद में उपलब्ध मूल रासों के पाठ और उनका हिन्दी रूपान्तर देने का प्रयास किया गया है। इसके द्वारा इतिहास के साथ-साथ साहित्यिक और भाषायी अध्ययन के लिए भी अवसर मिलता है। मूल पुस्तक, गुजराती अनुवाद तथा अन्य सन्दर्भों से भी टिप्पणियाँ सम्मिलित की गई हैं। इस भाग में बहुत से दफ्तरी कागज-पत्र और राजाओं के आपसी पत्र-व्यवहार भी उद्धृत हैं। उनके अनुवाद की भाषा ने विषयानुकूल रूप ले लिया है तथा अनेक स्थानों पर राजस्थानी, गुजराती के ठेठ शब्दों का भी प्रयोग हो गया है अतः यदि पाठकों को इसमें भाषा के एकरूप न रहने का आभास हो तो क्षमा करेंगे।

इस पुस्तक में जिस काल का वर्णन है उस समय गुजरात और काठियावाड़ में बहुत से छोटे मोटे जमींदार, ठाकुर, पटायत, जिलायत और राजा थे। इनमें से कुछ तो स्वतंत्र थे और बाकी करद के रूप में भूमि का स्वामित्व भोगते थे। उनका बर्ताव कुछ ऐसा था कि वे जोरदार या बलशाली प्रबन्धकों को तो आसानी से कर की रकम चुका देते थे परन्तु यदि वह कुछ सीधा सादा या कमजोर होता तो उससे लड़ाई करने को तैयार हो जाते थे। इनमें आपसी होड़ और द्वेषभाव की भी कमी नहीं थी इसलिए संघर्ष चलता ही रहता था; छोटी-छोटी बातों पर लड़ाई ठन जाती और आपसी नुकसान होता रहता; मनुष्यों और जानवरों का अपहरण होता, धाडे पड़ते और लूटमार होती और खून-खच्चर होते। इन सभी परिस्थितियों का लाभ उठाकर मरहठों ने इस प्रान्त पर आधिपत्य और करभार स्थापित किये। परन्तु इससे आन्तरिक अशान्ति और अव्यवस्थामें कोई कमी नहीं आई। परिणामस्वरूप अंग्रेजों का हस्तक्षेप हुआ और अन्ततः यहाँ उनकी प्रभुसत्ता की स्थापना हो गई। इन छोटी-मोटी लड़ाइयों, देशी-विदेशी चालों और राजनीतिक उथल-पुथल का वर्णन भी इस भाग में हुआ है जो लघु कहानियों की तरह पढ़ा जा सकता है। फिर भी इनमें सूत्र रूप से ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संघटनाएं यथावत् विद्यमान हैं।

आशा है, यह सब पाठकों को रुचिकर होगा और शोधार्थियों को इससे सूचनाएं प्राप्त करने में सुविधा मिलेगी।

गोपालनारायण

गीता जयन्ती,
मार्गशीर्ष शुक्ला 22, 2037 वि.

आमुख

हरा भरा गुजरात प्रदेश भारत के पश्चिमी क्षेत्र में स्थित है। साबरमती और और माही नदियों से सिंचित इस क्षेत्र के खेत सदैव हरी भरी फसलों से लहलहाते रहते हैं और वृक्ष सुस्वाद फलों से लदे, अधिकांश पहाड़ी भाग में खेती नहीं होती पर जहां भी थोड़ी बहुत होती है, वहां बहुत हरियाली दिखाई देती है। कच्छ के रन का रेगिस्तान भी पश्चिमी गुजरात में है पर इसकी क्षतिपूर्ति बन्दरगाहों से हो जाती है जो इतिहास के आरम्भ से ही प्रमुख व्यापारिक केन्द्र रहे हैं। एक महाराष्ट्र लेखक लिखता है कि सैंकड़ों मीलों तक फैला हुआ यह प्रदेश इंगलिस्तान के उमरावों के अच्छे से अच्छे बगीचों से भी बढ़कर होने का दावा कर सकता है। एलफिन्स्टन ने लिखा है कि हिन्दुस्थान का और कोई प्रदेश इतना फलों-फूलों से भरा और रमणीय नहीं है।

यह क्षेत्र भारत के तीनों जैन, बौद्ध एवं हिन्दूधर्मों के लिए पवित्र माना जाता है।। प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ ने यहीं शत्रुंजय पर्वत पर तपस्या की थी; यहीं जूनागढ़ में प्रसिद्ध बौद्ध सम्राट अशोक ने अपना शिलालेख खुदवाया और यहीं राजा शीलादित्य बौद्ध धर्म में प्रवृत हुआ था। हिन्दुओं के चार प्रसिद्ध धामों में श्री कृष्ण की द्वारका पुरी इसी क्षेत्र में है।

पुरातत्त्व की दृष्टि से यह इलाका मन्दिरों, जलाशयों व अन्य भव्य भवनों से भरा हुआ है। समुद्र किनारे होने के कारण गुजरात निवासी व्यापार में सदैव अग्रणी रहे फलस्वरूप आर्थिक समृद्धि आई और कला-संस्कृति के क्षेत्र में सुरूचि सम्पन्नता एवं विविधता।

सम्पूर्ण गुजरात (सौराष्ट्र एवं काठियावाड़ सहित) छोटे-छोटे खण्डों में बंटा हुआ था जिनके शासक आरम्भ में मैत्रक, गोहिल, चावड़ा, बाघेल एवं सोलंकी कुलों के राजपूत थे। रासमाला के प्रथम खंड में इन्हीं कुलों के आपसी संघर्ष की कथा है पर फार्ब्स की रासमाला केवल लड़ाईयों का इतिहास ही नहीं है वरन् तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। इस पुस्तक का आधार लोकरास साहित्य है, जो पुस्तक के रासमाला नाम से स्पष्ट है; इस कारण कहीं-कहीं ऐतिहासिक तिथियां बेमेल हैं और तथ्यों में अतिश्योक्ति आ गई है परन्तु अन्य दृष्टि से इतिहास सरस और पूर्ण है और तथ्यों से समृद्ध भी क्योंकि इसमें दंत कथाओं का भी सहारा लिया गया है।

वलभी के गोहिलों की उत्पत्ति की गहराई में न जाकर विद्वान लेखक ने अपने सांस्कृतिक अध्ययन को विशद रूप में प्रस्तुत किया है। इसी के साथ गुजरात के प्रसिद्ध स्थानों की संस्थापना और विकास का इतिहास भी आ जाता है। अर्थात् शासक, शासित एवं क्षेत्रीय संस्कृति का बड़ा ही सुन्दर समन्वय हुआ है। शुरुआत होती है वलभी के शीलादित्य से जो, प्राचीन कथाओं के अनुसार एक विधवा ब्राह्मणी का सूर्य के अंश से उत्पन्न पुत्र था। वह अरबों से युद्ध करता हुआ मारा गया। यह बात लगभग 770 ई. की है।

अणहिलपुर पाटन गुजरात का प्रसिद्ध नगर है। इसका संस्थापक वनराज चावड़ा सोलंकियों की चावड़ा शाखा में उत्पन्न हुआ था। जन्म से पहले ही उसके पिता जयशेखर चावड़ा की मृत्यु रणक्षेत्र में हो गई थी। वह वन में पैदा हुआ और शीलगुण नामक जैन साधु के उपासरे में उसका बाल्यकाल बीता। बड़े होकर उसने अपने पराक्रम से राज्य अर्जित किया और उसकी वृद्धि भी की। अपने मित्र अणहिल नामक भीलके नाम पर उसने अपनी नई राजधानी का नाम अणहिलवाड़ा या अणहिलपुर पाटन (पत्तन) रखा। उसका जन्म 720 ई. में हुआ था और अणहिलपुर में 60 वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई (806 ई.)। इस वंश में योगराज और रत्नादित्य महान् शासक हुए। पर बाद में सुयोग्य अधिकारियों के अभाव में राज्य सोलंकियों के हाथ में चला गया। सोलंकी वंश में मूलराज बड़ा प्रतापी राजा हुआ। मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण उसका नाम मूलराज पड़ा था। रत्नमालाकार के अनुसार वह विश्वासघाती, दयाहीन और निरन्तर अपनी उन्नति में तत्पर रहने वाला था। पर एक जैन आचार्य का कथन इसके विपरीत है। उसके अनुसार मूलराज संसार का उपकार करने वाला, उदार और सद्गुणों का भंडार था। सब राजा लोग सूर्य के समान उसकी पूजा करते थे; जो लोग अपना देश छोड़कर उसके देश में बसते थे उन्हें सुख मिलता था; इसी कारण उसने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। यद्यपि उपर्युक्त दोनों मतों में संगति नहीं बैठती पर इतना अवश्य है कि वह अत्यन्त सफल शासक हुआ। इस वंश में कई प्रसिद्ध राजे हुए। भीमदेव का पुत्र कर्ण सोलंकी अपनी दया और उदारता के लिए प्रसिद्ध था। उसने कर्णावती नामक नगरी बसाई और कर्ण सरोवर नामक तालाब बंधवाया। कर्णवती की स्थिति के विषय में तो ठीक से नहीं कहा जा सकता पर अणहिलवाड़ा पाटन से दक्षिण की ओर कुछ ही मीलों की दूरी पर मोढेरा नगर के पास एक गांव है जो आजतक कनसागर (कर्णसागर) कहलाता है। गिरनार की पहाड़ी पर नेमिनाथ का एक भव्य मंदिर है। कहते हैं; यह भी राजा कर्ण का बनवाया हुआ है और इसीलिए "कर्ण विहार" कहलाता है। इसी कर्ण सोलंकी का पुत्र सिद्धराज जयसिंह हुआ जिसका गुजरात के इतिहास में अद्वितीय स्थान है।

सिद्धराज जयसिंह (1094–1143) ने 51 वर्ष राज्य किया। वह बालक ही था तो उसके पिता कर्ण सोलंकी का देहान्त हो गया। बाल्यकाल में वह; अपनी

माता मीनल देवी की संरक्षकता में राज्य संभालता रहा। मीनल देवी राजकाज में बड़ी निपुण और अत्यन्त उदार स्त्री थी। उसने वीरमगांव के पास मीनलसर और धोलका के पास मीनल तलाव नामक सरोवर बनवाए थे। उस समय सरोवर के क्षेत्र में एक गायिका का घर भी आता था पर मीनलदेवी ने उसे न लेकर अपनी उदारता का परिचय दिया। सोमेश्वर मंदिर जाने वाले यात्रियों का कर भी मीनल देवी ने माफ करा दिया जिससे तीर्थयात्रियों को बड़ी राहत मिली। बड़े होने पर जयसिंह ने स्वतंत्र रूप से शासन कार्य अपने हाथ में लिया उसने बहुत से देश जीते पर भोज की नगरी धारा जीत कर उसने चतुर्दिक ख्याति प्राप्त कर ली इस अवसर पर जैन आचार्य हेमचन्द्र ने उसका कीर्तिगान किया। उसने अनेकों मन्दिर बनवाए और प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया जिनमें मूलराज के बनवाए श्रीस्थलपुर में रूद्र महाकाल मन्दिर की मरम्मत उल्लेखनीय है। तब से श्रीस्थलपुर, सिद्धराज के नाम पर सिद्धपुर कहलाया। सिद्धराज का शासन काल गुजरात का स्वर्णयुग था। बड़े-बड़े विद्वान, सुयोग्य सरदार और कुशल राजनीतिज्ञ उसके राज्य की शोभा बढ़ाते थे। इन्हीं सुयोग्य दरबारियों में धारा नगरी के परमार राजा उदयादित्य का पुत्र जगदेव पंवार भी था। कथा है कि उसने एक बार योगिनियों से वरदान में राजा जयसिंह की आयु वृद्धि कराई थी। यह कथा काल्पनिक हो सकती है पर इससे उसकी स्वामिभक्ति का प्रमाण मिलता है। सिद्धराज ने वढवाण अधिपति रा' खंगार को हराया। इसी रा' खंगार की पत्नी राणक देवी थी जिसके पातिव्रत्य की कथा प्रसिद्ध है। वस्तुतः इस कथा ने लोकगाथा का रूप ले लिया है और समस्त उत्तर भारत में गाई जाती है। कथा इस प्रकार है—राणकदेवी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जयसिंह उससे विवाह करना चाहता था पर इसके पहले कि जयसिंह अपनी इच्छा कार्यान्वित करता राणक देवी सोरठ अधिपति रा' खंगार की पत्नी बनगई कुछ दिनों बाद रा' खंगार को शक हुआ कि उसका भानजा; जो सिद्धराज के कुल का था, रानी राणक दे से प्रेम करता है। इस पर भानजा नाराज होकर जयसिंह के पास जाता है और वहां से सेना सहित आकर आक्रमण करता है। युद्ध में जयसिंह की विजय होती है। वह राणकदे को सती होने से मना करता है और हर संभव प्रयत्न करता है कि वह रुक जाए पर रानी राणकदे नहीं मानती और रा' खंगार के साथ सती हो जाती है। उसका रूदन बड़ा ही करुण और हृदय को हिला देने वाला है। सिद्धराज बहुत दु:खी हुआ पर कुछ कर नहीं सका। उसने राणकदे के दोनों पुत्रों को मार दिया था इसलिए सती ने शाप दिया कि सिद्धराज का वंश नहीं चलेगा, और सचमुच उसको कोई संतान नही हुई। अतएव उसका निकट संबंधी कुमारपाल राजा हुआ।

कुमारपाल जैन धर्म का बहुत बड़ा आश्रयदाता हुआ। जैन होते हुए भी उसे युद्ध से विरक्ति नहीं थी। उसने कई राजाओं को हराया जिनमें अर्णोराज और मालवराज बल्लाल मुख्य थे। 1157 ई० के एक ताम्रपट्ट (नांदोल जैन पुस्तका-

लय) में उसे "राजाधिराज, प्रख्यात, राजकुल, का शृंगार, महाशूरवीर और अपने शस्त्रबल से शाकंभरी के राजा को पराजित करने वाला कहा गया है। उसके सेनापति अम्बड़ ने कोकण के राजा को हराया। कुमारपाल के शासनकाल में जैन आचार्य हेमचन्द्र की बहुत प्रधानता रही। कहते हैं कि जिस प्रकार चंद्रमा की कांति से समुद्र की लहरें आकर्षित होती हैं उसी प्रकार उनकी वाणी सुनकर राजा आनंद लहरियों में निमग्न हो जाता था। इन जैन आचार्य के पिता हिन्दू और मां जैन थीं। एक बार जब उनके पिता व्यापार के सम्बन्ध में विदेश गए थे, जैन मुनि देवचन्द्राचार्य बालक चंगदेव (आचार्य हेमचन्द्र का दीक्षा पूर्व नाम) को मांग कर ले गए। वहीं उपासरे में चंगदेव बड़े हुए। आगे चल कर वह विख्यात विद्वान हुए और उन्होंने अभिधान चिन्तामणि, जिनदेव स्तोत्र (जिस पर 1292 ई० में लिखी हुई एक टीका प्राप्त होती है) योगशास्त्र, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, विंशतिवीतराग-स्तोत्र, और 'द्व्याश्रय' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। हेमचन्द्र की प्रेरणा से राजा कुमार पाल ने इक्कीस ज्ञान भंडार स्थापित किए और पुस्तकों के लेखनकार्य को प्रोत्साहित किया। कुमारपाल ने पाटन स्थित सोमेश्वर मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। इस कार्य का भार एक कन्नौज निवासी ब्राह्मण भाव बृहस्पति को सौंपा गया, इसके लिए एक समिति बनाई गई जिसने भाव बृहस्पति के निर्देशन में यह कार्य सम्पन्न किया। कुमारपाल ने अणहिलपुर पाटन में कुमारपालेश्वर महादेव का देवालय बनवाया। देवपट्टन में जैनधर्म का एक ऐसा सुन्दर मन्दिर बनवाया कि देश देश के लोग देखने आए। कुमारपाल के बाद उल्लेखनीय शासक भीमदेव द्वितीय (1179–1215) हुआ जो भोला भीम के नाम से अधिक प्रसिद्ध है।

भीमदेव द्वितीय शक्तिशाली राजा हुआ। मेरुतुंग लिखता है कि उसके राज्य काल में मालवा के राजा सोहडदेव ने गुजरात पर चढ़ाई की पर वह भीमदेव की धमकी सुनकर ही भाग गया। बाद में सोहडदेव के पुत्र अर्जुनदेव ने गुजरात को लूटा। भीमदेव को चौहानों से निरंतर लड़ते रहना पड़ा और इसी के समय में मुहम्मदगोरी का आक्रमण भी हुआ जिसके बाद मुसलमानों का आगमन निर्बाध गति से शुरू हो गया। भीमदेव की चौहानों से लड़ाई का कारण जैतसी परमार की पुत्री इच्छन कुमारी थी जो चौहान पुत्र की वाग्दत्ता पत्नी थी। जब यह संघर्ष चल रहा था, तभी शाहबुद्दीन गोरी के हमलों का भी आतंक था। इस अवसर पर सभी सरदारों ने सलाह दी कि चौहानों से लड़ाई बन्द कर देनी चाहिए और सबको मिल-कर गोरी का सामना करना चाहिए—पीरम के गोहिल सामन्त ने कहा, "लड़ाई बन्द कर देनी चाहिए, परमार का कोई बड़ा अपराध नहीं है। यदि वह सिंह की सी कमर वाली इच्छनी को भेंट कर दे तो बस यही पर्याप्त है। हमें इसी के लिए प्रयत्न सोचने चाहिए।" राणिङ्ग झाला ने कहा, "युद्ध के समय हमें युद्ध की ही बात सोचनी चाहिए, व्यर्थ बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए।" वीरमदेव बाघेला ने कहा,

"हमें चौहान से पारस्परिक समझौता कर लेना चाहिए और मिलकर शाह का सामना करना चाहिए; उसको हराने से हमारे राज्य का विस्तार और कीर्ति का प्रसार होगा।" पर भोले राजा अथवा मूर्ख भीम ने किसी सामन्त की बात नहीं मानी और चौहान से लड़ाई मोल ले ली। बाद में उसे मुसलमानों से भी लड़ना पड़ा, अंततः भीमदेव की हार हुई। मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि जब कुतुबुद्दीन ने अणहिलवाड़ा के बाहर आकर डेरा डाला तो भीमदेव का सेनापति जीवणराय उसको देखकर भाग गया, पीछे से उसकी फौज भी भागी और इस पराजय की खबर सुनते ही भीमदेव राजधानी छोड़कर भाग खड़ा हुआ। इसके बाद गुजरात में बाघेलों का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

भीमदेव के समय से ही लवणप्रसाद का प्रभाव बढ़ रहा था और उसके पुत्र वीरधवल के सहयोग से ही भीम राज्य कर रहा था। राजा भीम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए वीरधवल जीवन भर राणा ही बना रहा पर उसका पुत्र बीसलदेव आगे चलकर अणहिलवाड़ा की गद्दी पर बैठा। अबसे मुसलमान सुलतानों के आगमन से पहले तक गुजरात की राजनीतिक स्थिति अस्थिर ही रही पर सांस्कृतिक दृष्टि से इस युग की उपलब्धियां बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। इसी युग में चन्द्रावती के परमार राजाओं ने अनुपम शिल्प का निर्माण करवाया जिसके उत्तम उदाहरण इन दिनों आबू संग्रहालय में सुरक्षित हैं। देलवाड़ा के प्रसिद्ध जैन देवालयों के निर्माता वस्तुपाल एवं तेजपाल भी इसी काल में हुए। वे अजयपाल के मंत्री रहे। वस्तुपाल स्वयं विद्वान, विद्याप्रेमी और विद्वानों का आदर करने वाला था। उसका लिखा हुआ षोडश सर्गात्मक 'नरनारायणानन्द' नामक महाकाव्य है जो अर्जुन-सुभद्रा परिणय की कथा पर आधारित है। उसने पुस्तकालयों को खुले हाथों दान दिया जिससे पुस्तक लेखन में बड़ी प्रगति हुई।

गुजरात की प्रमुख राजधानी अणहिलपुर पाटन का अन्त अलाउद्दीन खिलजी के हाथों हुआ। सन् 1296 में अपने चचा जलाउद्दीन की हत्या कर वह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। अगले वर्ष ही उसने गुजरात विजय के लिए अपने भाई अलफखां और वजीर नुसरतखां जालेरदी को भेजा। विशाल मुसलमान सेना ने अणहिलपुर पाटन जैसे भव्य नगर को उजाड़ दिया। राजा कर्ण बाघेला भाग गया पर अपने पीछे परिजन, पुरजन एवं धन-सम्पत्ति छोड़ गया जो मुसलमानों के हाथ लगी। उसकी रानी कौला (कमला) देवी भी अलाउद्दीन के हरम की शोभा बनी। कौला देवी के राजा कर्ण से दो पुत्रियां थीं जिनमें एक की तो मृत्यु हो गई थी पर दूसरी देवलदेवी उससे बिछुड़कर अणहिलपुर में ही रह गई थी। कौलादेवी ने बादशाह से आग्रह किया कि उसके राजपूत पति की पुत्री को भी दिल्ली बुला जाए और इसी कारण अणहिलपुर पर पुनः आक्रमण हुआ। अभागा राजा कर्ण बाघेला किसी भी कीमत पर अपनी पुत्री देने को तैयार नहीं था अतः उसने अलफखां-अलाउद्दीन के

सेनापति, का सामना किया और चेष्टा की कि देवलदेवी का विवाह देवगढ़ के शंकर देव से हो जाए। किन्तु यह भी संभव नहीं हुआ और देवलदेवी, अणहिलपुर से देवगिरी जाते समय, रास्ते में एलोरा की गुफाओं के पास अचेतावस्था में मुसलमान फौज के हाथ पड़ गई।

आगे लगभग दो सौ वर्षों तक गुजरात में मुस्लिम सुलतानों का प्रभुत्व रहा और यद्यपि इनके समय में राजपूत सरदारों का भी आधिपत्य कहीं-कहीं बना रहा। इस संबंध में यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि इन मुस्लिम सुलतानों का आधिपत्य रहा, अलाउद्दीन ने बहुतों को मुसलमान बनाया, जिसके फलस्वरूप मोहले सलाम और सुमरा आदि उपजातियां बनीं पर राजपूत शांति से कभी नही रहे। वे आपस में भी लड़ते रहे और यदा कदा बादशाहों को भी परेशान करते। मुगलों से पहले के मुस्लिम शासकों में अहमदशाह प्रथम और महमूद बेगड़ा उल्लेखनीय हैं।

अहमदशाह (1410-1442) मुसलमान होते हुए भी गुजरात निवासी राजपूत था। यह मुजफ्फर शाह प्रथम का पोता था। इसने साबरमती नदी के किनारे एक नगर की नींव डाली (1412) जो इसके नाम पर अहमदाबाद कहलाया। अहमदशाह को गद्दी के लिए बहुत लड़ाई करनी पड़ी क्योंकि मुजफ्फर शाह की मृत्यु के बाद जब अहमदशाह गद्दी पर बैठा तो फिरोज खां नामक उसके चचेरे भाई ने अपना हक प्रकट किया और भड़ौच में अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया। दो वर्ष बाद 1412 में फिरोज खां ने फिर दावा किया और बहुत बड़ी फौज लेकर मोड़ासा में युद्ध करने आया पर हार गया। फिरोज के सहयोगियों में से एक सोरठ के राव की शरण में भी गया इसलिए अहमदशाह सोरठ की ओर मुड़ा। इसका एक कारण और भी था। सोरठ हिन्दुओं का पवित्र एवं रमणीय स्थान था। वहां की चीजों के विषय में निम्नलिखित श्लोक प्रचलित है :—

सौराष्ट्रे पञ्च रत्नानि नदी, नारी तुरंगमः।
चतुर्थं सोमनाथश्च पञ्चमं हरिदर्शनम्।

मुसलमान इतिहासकार ने लिखा है अहमदशाह को गिरनार का किला लेने की प्रबल इच्छा हुई इसलिए उसने विद्रोहियों को उसी दिशा में दौड़ाया और उनका पीछा किया। उस समय तक किसी भी राजा ने मुसलमानों के आगे सिर नहीं झुकाया था इसलिए सोरठ के राजा पर शेर मलिक को आश्रय देने का अपराध लगा कर शाह ने उस पर आक्रमण किया, राव हार गया, उसने अधीनता स्वीकार कर ली और बादशाह को बहुमूल्य भेंट दी। अहमदशाह मन्दिरों को नष्ट करता हुआ अपनी राजधानी को वापस लौटा। अहमदशाह को बहुत लड़ाईयां लड़नी पड़ीं। उसने सोचा कि इस्लाम के प्रसार से शायद कुछ सहायता मिले इसलिए धर्मप्रचार का काम भी

जोरों से हुआ यहां तक कि 'मीराते अहमदी' के लेखक को लिखना पड़ा कि अहमदशाह की कोशिशों से बहुत से लोगों ने धार्मिक प्रकाश प्राप्त किया। सन् 1414 ई० में उसने एक अधिकारी को ताजुल्मुल्क का पद देकर गुजरात में मुसलमानी सत्ता स्थापित करने एवं मूर्ति पूजकों को नष्ट करने का काम सौंपा। इतिहास में अहमदशाह की ख्याति अहमदाबाद बसाने के लिए है। उसने बहमनी सुलतानों को हराया राजपूत राजाओं से कर वसूल किया। उसकी मृत्यु 4 जुलाई 1443 ई० अहमदाबाद में हुई। अहमदशाह के बाद गुजरात के प्रमुख सुलतानों में महमूद बेगड़ा का नाम आता है। उसके समय का विस्तृत विवरण उदयराज कृत राजविनोद महाकाव्य में मिलता है। वह चौदह वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा और गुजरात के राजाओं में सबसे अधिक प्रतापी हुआ। कहते हैं कि पैगंबर मुहम्मद शाह की आज्ञा से उसने सोरठ पर आक्रमण किया और वहां के राव मांडलिक को इस्लाम में दीक्षित किया। उसने सोरठ विजय के बाद सय्यदों तथा अन्य विद्वानों को वहां बसने के लिए बुलाया और एक नया नगर बसाया जो मुश्तफाबाद कहलाया। महमूद बेगड़ा देश विजय और इस्लाम मत के प्रसार में व्यस्त रहा, उसने सिन्ध पर चढ़ाई की, उसके बाद द्वारका और बेट द्वीप के सरदारों पर भी हमले किए; यहां बड़ी कठिनता से उसे विजय प्राप्त हुई। सन् 1371 ई० में उसने गिरनार के पास बसे हुए नए नगर मुश्तफाबाद में अपनी गद्दी कायम की और अहमदाबाद में अपने प्रतिनिधि को रखा। उसने अपना समुद्री बेड़ा भी मजबूत किया। उसके विजय में बहुत सी कथाएं और किवंदंतियां प्रचलित हैं, मीरातेअहमदी में लिखा है कि इस नदी के किनारे ऊंची जगह पर उसने एक उत्कृष्ट महल बनवाया जिसके अवशिष्ट चिन्ह और खंडहर 19 वीं शती तक विद्यमान थे। 1511 ई० में महमूद बेगड़ा की मृत्यु हो गई। उसके वंशजों में कोई बहुत शक्तिशाली नहीं हुआ और अंततः गुजरात पर अकबर ने अधिकार कर लिया। इसके बाद प्रदेश में थोड़ी स्थिरता आई और सम्पूर्ण प्रान्त का अधिकार एक सूबेदार के हाथ में आया। अकबर के समय में अजीज खान कोका और शाहजादा मुरादबख्स तथा जहांगीर के समय में शाहजादा खुर्रम तथा शाहजहां के समय शाहजादा मुराद व बाद मेंजोधपुर के महाराजा अभय सिंह गुजरात के प्रमुख सूबेदारों में हुए। इस काल का विवरण अबुलफज़ल के आईने अकबरी में मिलता है। मुसलमान इतिहासकारों ने राजपूतों के विषय में विशेष नहीं लिखा है पर इसकी पूर्त्ति स्थानीय साहित्य से हो जाती है। जिसका फॉर्ब्स ने खुलकर प्रयोग किया है। मुगल युग में सम्पूर्ण देश में शांति रही और गुजरात की प्रगति हुई। यद्यपि युद्ध की छुट पुट घटनाएं भी होती रहीं पर कोई बड़ी लड़ाई आपस में नहीं हुई। अठारहवीं शती में जब मुगलशक्ति का ह्रास हुआ तो स्थानीय ठाकुरों ने भी सिर उठाया इस शती के आरंभ में गुजरात में भावनगर की स्थापना एक मुख्य घटना थी क्योंकि समुद्रतट पर स्थित होने के कारण यह नगर बाद में बहुत बड़ा बंदरगाह बना। चारणों का कहना है कि

इस नगर के भविष्य के संबंध में जब पंडितों ने विचार किया तो सबने एक स्वर से कहा वाह वाह, यह नगर तो इन्द्रपुरी के सदृश होगा, मणि माणिक से भरपूर रहेगा और इसके शत्रुओं की पराजय होगी।

आगे के पृष्ठों में हम मुगल सत्ता के अंतिम दिनों में गुजरात की अव्यवस्था के विषय में पढ़ेंगे जब मरहठों का आगमन हुआ और उनके आपसी संघर्ष के फलस्वरूप धीरे-धीरे सत्ता अंग्रेजों के हाथ में पहुंच गई। यद्यपि मरहठे और राजपूत नाम मात्र को शासक बने रहे।

संपादिका

प्रकरण पहला

गुजरात में मरहठों का आगमन
अहमदाबाद पर अधिकार[1]

अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में मरहठा राज्य का सेनापति खंडेराव दाभाड़े[2], अपने लुटेरे घुड़सवारों को गुजरात में भेजकर इस प्रान्त से चौथ वसूल करने लगा। पहले तो वह अहमद शाह के नगर, अहमदावाद में आसपास भटकता रहा परन्तु फिर कुछ पीछे हट कर नांदोद और राजपीपला जैसे सुदृढ़ नगरों के चौगिर्द अधिक दृढ़ता से पैर जमाने और वहीं से दक्षिण और गुजरात क बीच के व्यापारी मार्ग पर भी अपनी सत्ता कायम करने के प्रयत्न करने लगा। सन् 1730 ई० में वालापुर की लड़ाई में दाभाड़े की सेना ने अपनी वीरता के कारण ख्याति प्राप्त की और इसी रणक्षेत्र में एक ऐसे सरदार ने भी पहले-पहल कीर्ति अर्जित की जिसके भाग्य में गुजरात प्रान्त के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने का लेख

---

1. इस व अगले प्रकरण के लेख का आधार ग्रान्ट डफ लिखित 'हिस्ट्री ऑफ मरहठाज़' और फॉर्व्स की 'ओरियन्टल मेम्वायर्स' नामक पुस्तकें हैं।

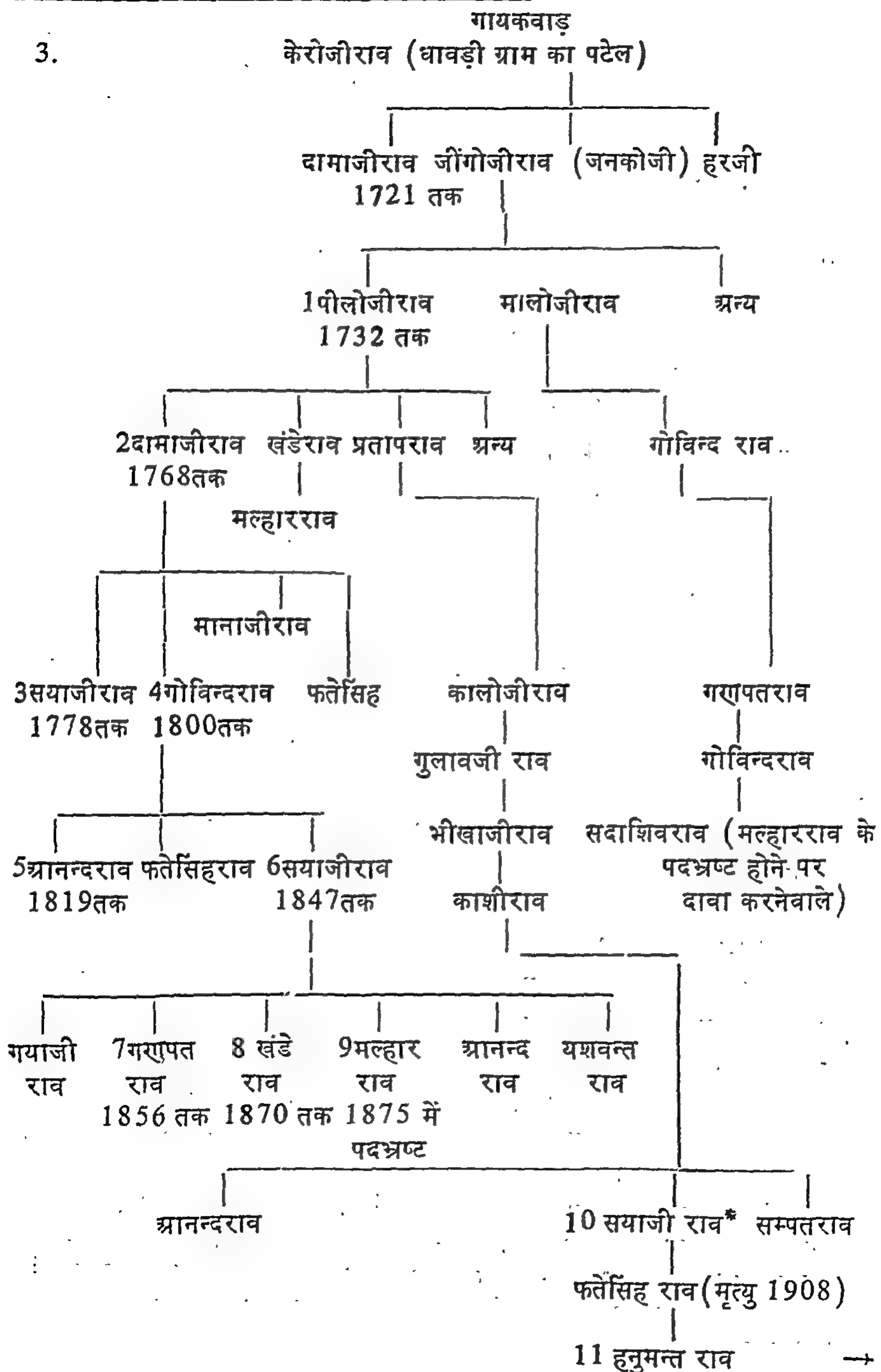
जेम्स कनिङ्घम ग्रान्ट डफ पहले पहल हिन्दुस्तान में 1805 में आया था और फर्स्ट नेटिव इन्फैन्ट्री, वंबई में नौकर हुआ था। वाद में वह पूना के रेज़ीडेण्ट माउन्ट स्टुअर्ट एलफिन्स्टन का सहायक नियुक्त हुआ। वह सन् 1817 में खिड़की की लड़ाई में मौजूद था। फिर, वह सतारा का रेजीडेण्ट वनाया गया; वहीं उसके ग्रन्थ History of the mahrattas के लिए उसे पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई थी। यह ग्रन्थ पहले पहले 1826 में प्रकाशित हुआ था। वाद में, 1863, 1873, 1878, 1912 और 1921 में भी इसके संस्करण निकले।

Oriental memoirs का लेखक जेम्स फॉर्व्स 1749 में पैदा हुआ था और 1765 में कंपनी का नौकर होकर वंबई आया था। 1775 में जव राघोवा के लिए गुजरात में सहायता भेजी गई तो यह कर्नल कीटिङ्ग का प्राइवेट सेक्रेटरी वन कर वहाँ गया था। फिर 1780 में डभोई का कलक्टर नियुक्त हुआ और दो वर्ष वाद जव वह नगर मरहठों को लौटा दिया गया तो यह विलायत चला गया। Oriental memoirs का प्रकाशन चार जिल्दों में 1813-15 ई० में हुआ था। जेम्स फॉर्व्स की मृत्यु 1819 में हुई थी।

2. इस परिवार का मूल पुरुष यशपातिल दाभाड़े था जो पूना के पास तालेगाँव का मुकद्दम था। वह जाति से मरहठा था और शिवाजी के पुत्रों, सम्भाजी और राजाराम का अध्यापक रहा था। उसका पुत्र खंडेराव राजाराम के पक्ष में मुगलों के विरुद्ध लड़ा था। प्रथम पेशवा वालाजी विश्वनाथ ने उसको सेनापति नियुक्त किया था।

था। दामाजी गायकवाड़[3] को सेनापति का सहायक नियुक्त किया गया और 'शमशेर बहादुर' की पदवी देकर उसे सम्मानित किया गया।

3. गायकवाड़



इस विजय के थोड़े ही दिनों वाद खंडेराव और उसका नव नियुक्त सहायक दोनों ही मर गए। त्र्यम्वकराव दाभाड़े को उसके पिता के स्थान पर नियुक्त करके सेनापति की पोशाक प्रदान की गई और जनकोजी गायकवाड़ के पुत्र पीलाजी को उसके काका दामाजी का अधिकार प्राप्त हुआ। कुछ ही वर्षों बाद ऊदाजी पंवार नामक एक दूसरा प्रगतिशील और सवल मरहठा सरदार अपने घुड़सवारों सहित गुजरात और मालवा में आया। उसने गुजरात में लूणावाड़ा तक लूटपाट की और मालवा में भोज के वंश की गद्दी पर अधिकार करके उसी का नाम धारण करते हुए राज्य-संस्थापन किया। इसी समय निज़ामउल-मुल्क[4] को हटाकर शुजाअत खां को गुजरात के सूवेदार सरवुलन्द खां का सहायक नियुक्त किया गया था। निज़ामउल मुल्क के चाचा हमीद खाँ ने उसका सामना किया और मरहठा नायक कन्ताजी भाण्डे[5] को भी चौथ देने का वचन देकर अपने पक्ष में कर लिया। इन दोनों सरदारों ने मिलकर गुजरात की राजधानी से थोड़ी दूर पर ही शुजाअत खां पर आक्रमण

---

* वड़ोदा के सुप्रसिद्ध स्वर्गीय महाराजा, इनको मल्हार राव के पदभ्रष्ट होने के वाद खंडेराव महाराज की रानी जमनावाई ने गोद लिया था पहले इनका नाम गोपालराव था, गद्दी पर वैठने के वाद सयाजीराव नाम पड़ा। गायकवाड़ राज्य का विस्तार लगभग 8600 वर्ग मील का था 2931 ग्राम थे और आवादी लगभग 22 लाख की थी। यहाँ के महाराजा की सलामी 21 तोपों से होती थी।

4. सन् 1722 ई० में जुमलातउल-मुल्क निज़ामउल-मुल्क गुजरात का 51 वां सूवेदार नियुक्त हुआ था और उसने अपने चाचा हमीद खाँ को सहायक वनाया तथा मुनीमखां को सूरत का शासक नियुक्त किया। शाही दरवार में किसी अपमानजनक व्यवहार से असंतुष्ट होकर वह दक्षिण लौट गया और वहाँ उसने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। वादशाह मुहम्मद शाह ने सरवुलन्द खाँ को गुजरात का सूवेदार वनाया और शुजाअत खाँ को उसका सहायक नियुक्त किया। हमीद खाँ अपने पद को छोड़ना नहीं चाहता था अतः दोनों पक्षों में लड़ाई शुरू हो गई।

5. कन्ताजी कदम भाण्ड राजा साहू का कार्यकर्ता था जिसको मालवा भेजा गया था। वह उत्तर-पूर्व की ओर से गुजरात में प्रविष्ट हुआ और दोहद के आस पास इस प्रान्त को लूटता रहा। सन् 1723 ई० में इसी कन्ताजी ने इस प्रदेश पर मरहठा कर (चौथ, सरदेशमुखी और स्वराज्य) लागू किये थे। चौथ=चतुर्थांश। सरदेशमुखी = चौथ पर दशांश। स्वराज्य = शिवाजी की मृत्यु के समय जो प्रदेश उनके अधिकार में था वहा लगने वाला कर स्वराज्य कहलाता था।

करके उसको मार डाला। इस घटना के समय शुजाअत खां का भाई रुस्तम अली सूरत की फौज का सरदार था और सूरत नगर के पास ही पीलाजी गायकवाड़ पर विजय लाभ कर रहा था।

रुस्तम अली ने अपने भाई की हार व मृत्यु का समाचार सुनकर अपने मरहठा शत्रु से सन्धि कर ली और उसे हमीद खां पर चढ़ाई करने में सहायता करने के लिए राजी कर लिया। चालाक मरहठा ने उसके विपक्षियों से भी मेल की बातचीत चला रखी थी, परन्तु वह अपना पक्ष निश्चित किए बिना ही उसके साथ अहमदाबाद तक चला गया। इस प्रकार प्रस्थान करके वे दोनों फाजिलपुर के पास माही को पार करके अड़ास की ओर आगे बढ़े। इसी ठिकाने पर हमीदखां ने उन पर आक्रमण किया परन्तु रुस्तम अली की तोपों के सामने उसकी फौजें ठहर न सकीं। अब पीलाजी गायकवाड़ ने अपना पक्ष चुन लिया था और उसने तोपों को अपने भरोसे छोड़कर रुस्तम अली को शत्रु की भागती हुई सेना का पीछा करने के लिए कहा। ज्यों ही उस शूरवीर मुसलमान ने पीलाजी की इस घातक सलाह का अनुसरण किया त्योंही उसकी तोपों का रुख पलट गया और उसके विश्वासघातक साथी ने उस पर पीछे से हमला कर दिया। रुस्तम अली ने थोड़ी देर तक वीरता से सामना किया परन्तु उसके पास बहुत थोड़ी सेना रह गई थी इसलिए बचना असम्भव जानकर उसने पराजय के बाद कैद होकर दुर्दशा भोगने के डर से अपनी छाती में कटार मारकर प्राण छोड़ दिए।

पीलाजी को इस विश्वासघात के फलस्वरूप कन्ताजी से चौथ में आधा भाग प्राप्त हुआ और वे दोनों मिलकर अपना-अपना हिस्सा वसूल करने के लिए रवाना हुए, किन्तु धन के बंटवारे को लेकर उनमें आपस में अनबन हो गई और हमेशा झगड़ा ही होता रहा। कुछ समय तक तो इन झगड़ों का परिणाम यह हुआ कि शहरों और गांवों पर कर का अधिक बोझा पड़ा, परन्तु जब ये मरहठा सरदार खम्भात के पास पहुंचे और अपनी रीति के अनुसार गांवों आदि को जलाने लगे तो वहां के निवासियों ने उनके झगड़े का कारण जानकर और दोनों में कन्ताजी को श्रेष्ठ समझकर पीलाजी के पास सन्देश भेजा कि वे कुछ रुपया लेकर लौट जावें। पीलाजी ने इसमें अपना अपमान समझा और दूत को कैद कर लिया। कन्ताजी ने उसे छोड़ देने के लिए आग्रह किया और परिणाम यह निकला कि वे दोनों अपना-अपना अधिकार स्थिर करने के लिए हथियार लेकर खड़े हो गए। किले के पास ही खूब लड़ाई हुई और पीलाजी हारकर खेड़ा के पास मातर नामक स्थान को भाग गया। कन्ताजी ने खम्भात से कर वसूल किया। वहां के अंग्रेज कोठीवालों से भी पांच हजार रुपया मांगा गया तो एजेण्टों ने उस कर से मुक्त होने की दलील देते

हुए कहा कि उन्हें साहू राजा की ओर से व्यापार की छूट मिली हुई है, परन्तु यह सुनकर, जैसा कि मिस्टर इन्स (Mr. Innes) ने उत्तेजित होकर लिखा है वे "शस्त्रधारी बदमाश" हंस भर दिए।

हमीद खां ने, यह सोचकर कि उसके सहायक साथ छोड़ कर जा न सकें, यह निश्चित कर दिया कि माही के पूर्वी भाग की चौथ तो पीलाजी वसूल करें और पश्चिम भाग में कन्ताजी। वर्षा ऋतु में अपने देश लौट जाने की प्रथा मरहठों में अब भी प्रचलित थी इसलिए पीलाजी तो सूरत के पास सोनगढ़ चले गए और कन्ताजी खान देश में अपने एक परगने को चले गए।

सरबुलन्द खां एक उत्तम लोकप्रिय सरदार था जिसे अन्याय से काबुल से अलग कर दिया गया था। इस संकट के समय में हमीद खां के भारी उपद्रव को शांत करके गुजरात में पुनः शासन स्थापित करने के लिए बादशाह उससे अत्यन्त नम्रतापूर्वक आग्रह कर रहा था। एक भारी सेना एकत्रित करके उसके अधिकार में दी गई और सरबुलंद खां ने 1725 ई० में उस सेना के साथ अहमदाबाद की ओर प्रस्थान कर दिया। मरहठों से सहायता पाने की आशा छोड़ कर हमीद खां सरबुलन्द खां की सेना के आगमन से पहले ही नगर की रक्षा के लिए कुछ किलेदारों को छोड़ कर भाग निकला था। परन्तु मरहठे माही नदी को पार कर चुके थे इसलिए वे उससे महमूदाबाद में आ मिले। अब उसने राजधानी की ओर वापस कदम बढ़ाए। शहर में नए सूबेदार का पक्ष करने वाला एक दल था जिसने हमीद खां के किलेदारों को हराकर नगर से बाहर कर दिया था। जिस दिन सरबुलन्द खां की सेना का एक भाग अडालज आकर पहुंचा उसी दिन हमीद खां ने भी शाही बाग में डेरा डाला। सरबुलन्द खां की सेना की यह टुकड़ी आवश्यकता से अधिक आगे आ गई थी इसलिए हमीद खां ने इस पर विजय पाई परन्तु उसे इस जीत से बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी। दूसरी लड़ाई की जोखिम उठाने के लिए मरहठे भी तैयार न थे इसलिए अब वह भी उन्हीं के समान लुटेरा बन गया। नए सूबेदार ने परगने-परगने में लूटमार बन्द करने के लिए अधिकारी नियुक्त कर दिए थे और असाधारण प्रबन्ध कर रखा था, परन्तु फिर भी कन्ताजी और पीलाजी ने वर्ष के आठ महिनों तक अपना लूटमार का धन्धा जारी रखा और वर्षा आने पर अपने-अपने स्थान को लौट गए। महाराष्ट्र इतिहासकार लिखता है कि "एक मोहक शान्ति आने लगी, वर्षा का आरम्भ होते ही फिर हरियाली छा गई और गुजरात की मनोरम भूमि, जो सैकड़ों मीलों तक इंगलैण्ड के धनिकों के बगीचों से समता कर सकती है, शीघ्र ही बढ़ती हुई हरियाली और वनस्पति के कारण अपने स्वाभाविक सुन्दर परिधान से मण्डित हो गई। जहां थोड़े समय पहले सदा के झगड़ों, दिन दहाड़े मारधाड़, रक्षकों के होते हुए भी कारवानों (व्यापारी संघों) की लूट और गांवों के झुलसने व ऊजड़ होने के अति-

न्वित और कुछ नहीं दिखाई देता था वहां अब शान्ति अपने राज्य का प्रसार करती हुई प्रतीत होती थी।'

सरबुलन्द खां ने मरहठों की लूट मार को बन्द करने का भरसक प्रयत्न किया और बारम्बार बादशाह को रुपया भेजने के लिए प्रार्थना की क्योंकि उसका अधीनस्थ देश इतना धनहीन हो गया था कि वहां से कुछ आमद होना प्रत्यक्ष ही असंभव प्रतीत होता था। जब उसकी मांग पर किसी ने ध्यान न दिया तो उसने चौथ देकर कन्ताजी और पीलाजी का मन मनाने का प्रयत्न किया परन्तु वह इसमें भी निष्फल हुआ क्योंकि मरहठे कर तो पूरा वसूल करते थे परन्तु देश की रक्षा की कोई परवाह नहीं करते थे। अन्त में, बाजीराव पेशवा[6] का भाई चिमनाजी अप्पा एक बड़ी सेना लेकर आया और उसने धोलका को लूट लिया तथा पिटलाद से भारी कर वसूल कर लिया। उसने अपने भाई की ओर से यह स्वीकार किया कि यदि उसे गुजरात में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार मिल जाए तो वह इस देश को अन्य लुटेरों से मुक्त कर देगा। सरबुलन्द खां ने यह बात स्वीकार कर ली और साथ ही यह भी तय कर लिया गया कि ढाई हजार मरहठा घुड़सवार निरन्तर गुजरात में बने रहेंगे और शाही सत्ता को कायम रखने में सहायता देंगे। साहू राजा की ओर से बाजीराव ने यह भी स्वीकार किया कि वे अपदस्थ जमीदारों व अन्य ऐसे लोगों को जो देश की शान्ति को भंग करते हैं आश्रय नही देंगे और न उनका साथ देंगे। समझौते के इस वाक्य से उनका आशय पीलाजी गायकवाड़ से ही था क्योंकि वह गुजरात के भीलों और कोलियों से मिल गया था और इसी लिए मुसलमान उससे बहुत डरने लगे थे।

पेशवा और सरबुलन्द खां में यह समझौता होते ही त्र्यम्बकराव दाभाड़े ने दूसरे मरहठों से मेलजोल करना व सेना एकत्रित करना आरम्भ कर दिया। जब उसके पास पैंतीस हजार सेना इकट्ठी हो गई और

---

6. पेशवा फारसी शब्द है जिसका अर्थ प्राइम मिनिस्टर या प्रधान मन्त्री है पहले-पहल दक्षिण के बहमनी राजाओं ने इस पद को प्रचलित किया था। अहमदनगर के बुरहान खां निजाम शाह ने यह पदवी पहले-पहल कावर सिंह नामक ब्राह्मण को 1529 ई० में प्रदान की थी। (देखो. ग्रान्ट डफ)। सन् 1656 ई० में साम्राज पन्त को पेशवा नियुक्त करके शिवाजी ने इसका पुनरारम्भ किया था। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर शिवाजी ने इस पद का नाम फारसी से बदल कर मराठी में प्रधान (अष्ट प्रधान का मुख्य) रखा। 1714 ई० में राजा शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को पेशवा नियुक्त किया। चार वर्ष पश्चात् इसी महामन्त्री ने शाही दरबार से मरहठों की स्वतन्त्रता प्रमाणित करने वाली स्वीकृति प्राप्त की। पेशवाओं की वंशावली इस प्रकार है :—

निज़ामउल मुल्क ने सहायता देना मंजूर कर लिया तो वह दक्षिण पर आक्रमण करने की योजना बनाने लगा। पीलाजी गायकवाड़, कन्ताजी, रघूजी कदम भाण्डे, ऊदाजी और आनन्दराव पंवार तथा अन्य कितने ही सरदारों ने उसका साथ दिया और उन्होंने प्रकट किया कि पेशवा साहू राजा के राज्य का लोभ करता है इसलिए हम लोग उसका बचाव करने के लिए दक्षिण पर चढ़ाई करते हैं। शत्रुओं के तैयार होने से पहले ही बाजीराव उनका सामना करने का निश्चय कर चुका था। यद्यपि उसकी सेना संख्या में कम थी, परन्तु उसमें पुराने पायगां[7] के सवार थे और कितने ही अच्छे-अच्छे कीर्ति प्राप्त मरहठा मानधारी सरदार भी थे इसलिए वह शीघ्रता से गुजरात की ओर बढ़ा और तुरन्त ही नर्मदा को पार कर गया। यहां, पीलाजी गायकवाड़ के पुत्र दामाजी की अध्यक्षता में एक फौज की टुकड़ी के साथ उसकी सेना के अग्रभाग की मुठभेड़ हुई और वह बुरी तरह हारा, परन्तु बाजीराव इस अवरोध से हताश न हुआ। वह आगे बढ़ा और पीलाजी के अधिकारस्थ डभोई तथा बड़ोदा नगरों के बीच में उसका शत्रु से सामना हुआ और यहां पर उसकी निर्णायिक विजय हुई जिससे मरहठा राज्य पर सत्ता स्थापित हो गई।

यह महत्वपूर्ण लड़ाई पहली अप्रेल सन् 1731 को हुई थी। बाजीराव ने, जब उसके देशवासियों के साथ लड़ाई करने का प्रसंग आया तो, सदा की नीति के विपरीत उसने मेलजोल बढ़ाने का निश्चय किया। सेनापति के नए सिपाही टिक न सके और पहला हमला होते ही भाग गए। कन्ताजी ने भी भागने में उनका साथ दिया और अब खंडेराव दाभाड़े के कुछ पुराने साथी ही उसके पुत्र की रक्षा करने को रह गए। बाजीराव घोड़े पर सवार होकर लड़ रहा था और अवसर के अनुकूल वीरता दिखा रहा था। उसका शत्रु हाथी पर था; जब उसने अपनी सेना को भागते हुए देखा तो हाथी के पैरों में सांकलें डाल देने की आज्ञा दी। रणक्षेत्र में तुमुल युद्ध हुआ, परन्तु बहुत देर तक निश्चय नहीं हो सका कि कौन-सा पक्ष विजयी होगा। अन्त में, जब त्र्यम्बकराव ने अपने बाण को कान तक खींचा तो अचानक एक गोली आकर लगी और वह गिर पड़ा।

---

1. बालाजी विश्वनाथ	सन् 1714 से 1720 तक
2. बाजीराव प्रथम (बल्लाल)	सन् 1720 से 1740 तक
3. बालाजी बाजीराव	सन् 1740 से 1761 तक
4. माधव राव	सन् 1761 से 1772 तक
5. नारायण राव	सन् 1772 से 1773 तक
6. सवाई माधव राव	सन् 1773 से 1795 तक
7. बाजी राव द्वितीय	सन् 1796 से 1818 तक

7. इतिहास प्रसिद्ध महाराष्ट्र रिसाले तीन भागों में बांटे जा सकते हैं (1) खासा (2) सिलहदार और (3) पिंडारी।

इस प्रकार विजय प्राप्त करने के पश्चात् बाजीराव सरबुलन्द खां की सलाह से रणक्षेत्र में घायल होकर भागे हुए पीलाजी के नगर बड़ोदा पर अधिकार करने के लिए तैयार हुआ। परन्तु वह मन्त्रणा अगस्त के महीने में हुई थी अतः वर्षा ऋतु नजदीक आ जाने के कारण पेशवा सतारा लौट गया।

प्रायः प्रत्येक घरेलू युद्ध के बाद जैसे भाव जनता में उत्पन्न होते हैं वैसे ही दाभाड़े पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् बाजीराव के प्रति भी कितने ही लोगों में ईर्ष्या पैदा हो गई थी जिसे मिटा देना कोई आसान काम नहीं था। पेशवा ने जनता का समाधान करने के लिए अनेक प्रयत्न किए। उसने त्र्यम्बकराव दाभाड़े के बालक पुत्र यशवन्त राव को उसकी माता की देखरेख में सेनापति का पद प्रदान किया; और पहले की तरह पीलाजी को ही उसका सहायक नियुक्त किया तथा उसकी वंशपरंपरागत पदवी 'शमशेर बहादुर' के साथ 'सेना खासखेल' की उपाधि भी प्रदान की। इसके बाद, भविष्य में झगड़े न हों इसलिए साहू राजा के समक्ष एक लेख तैयार किया गया जिस पर पेशवा और सेनापति ने 'सही' की। उस लेख में यह निश्चय हुआ कि गुजरात और मालवा में एक दूसरे की अधिकारगत भूमि में वे नहीं घुसेंगे। सम्पूर्ण गुजरात प्रान्त की व्यवस्था सेनापति करेगा, परन्तु वह वहां की उपज का आधा भाग पेशवा की मारफ़त सतारा सरकार को देगा।

सरबुलन्द खां ने बादशाह को मदद भेजने के लिए प्रार्थना करते हुए लिखा था कि यदि उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया जाएगा तो इससे बहुत आपत्ति व अपमान का सामना करना पड़ेगा। इस पर ध्यान देना तो एक ओर रहा, दरबार में उसके द्वारा मरहठों को चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने के अधिकार दे देने की बात पर बहुत अप्रसनन्ता प्रकट की गई और मारवाड़ के राजा अभयसिंह को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। अभयसिंह सेना लेकर अपने नए पद पर अधिकार प्राप्त करने के लिए रवाना हुआ। सरबुलन्द खां ने थोड़ी देर तक तो उसका सामना किया, परन्तु फिर वह दिल्ली चला गया जहां पर उसके साथ अनुचित व्यवहार हुआ व उसको बहुत अपमान सहना पड़ा।

उस समय सरबुलन्द खां के नीचे भड़ौंच का अधिकारी अब्दुल्ला बेग था। पहले यह परगना निजामउल मुल्क को व्यक्तिगत परगने के रूप में मिला था। उसी का नौकर अब्दुल्ला बेग उससे 'नेक आलम खां' का पद प्राप्त करके अब इस परगने को अपना समझने लगा था और न अभयसिंह की परवाह करता था न मरहठों की।

सन् 1732 ई० में अभयसिंह के एक अधिकारी ने बड़ोदा पर फिर कब्जा कर लिया। परन्तु, प्रजा पीलाजी गायकवाड़ को बहुत मानती थी। वह मैदान में आ डटा और कितनी ही लड़ाइयां जीतकर उसने मुख्य २ किले अपने अधिकार में

ले लिए। राठौड़ सरदार ने पीलाजी को समाप्त करने का निश्चय किया और इसी कार्य को पूरा करने के लिए उसने सन्धि की सलाह करने के वहाने दूत भेजे। उस समय पीलाजी ठासरा परगने के डाकोर ग्राम में, जहां श्री रणछोड़ जी का प्रसिद्ध मन्दिर है, पड़ा हुआ था। वहीं पर ये दूत उससे मिले। पीलाजी को किसी प्रकार का सन्देह न हो इसलिए वे उसके पास वार-वार आते जाते रहे। एक दिन वे शाम तक उसके पास ठहरे और जब अंधेरा होने लगा तो विदा होकर तम्बू से बाहर निकले। उनमें से एक मनुष्य 'कोई आवश्यक वात कहनी वाकी रह गई है' इस वहाने से वापस गया और उसने पीलाजी के कान में वात कहने के लिए झुक कर उसके कलेजे में कटार भोंक दी।

पीलाजी गायकवाड़ पर घात करने से अभयसिंह ने जैसी आशा की थी वैसा लाभ न हुआ। वड़ोदा के पास ही पादरा ग्राम का देसाई पीलाजी से मित्रता रखता था, उसने देश के भीलों और कोलियों को खड़ा किया। पीलाजी के भाई महादजी यह गायकवाड़ ने जम्बूसर से प्रस्थान किया और वड़ोदा वापस ले लिया। तभी से गायकवाड़ वंश के अधिकार में चला आता है। पीलाजी का वड़ा लड़का दामाजी वड़ी भारी सेना लेकर सोनगढ़ से[8] रवाना हुआ और पूर्वी गुजरात के कितने ही मुख्य-मुख्य परगनों पर अधिकार करने में कृतकार्य हुआ। इसके पश्चात् वह जोधपुर तक आक्रमण करता हुआ चला गया इसलिए अभयसिंह को, अहमदावाद अपने एक सहायक के भरोसे छोड़ कर, अपने वंशपरंपरागत राज्य की रक्षा के लिए घर की ओर रवाना होना पड़ा।

अव दामाजी गायकवाड़ गुजरात में जम वैठा और उसने दो ही वर्ष में अपने पिता के प्रतिस्पर्द्धी कन्ताजी कदम भाण्डे को उस प्रान्त से निकाल दिया। दूसरे ही वर्ष सन् 1735 ई० में कन्ताजी होल्कर को साथ लेकर गुजरात पर चढ़ आया। वे अचानक आए और अहमदावाद के उत्तर में कितने ही शहरों को लूटकर ईडर, पाल्हनपुर और वनास नदी तक के भाग से कर वसूल करके जैसे आए थे वैसे ही शीघ्रता से लौट गए। थोड़े ही समय वाद अभयसिंह को गुजरात से अलग करने की आज्ञा आ गई और नजीव-उद्दौला मोमिन खां को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया, परन्तु अभयसिंह का सहायक रतनसिंह अहमदावाद पर अधिकार न होने देता था इसलिए नए सूवेदार को दामाजी गायकवाड़ से सहायता लेनी पड़ी। दामाजी

8. सोनगढ़ भीलों का एक प्राचीन किला था। यह डाँग वन के पश्चिमी किनारे पर सूरत से लगभग 40-50 मील की दूरी पर स्थित था। पीलाजी ने 1719 ई० में इस पर अधिकार कर लिया और तभी से यह दामाजी की लुटेरी सेना के पड़ाव का मुख्य स्थान रहा। वाद में दामाजी 1766 ई० में पाटन आ गया। गुजरात में यह सोनगढ़ गायकवाड़ वंश का "पालना" (झूला) कहलाता है।

और मोमिन खां पगड़ी- बदल भाई बन गए और गायकवाड़ ने रतनसिंह को गुजरात से निकालने के लिए रंगाजी नामक सरदार की अध्यक्षता में एक फौज भेजी। रंगा जी और मोमिन खां ने नगर पर हमला किया और तुरन्त ही उन्हें पीछे हटना पड़ा परन्तु अन्त में रतनसिंह ने आत्मसमर्पण कर दिया। रंगाजी और मोमिन खां ने 20 मई 1737 के आसपास अहमदाबाद पर अधिकार किया और यह तय हुआ कि प्रान्त के शासन तथा आय में मुगलों और मरहठों का बराबर-बराबर हिस्सा रहेगा। यह एक ऐसा समझौता था जिससे भविष्य में दोनों पक्षों में निरन्तर झगड़े होते रहने की आशंका बन गई। उधर उसी वर्ष बादशाह ने निज़ाम उलमुल्क को दिल्ली बुलाकर समझाया बुझाया और उसके लड़के को नज़ीबउद्दीन के नाम से एक बार फिर गुजरात व मालवा का शासक नियुक्त कर दिया और यह शर्त ठहरी कि वह मरहठों को उस प्रान्त से निकाल दे। परन्तु, इस शर्त को पूरी करने की शक्ति निज़ाम में न थी। पेशवा से गहरी लड़ाई लड़ चुकने के बाद उसे सन्धि करनी पड़ी जिसमें यह निश्चित हुआ कि वह बाजीराव को बादशाह से सम्पूर्ण मालवा प्रान्त और चम्बल तथा नर्मदा के बीच के प्रदेश पर पूरे अधिकार दिला देगा।

दामाजी गायकवाड़ अब सत्ताधारी होने लगा था क्योंकि त्र्यम्बक राव की विधवा की ओर से व्यवस्थापक के रूप में वह दाभाड़े की सम्पूर्ण सैन्य-शक्ति का उपयोग करता था और यशवन्तराय यद्यपि इस कार्य को करने के लिए काफी बड़ा हो गया था, परन्तु उसमें इतनी योग्यता न थी। दामाजी गुजरात में सरदेशमुखी आदि मरहठा कर और काठियावाड़ से वार्षिक खंडणी (कर) फरवरी सन् 1743 में मोमिन खां की मृत्यु होने तक लगातार वसूल करता रहा। बादशाह की आज्ञा से अब्दुल अजीज़ खां गुजरात का नया सूबेदार नियुक्त हुआ था, वह उस समय दक्षिण में औरंगाबाद में था। वहां से कुछ सहस्र मनुष्यों को साथ लेकर वह अपने नये पद पर अधिकार करने के लिए सूरत होता हुआ भड़ौंच के पास अंकलेश्वर पहुंचा। यहां पर अचानक दामाजी के पक्षवालों ने उस पर हमला कर दिया और उसकी टुकड़ी को पूरी तरह छिन्नभिन्न कर डाला। इसके बाद दिल्ली से फकीरुद्दौला को (1744 ई० में) अहमदाबाद पर कब्जा करने के लिए भेजा गया परन्तु रंगाजी की अध्यक्षता में दामाजी की फौज ने उसका सामना किया और उसको अहमदाबाद पर अधिकार नहीं करने दिया। उस समय दामाजी सतारा में था इसलिए अवसर देखकर उसके भाई खण्डेराव ने प्रबन्ध में कितने ही अपने अनुकूल हेर-फेर कर डाले। उसने रंगाजी को हटाकर किसी अपने पक्ष के आदमी को अहमदाबाद का अधिकारी नियुक्त किया और फकीरुद्दौला को भी कुछ सहायता दी, परन्तु दामाजी तुरन्त ही वहां पर आ पहुंचा और उन दोनों के सम्बन्ध मरहठों के स्वार्थ को कुछ हानि पहुंचाने के पहले ही टूट गए। उसने बोरसद का किला व नडियाद का उपजाऊ परगना खंडेराव को दे दिया और उसको बड़ोदा में अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके रख दिया।

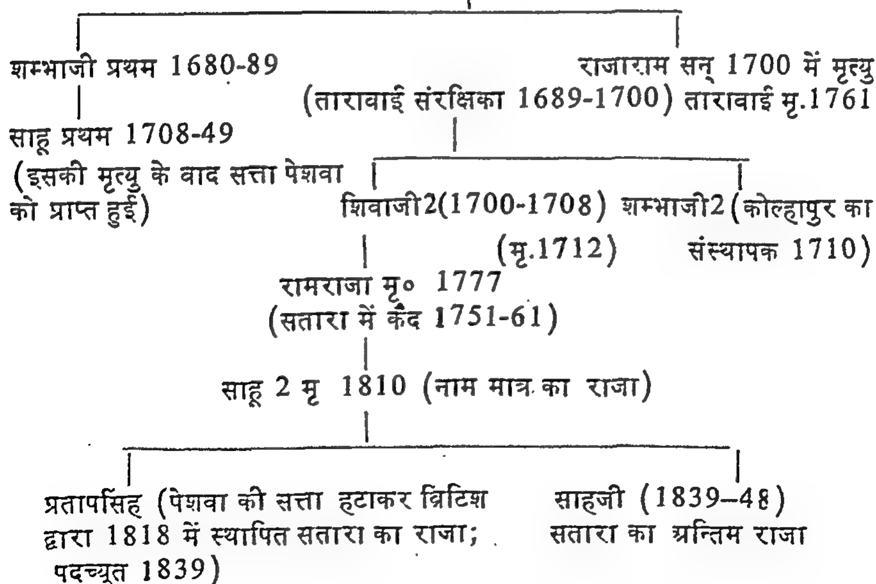
इस बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य से दामाजी अपने कुटुम्बियों पर अपने बड़प्पन का सिक्का जमाने व उसकी सत्ता में बाधा डालने वाली कितनी ही बातों को रोकने में सफल हुआ। उसने फकीरुद्दौला के अधिकार को स्वीकार नहीं किया और इसके विपरीत अपने पुराने मित्र मोमिन खां के भाई व लड़के का पक्ष लिया।

सन् 1751 ई० में शिवाजी के पुत्र राजाराम की माता ताराबाई ने दामाजी गायकवाड़ को सतारा आकर राजा व मरहठा राज्य को ब्राह्मणों के पंजे से छुड़ाने के लिये लिखा। ताराबाई ने पहले ही राजा को बहुत समझाया था कि उसके नौकर बालाजी बाजीराव ने उसकी जिस सत्ता का अपहरण कर लिया था उसको वह पुनः प्राप्त करे, परन्तु वह सफल न हुई इसलिए जब उसे दामाजी गायकवाड़ के आ पहुंचने के समाचार मिले तो उसने पेशवा को सतारा के किले में बुला कर कैद कर लिया। पहले तो एक बार दामाजी ने पेशवा के सरदारों को हरा दिया और सतारा जाकर ताराबाई से भेंट की परन्तु बाद में उसे पीछे हटने और पेशवा से समझौता करने के लिए बाध्य होना पड़ा। दामाजी को अपने वश में देखकर पेशवा ने उससे अब तक के गुजरात से वसूल हुए कर के रुपये व उस देश का बहुत-सा भाग सौंप देने के लिए कहा। दामाजी ने उत्तर दिया 'मैं तो दाभाड़े का मातहत हूं, मैं इस मांग को पूरी नहीं कर सकता।' इस पर पेशवा ने गायकवाड़ और दाभाड़े के कितने ही कुटुम्बियों को एक गढ़ी में कैद कर दिया और फिर चालाकी से गायकवाड़ की छावनी को लूट लिया तथा दामाजी को कैद करके पूना भेज दिया। वहां से छोड़ने के पहले पेशवा ने उसके सामने बड़ी-बड़ी सख्त शर्तें रखीं—कि गुजरात के चढ़े हुए कर के रूप में पंद्रह लाख रुपये जमा कराया जाए और जो प्रदेश गायकवाड़ वंश के अधिकार में है उसका आधा तथा जो वह भविष्य में जीते उसका आधा पेशवा के अधिकार में दे दिया जाए। दामाजी ने आधा प्रदेश व जहां-जहां से कर, उपज का भाग, सरदेशमुखी व लूट का धन मिले उसमें से खर्चे का रुपया कम करके बाकी में से आधा भाग देना स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त, आवश्यकता पड़ने पर पेशवा की सहायता के लिए दस हजार घोड़े रखने, दाभाड़े के सहायक के पद से उसके भाग के गुजरात प्रान्त की आय में से पांच लाख बीस हजार रुपया वार्षिक कर जमा कराने, राजा के नौकरों के खर्चे के लिए कुछ वार्षिक रकम देने, इस समझौते के फलस्वरूप अधिकार में आए हुए परगनों में थाने नियुक्त करने में पेशवा की सहायता करने और सम्पूर्ण सौराष्ट्र द्वीपकल्प में से कर वसूल करने के कार्य में मदद देने की शर्तें भी दामाजी ने कबूल कीं। उक्त समझौते पर अमल करने के लिए पेशवा के छोटे भाई रघुनाथ राव अथवा राघोबा ने गुजरात प्रान्त पर चढ़ाई की। दामाजी को कैद से छोड़ दिया गया था इसलिए वह भी अपनी सेना लेकर प्रान्त में घुसते ही उससे आ मिला। अब वे दोनों मिलकर कर वसूल करते और देश पर अधिकार करते हुए आगे बढ़ते चले गए। इस तरह अहमदाबाद के किले तक पहुंचने में उनके मार्ग में कोई बाधा न आई।

उस समय गुजरात की राजधानी (अहमदाबाद) जवांमर्द खां बाबी के हाथ में थी। इसको स्वर्गीय मोमिन खां के भाई ने शुरू में मुगलों के अधिकार में जो भाग था उसका अफसर नियुक्त किया था, परन्तु जब दामाजी कैद में पड़ा था उस समय इसने सम्पूर्ण शहर पर अपनी सत्ता जमा ली थी और गायकवाड़ के लिए केवल कर उगाहने का अधिकार मात्र छोड़ दिया था। जब राघोबा और दामाजी अहमदाबाद पहुंचे तो उस समय जवांमर्द खां पाल्हनपुर गया हुआ था, परन्तु वे कोट की दीवारों पर चढ़ कर नगर पर कब्जा करते इसके पहले ही वह आ पहुंचा जिससे किलेदारों में नया उत्साह उत्पन्न हो गया और उन्होंने अधिक दृढ़ता के साथ हमले को रोका। जवांमर्द खां को इस कार्य के उपलक्ष में बहुत प्रतिष्ठा मिली और नगर छोड़ देने पर पाटण, वड़नगर, राधनपुर, बीजापुर और कुछ दूसरे परगने भी उसको दिए गए। अन्त में, सन् 1755 ई० के अप्रेल मास में अहमदाबाद पर मरहठों का पूरा कब्जा हो गया। वहां के राजस्व को पेशवा और गायकवाड़ आधा-आधा बांट लेते थे, परन्तु किलेदार सब पेशवा की तरफ के रहते थे और आजकल जो किला गायकवाड़ की हवेली कहलाता है उसमें केवल दामाजी गायकवाड़ की फौज रहती थी।

शिवाजी का वंश-वृक्ष

शिवाजी भोंसले 1627-80



प्रकरण दूसरा

गुजरात में ब्रिटिश का आगमन

बुशियर (Bourchier) 17 नवम्बर 1750 से बम्बई का गवर्नर नियुक्त हुआ। इसके बाद मरहठों और अग्रेजों के सम्बन्धों में अधिक निकटता आने लगी। उस समय सूरत में मुगलों की सत्ता बहुत कमजोर पड़ जाने से वहां पर अव्यवस्था फैल गई थी इसलिए सुव्यवस्था स्थापित करने और अपने हक व नगर में व्यापार की नींव जमाने के लिए अंग्रेजों को पेशवा का आश्रय लेने की बहुत आवश्यकता थी। परन्तु, पेशवा उनको मनचाही सहायता न दे सका और जब उन्होंने अपना कार्य बिना सहायता लिए ही अपने-आप आरम्भ कर दिया तो बम्बई बन्दर पर चढ़ाई करने के बहाने पेशवाने उनको असफल कर दिया। यद्यपि अंग्रेजों को बहुत से अफसरों व सैनिकों की हानि उठानी पड़ी फिर भी उन्होंने 4 मार्च, 1759 ई० को सूरत का किला अपने अधिकार में ले ही लिया। थोड़े ही समय बाद उनको गुजरात में भी अपना राज्य जमाने के लिए प्रयत्न करने पड़े। सन् 1771 में इन लोगों ने भडौंच के नवाब के विरुद्ध सूरत वाले अधिकारों के लिए दावा किया। कुछ दिनों के लिए तो यह खटपट टल गई और नवाब से सन्धि भी हो गई—परन्तु, इस सन्धि की बहुत सी शर्तें नवाब को लाभप्रद नहीं थीं इसलिए उसने जल्दी ही उसको रद्द कर दिया। अंग्रेजों ने पूर्व-नियोजित तैयारी से आक्रमण कर दिया और 18 नवम्बर, 1772 को भडौंच पर कब्जा पा लिया। इस लड़ाई में अंग्रेजों का एक निपुण और वीर योद्धा जनरल डेविड वेडरबर्न मारा गया।

इतने ही में दामाजी गायकवाड़ अपने पीछे चार पुत्रों को छोड़कर मर गया। इनमें सबसे बड़ा सयाजी राव था परन्तु उसका जन्म दामाजी की दूसरी स्त्री से हुआ था इसलिए पहली स्त्री के पुत्र गोविन्दराव ने अवस्था में छोटा होने पर भी गद्दी पर अपना अधिकार प्रकट किया। माणकजी और फतहसिंह दोनों ही दामाजी की छोटी स्त्री से पैदा हुए थे। माधवराव पेशवा ने पहले तो गोविन्दराव के हक को मान लिया परन्तु बाद में उसकी न्यायसभा ने उस बात को अस्वीकार कर दिया और सयाजीराव को 'सेना खासखेल शमशेर बहादुर' की पदवी दे दी। परन्तु, सयाजी राव मूर्ख था इसलिए पेशवा ने फतहसिंह को उसका सहायक नियुक्त किया। माधवराव की मृत्यु और उसके भाई नारायण राव के वध के पश्चात् उनके चाचा राघोबा, जो बाजीराव का छोटा पुत्र था, कुछ समय के लिए पेशवा नियुक्त हुआ।

उसने सयाजी राव को हटाकर गोविन्दराव को गायकवाड़ की गद्दी पर बिठाया। फतहसिंह से राज्य लेने के लिए गोविन्द राव ने तुरन्त गुजरात की ओर प्रस्थान कर दिया और उसी समय से इन दोनों भाइयों के सहायकों में लम्बे झगड़े का सूत्रपात हुआ।[1]

राघोबा का अधिकार अधिक दिन न चला। होल्कर और सिंधिया ने पूना के मंत्रियों से मिलकर 1775 ई० के जनवरी मास में उसका सामना किया इसलिए वह भागकर गुजरात में बड़ोदा चला गया जहां पर उसका सहायक गोविन्दराव अपने भाई को पकड़ने में लगा हुआ था। पदभ्रष्ट पेशवा के गुजरात में आने का एक और भी आशय था कि बम्बई सरकार से सहायता प्राप्त करने के लिए कुछ समय पहले के हुई सन्धि-चर्चा को वह फिर से चलाना चाहता था। अन्त में 6 मार्च के दिन दोनों पक्षों में सन्धि हो गई और अंग्रेजों ने राघोबा को सैनिक-सहायता देना स्वीकार कर लिया। तदनुसार उसकी गुजरातस्थित सेना से मिलने के लिए कुछ फौज बम्बई से जहाज द्वारा रवाना की गई। सूरत पहुंचने पर इस सेना को राघोबा की संकटमयी स्थिति का हाल विदित हुआ। मंत्रियों की सेना ने उसको बड़ोदा का घेरा उठाने और माही के पास अड़ास के मैदान में युद्ध करने को बाध्य

---

1. सूरत का बन्दरगाह ही ऐसा स्थान है जहां से ब्रिटिश लोगों का व्यापार भारत में पनपा। सब से पहले जो अंग्रेज वहां आकर उतरा था वह विलियम हॉकिन्स (William Hawkins) था। वह 1608 ई० में हैक्टर (Hector) नामक जहाज से आया था। अंग्रेज उसी समय से लगे रहे और पुर्तगालियों का प्रबल विरोध होते हुए भी मुगल दरबार से किसी तरह सूरत में फैक्ट्री कायम करने का फरमान उन्होंने प्राप्त कर लिया। बाद में, वह स्थान पश्चिमी भारत में ब्रिटिश फैक्ट्रियों का केन्द्र बन गया; बम्बई में अंग्रेजों ने 1661 ई० में स्थान प्राप्त किया परन्तु वह स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुकूल नहीं रहा। ओविङ्गटन (Ovington) का कहना है कि बम्बई में मनुष्य की जिन्दगी दो बरसात की ही होती है। सूरत पर हमले बहुत होते थे। शिवाजी ने 1664 और 1670 ई० में इसको ध्वस्त किया; इसलिए धीरे-धीरे पश्चिमी समुद्र-तट पर बम्बई ही अंग्रेजों का अड्डा बन गया। इस रद्दोबदल के समय में एक विचित्र घटना यह हुई कि 1683–4 में कीगविन (Keigwin) ने विद्रोह कर दिया; उसने कहा कि बम्बई में उसका अधिकार (इंगलैण्ड) के बादशाह की ओर से था; उसने सूरत में रहने वाले कम्पनी के गवर्नर सर जॉन चाइल्ड (Sir John Child) को अस्वीकार कर दिया।

—देखिए स्ट्रेची (Strachey) लिखित Keigwin's Rebellion (Clarendon Press, 1916)

किया जहां पर उसकी पूर्ण रूप से हार हुई। कर्नल कीटिंग (Col. Keating) की अध्यक्षता में अंग्रेजी सेना पदच्युत पेशवा राघोवा को लेकर खम्भात की ओर रवाना हुई और 17 मार्च को वे लोग जमीन पर उतरे। एक महीना बीतते-बीतते राघोवा की भागी हुई सेना भी उनसे धर्मज नामक गांव में आ मिली। यह ग्राम खम्भात से ग्यारह मील उत्तर में है। अब यह संयुक्त फौज 3 मई को मातर पहुंची। इस स्थान से इन लोगों ने अपना रुख बदल लिया और पूना जाने के विचार से 5 मई को मातर से रवाना होकर आठ तारीख को नडियाद जा पहुंचे। यहां एक सप्ताह ठहर कर उन्होंने नगर से कर वसूल किया। इसके बाद यह सेना नडियाद से माही की ओर प्रस्थान करके अड़ास पहुंची। यह वही स्थान था जहां पर पहले रुस्तम अली परास्त होकर मारा गया था और जहां पहले राघोवा की पराजय हुई थी। इसी स्थान पर 18 मई के दिन युद्ध हुआ और मरहठों की हार हुई, परन्तु अंग्रेजों का भी बहुत ज्यादा नुकसान हुआ। 29 तारीख को कर्नल कीटिंग भडौंच आया और अपनी सेना के घायलों को वहीं छोड़ कर नर्मदा के पास पड़ाव डाले हुए शत्रुओं पर उसने हमला किया। परन्तु, उसकी मरहठी सेना की अव्यवस्थित चाल से शत्रुओं को पता चल गया और वे अपनी तोपें नदी में डालकर उत्तरी किनारे की ओर चले गए। अब, यह निश्चय हुआ कि वर्षा ऋतु तो गुजरात ही में बिताई जाए और अच्छा मौसम आते ही पूना की ओर प्रस्थान कर दिया जाए। ब्रिटिश फौजों के लिए वर्षा ऋतु डभोई के किले में बिताने की बात तय हुई इसलिए कर्नल कीटिंग ८ जून को नर्मदा के उत्तरी किनारे-किनारे उधर रवाना हुए। भावा पीर की तरफ शत्रुओं पर अचानक छापा मारने का प्रयत्न करने के बाद अंग्रेजी सेना नदी का किनारा छोड़कर डभोई की तरफ मुड़ गई। असाधारण वेग के साथ वर्षा शुरू हुई इसलिए सामने किसी शत्रु के न होते हुए तथा निश्चित स्थान की दूरी 20 मील से अधिक न होते हुए भी अंग्रेज अफसरों को अपने लश्कर के साथ अणहिलपुर के महाराजाओं द्वारा बनवाए हुए कालजीर्ण किले की चारदीवारी में शरण लेने के लिए पहुंचने में पंद्रह दिन से भी अधिक समय लग गया।

गुजरात पर पहली ब्रिटिश चढ़ाई का इस प्रकार अन्त हुआ। यद्यपि यह प्रयत्न बिलकुल निष्फल तो नहीं कहा जा सकता परन्तु इसका कोई तात्कालिक फल भी नहीं मिला। बंगाल में नए अधिकारों के साथ कायम हुई प्रधान सरकार ने पदच्युत पेशवा का पक्ष लेने की बात का समर्थन नहीं किया इसलिए दोनों पक्षों में शत्रुता बंद हो गई और वर्षा के बाद रास्ते खुलते ही कर्नल कीटिंग का लश्कर राघोवा को साथ लेकर सूरत लौट आया।

कुछ वर्षों बाद अंग्रेजों के साथ ही पूना सरकार की सीधी लड़ाई हुई। इस लड़ाई का प्रधान कारण प्रसिद्ध नाना फड़नवीस[2] था। पहली जनवरी सन् 1780

---

2. नाना फड़नवीस माधव राव प्रथम का मंत्री था। माधव राव 1772 ई० में मर गया और उसका भाई नारायण राव गद्दी पर बैठा परन्तु 1772 ई० →

को अंग्रेजी सेनापति जनरल गोडार्ड (Gen. Goddard) अपनी फौज के साथ सूरत से रवाना हुआ और ताप्ती नदी को पार करके उत्तर की तरफ चला। जल्दी ही उसका तोपखाना व रसद भी आ पहुंची और वह डभोई के किले पर, जो उस समय पेशवा के अधिकार में था, हमला करने के लिए आगे बढ़ा। उधर, अंग्रेज सरकार के असैनिक अफसरों ने मिलकर एक फौज बना ली और नाना फड़नवीस के पक्षकारों को सूरत और भड़ौंच के परगनों से बाहर निकाल दिया। अठारह जनवरी के दिन जनरल गोडार्ड का लश्कर डभोई के आगे पहुंचा और दो दिन बाद गोलाबारी शुरू करने की तैयारियां हो रही थीं कि मरहठा किलेदार रात्रि को किला खाली करके चले गए। फतहसिंह को उस समय गायकवाड़ राज्य का मालिक स्वीकार कर लिया गया था और उसके साथ सन्धि चर्चा भी चल रही थी। कुछ समय बाद उसने एक दूसरे के शत्रु के विरुद्ध सहायक होने की शर्त पर हस्ताक्षर कर दिए। इस सन्धि-पत्र की शर्तों के अनुसार माही नदी के उत्तर में जो पेशवा का राज्य था वह गायकवाड़ को मिला और सूरत व भड़ौंच के जिलों में जो गायकवाड़ की जमीनें थीं वह अंग्रेज सरकार के अधिकार में आ गईं। जनरल गोडार्ड उत्तर की ओर बढ़ता रहा और १० फरवरी को पहले-पहल गुजरात की मुसलमानी राजधानी के आगे उसने अंग्रेजी झण्डा फहराया। मरहठा सूबेदार ने आत्मसमर्पण नहीं किया इसलिए 12 तारीख को गोलाबारी शुरू हुई और दूसरे ही दिन किले की दीवार में घुसने का रास्ता बना लिया गया। मनुष्यता के नाते, दया के भावों और शहर में

में ही उसके काका रघुनाथ राव के षड्यंत्र द्वारा वह मार दिया गया। नारायण राव ने हकदार माधवराव द्वितीय की भरपूर सहायता की और उसे रघुनाथ राव के षड्यन्त्रों से बचाता रहा। सन् 1776 ई० में हुई पुरन्धर की सन्धि तक अंग्रेज रघुनाथ राव की सहायता करते रहे। नाना फड़नवीस ने बड़ी चतुराई के साथ अंग्रेजों से दो युद्ध किये जिनका अन्त 1782 की सालबाई की सन्धि से हुआ। उसने माधवराव द्वितीय को पूर्णतया अपनी देखरेख में रखा परन्तु अन्त में 1795 में वह आत्मघात करके मर गया। नाना फड़नवीस ने बाजीराव द्वितीय को भी कुमार्गों से बचाने का पूर्ण प्रयत्न किया परन्तु प्रतिस्पर्द्धी सिन्धिया की चालों के कारण वह असफल हुआ और अन्त में उसकी बुरी आदतों के कारण ही बाजीराव का पतन हुआ। नाना फड़नवीस की मृत्यु 1800 ई० में हुई। वह बुद्धिमान् और देशभक्त राजनीतिज्ञ था तथा अंग्रेजों का बड़ा भारी शत्रु था।

[अधिक जानकारी के लिए Grant Duff, Vol. II, chap. xli, Autobiographical Memoir of the early life of Nana Farnavis, trans. by Briggs in T. R. A. S. 1829 और Memoir by A. Macdonald (Bombay American Mission Press, 1851) देखना चाहिए।

अत्याचार न हो इन विचारों को लेकर, दूसरे दिन हमला बन्द रखा गया और यह प्रतीक्षा की गई कि शायद किलेदार आत्म-समर्पण कर दें। परन्तु, जब ऐसा न हुआ तो पन्द्रह तारीख को सुबह अंग्रेज सिपाहियों की टोलियां अन्दर घुसने के लिए तैयार हुईं। अब, किलेदारों ने भी युद्ध किया परन्तु जब उनके तीन सौ आदमी मारे गए तब वे परास्त हो गए। इस प्रकार गुजरात की राजधानी पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इतने ही में जनरल गोडार्ड को खबर मिली कि सिन्धिया और होल्कर बड़ी भारी घुड़सवार फौज लेकर आ रहे हैं और 29 तारीख को नर्मदा पार करके बड़ोदा के पास आ पहुंचे हैं। अंग्रेज जनरल ने जब उस तरफ कूच किया तो वे अपनी सेना के साथ पावागढ़ की ओर लौट गए।

इसी बीच मरहठा घुड़सवारों ने डभोई को आ घेरा। उस समय डभोई का शासन नागरिक अफसर मि० जेम्स फार्ब्स के हाथ में था जो आगे चलकर "प्राच्य संस्मरण" (Oriental Memoirs) नामक पुस्तक के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हुआ। मरहठा घुड़सवारों का घेरा किले की दीवारों पर से दिखाई तो देता था परन्तु वह तोप के गोलों की पहुंच से बाहर था। किले की रक्षा करने वाले लश्कर में तीन यूरोपीय अफसरों की अध्यक्षता में तीन पल्टनें, कुछ यूरोपीय गोलन्दाज व नाविक सिपाही और पांच टुकड़ियां सिन्धी व अरब पैदल सिपाहियों की थीं। एक नागरिक और एक फौजी अफसर उस समय मरहठों की छावनी में मेहमान थे। इन दोनों ने अपने नगर में घिरे हुए देशवासियों के पास किसी तरह गुप्त रीति से यह खबर भेजी कि वे आत्मसमर्पण कर दें क्योंकि उनके सभी प्रयत्न बेकार जाएंगे। परन्तु, डभोई में एक दूसरे ही प्रकार का जोश फैल रहा था। जेम्स फार्ब्स के पास थोड़ी सी पुस्तकों का संग्रह था जिसमें मुख्य रूप से कुछ वार्षिक रिपोर्टें और विश्वकोष भी मौजूद थे। इन पुस्तकों में से उसने कितने ही सन्धि-प्रस्ताव पढ़ रखे थे और वह जानता था कि यदि आवश्यकता आ ही पड़े तो सम्मानपूर्ण शर्तों पर सन्धि की जाए। इसके अतिरिक्त उसने दुर्ग निर्माण विद्या, गोलाबारी आदि ऐसे ही अन्य विषयों पर भी ध्यानपूर्वक मनन किया था इसलिए उसने किले की दीवारों, बुर्जों व दरवाजों की मजबूती कराने व मरहटी तोपों का उपयोग करने का प्रबन्ध भी कर रखा था परन्तु अहमदाबाद से सेना लेकर जनरल गोडार्ड के आ पहुंचने के कारण ये तैयारियां काम में न आ सकीं। उधर मरहठों के लश्कर ने भी अपना घेरा उठा लिया और वे वापस लौट गए।

इसके बाद कितने ही कारणों से बहुत सी हारजीत की लड़ाइयां होती रहीं जिनका गुजरात के हितों पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता रहा। अन्त में, 17 मई, सन् 1782 ई० के दिन महादजी सिंधिया[3] की मध्यस्थता में अंग्रेजों और मरहठा

3. महादजी सिन्धिया अपने समय का सबसे बड़ा सरदार था। सन् 1778 ई० में बम्बई सरकार ने पूना सरकार के विरुद्ध, जो उस समय नाना फड़नवीस के

→

जाति के सरदारों में सालवाई[4] की सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार, जिस पर 24 फरवरी 1783 तक पूर्ण रूप से अमल नहीं हुआ था, यह तय हुआ कि 1775 ई० में लड़ाई शुरू होने के पहले गुजरात में जो देश जिसके अधिकार में था वह उसी के पास रहे। वड़ोदा राज्य की भूमि का बटवारा न करना निश्चित हुआ और फतहसिंह से लड़ाई के जमाने का कर उगाहने का पेशवा का अधिकार भी अस्वीकृत हुआ। गवर्नर जनरल ने अपनी परिषद् (कौन्सिल) सहित यह घोषित करते हुए कि महादजी सिन्धिया ने 1779 ई० के जनवरी मास में जो वड़गांव स्थान पर बम्बई सरकार की उत्तम सहायता की और उस समय उनकी निगरानी में जो अंग्रेज भेजे गए थे उनका सत्कार करने व उनको छोड़ देने में जो दया दिखलाई उस उपकार को मानते हुए भड़ौंच का उपजाऊ परगना उनको भेंट कर दिया। इस प्रकार गुजरात के जो परगने मरहठों को वापस मिलने को थे उनमें डभोई, जिनोर और अन्य ऐसे प्रान्त भी थे जो मिस्टर फार्व्स के अधिकार में थे, और जिनके लिए उनके पास आज्ञा पहुंच गई थी कि वे तुरन्त उन मरहठा अधिकारियों के सिपुर्द पर दिए जावें जो उन्हें सम्हालने के लिए आवें। साथ ही, भड़ौंच के अधिकारी और कौन्सिल को भी आज्ञा मिली कि वे उस प्रसिद्ध नगर और आसपास के उपजाऊ परगनों को महादजी सिन्धिया के गुमाश्ते भास्कर राव के अधिकार में दे दें।

जब डभोई और भड़ौंच मरहठों को लौटाए गए उस समय का वर्णन 'ओरियन्टल मेमॉयर्स' के लेखक ने किया है। यह वर्णन जानने योग्य और मनोरंजक है। हम इस वर्णन को लेखक के शब्दों में ही यहां पर उद्धृत करते हैं। मिस्टर

अधिकार में थी, युद्ध की घोषणा कर दी और पूना नगर पर आक्रमण करने के लिए एक फौज भेजी जिसका अध्यक्ष कर्नल ईगरटन (Egerton) था जिसका स्थान शीघ्र ही कर्नल कॉकबर्न (Cockburn) ने ले लिया था। तालेगांव स्थान पर बहुत कुछ हिचकिचाहट के बाद अंग्रेज सेनापति ने 11 जनवरी 1779 को वापस लौटने का निश्चय किया परन्तु सिन्धिया ने उसको वड़गांव में आ घेरा और इस शर्त पर छोड़ा कि अंग्रेजों ने 1773 से तब तक जो देश जीते थे वे वापस लौटा देंगे। इस अपमानपूर्ण सन्धि को, जिसे प्रायः 'वड़गांव का समझौता' कहते हैं, बम्बई सरकार ने और इङ्गलिस्तान के डायरेक्टरों ने अस्वीकार कर दिया। इसके बाद ही (1789) सिन्धिया ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और सम्राट का पद ग्रहण किया। दक्षिण लौटने पर उसने नाना फड़नवीस के विरुद्ध बालक पेशवा का पक्ष लिया। 1794 में वह मर गया और उसका पोता दौलत राव गद्दी पर बैठा जिसको 1803 ई० में वैलेजली ने असेई के युद्ध में हराया था।

4. यह स्थान मध्य प्रदेश में है, पहले ग्वालियर (मध्यभारत) रियासत में था।

फार्ब्स कहते हैं कि "जब यह खबर सब जगह फैल गई कि डभोई और उससे सम्बद्ध परगने मरहठों को वापस दे दिए जाएंगे और जब मेरी विदाई का निश्चित दिन आ पहुंचा तो नगर के ब्राह्मण और मुखिया लोग मुझ से दरबार में भेंट करने आए और उन्होंने स्थिति के इस परिवर्तन पर दुःख प्रकट किया। उन्होंने मुझे नजरें भेंट करने की इच्छा प्रकट की परन्तु मेरे अस्वीकार कर देने के कारण उन्हें इतना दुःख हुआ कि मुझे उनसे कहना पड़ा कि मैं एक चीज उनसे मांगना चाहता था परन्तु संकोचवश पहले न मांग सका—अब चूंकि वे मुझे भेंट करना ही चाहते थे इसलिए यदि वे वह वस्तु मुझे दे दें तो मैं उसे बिना किसी संकोच के ग्रहण कर लूंगा। इसके बाद डभोई में बची हुई हिन्दुओं की बहुत सी प्राचीन निशानियों, शहर की टूटी फूटी इमारतों में कुराई के काम के नमूनों, जहां तहां पड़े हुए खम्भों और खण्डित मूर्तियों आदि के विषय में कुछ आश्चर्य और उनके द्वारा बहुत उपकृत होने का आभार प्रकट करते हुए मैंने बाहरी खण्डहरों में से चुनकर कुछ नमूने ले जाने की आज्ञा मांगी। मैंने यह भी कहा कि मैं इन अवशेषों को यूरोप ले जाकर वहां अपने बगीचे में इनके लिए एक मन्दिर बनवाऊंगा और वहीं स्थापित करूंगा। मेरी इस प्रार्थना को सुनकर उन लोगों को बहुत आश्चय हुआ और वे सब चुप हो गये। उन्हें यह सन्देह तो नहीं हुआ कि मैं उनके धर्म का उपहास करूंगा परन्तु उन्होंने यह जानने की इच्छा प्रकट की कि एक ईसाई हिन्दुओं की धार्मिक मूर्तियां क्यों रखना चाहता था। यूरोप के लोगों की सामान्य जिज्ञासा, उन्हें इन पूर्वी कुराई के नमूनों को दिखाने का आत्मसंतोष और वह आनन्दमयी विचारधारा जो सहस्रों मोदभरे संस्मरणों के साथ प्रिय दूरदेश से अपने देश में लाई हुई इन प्राचीन वस्तुओं को देखकर मेरे मन में प्रवाहित होगी—यह सब बातें उन लोगों को समझाने में मुझे कुछ कठिनाई प्रतीत हुई।"

"जिस समय मेरी इस अपूर्व मांग पर, कुछ धर्मगुरु ब्राह्मणों के साथ एकान्त में परामर्श करने के लिए, उन्होंने मुझ से विदा मांगी उस समय उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे। जब दूसरे दिन वे लोग मेरे पास आए तो एक ओर तो मेरी विदाई का समय निकट आ रहा था इसलिए उनके चेहरे उदास दिखाई पड़ते थे और दूसरी ओर उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि वे बड़ी उदारता के साथ मेरी मांग को स्वीकार करने में समर्थ थे। उन्होंने कहा 'आप अपने आदमी भेजकर इच्छानुसार नमूने चुनवा लें और उन्हें मित्रता के नाते अपने देश में ले जाकर मन्दिर में स्थापित करें।' मैंने ऐसा ही किया और कुछ हिन्दू कारीगरों को भेजकर टूटे-फूटे मन्दिरों की दीवारों में से कुछ मूर्तियां और 'हीरा दरवाजे' के बाहर की तरफ से कुराई के काम के नमूने मंगवा लिए। ये सब चीजें स्टेनमोर पहाड़ी पर इसी अभिप्राय से बनाई हुई एक अष्टकोण इमारत में आठ विभिन्न समुदायों में अपने-अपने स्थान पर सजावट के रूप में रखी हुई हैं। इस इमारत के ऊपर की ओर नीबू के पेड़ों का झुरमुट है और पास ही में बहुत से सुन्दर-सुन्दर कमलों वाला एक

तालाब है। जब दक्षिण की ओर से बहने वाली मन्द-मन्द वायु से यहां के फूल और पत्ते हिलते हैं तो मुझे गुजरात के पवित्र तालाबों का स्मरण हो आता है।"

अन्त में ग्रन्थकार भडौंच के लिए रवाना हुआ और वहां भी उसे ऐसा ही दृश्य देखने को मिला—

"भडौंच के निवासी ब्रिटिश शासन की सुविधाओं के अभ्यस्त हो हो गए थे इसलिए वे इस नवीन परिवर्तन से असंतुष्ट हुए और भास्कर राव के आगमन की खबर सुनकर डरने लगे; परन्तु, उन्हीं दिनों में एक ऐसी खबर उड़ी कि मालाबार के तट पर फिर लड़ाई शुरु हो गई इसलिए भास्कर राव के पहुंचने में कुछ देर होगी और भडौंच के लोगों को एक झूठी आशा बंध गई कि कोई राज्य परिवर्तन नहीं हुआ है। ब्रिटिश सरकार का ही शासन उन पर बना रहे, इसके लिए विभिन्न जाति और धर्म के लोगों ने किसी प्रकार की प्रार्थना, क्रिया और हवन बलि आदि करने में भी कमी न की। यह मुझे अच्छी तरह याद है और इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि जब हम लोगों की विदाई का दिन निश्चित हुआ तो सभी समाज और वर्ग के लोगों में हार्दिक शोक फैल गया। अंग्रेजों का अधिकार होने से पहले भडौंच मुगलों के राज्य में था और यहाँ एक मुसलमान नवाब शासन करता था, इसलिए आगामी परिवर्तन से उनके शासन में क्या-क्या हेर-फेर होंगे इस बात को वे लोग अच्छी तरह जानते थे। दूसरे देशी स्वेच्छाचारी राजाओं की अपेक्षा मरहठों के राज्य में स्वेच्छाचार अधिक होता है; वे सभी तरह से निर्दयता-पूर्वक पैसा लूटते हैं और प्रत्येक सुराज्य की उन्नति सम्पत्ति के साधनभूत व्यापार व कृषि आदि को उनके शासन में किसी प्रकार की भी सहायता नहीं मिलती। यद्यपि मुसलमानों में भी धन का लोभ तो कम नहीं है, परन्तु वे उसे उदारतापूर्वक खर्च भी करते हैं; वे उपयोगी और सजावट के कामों को प्रोत्साहित करते हैं तथा कला और विज्ञान को संरक्षण देते हैं।

भडौंच को महादजी सिन्धिया के अधिकार में देने के लिए 1783 के जुलाई मास की 9वीं तारीख निश्चित की गई थी। उसी दिन भास्कर राव भडौंच आया और यथाविधि दरबार करके उसका आदर सत्कार किया गया तथा नगर के दरवाजों की कुंजियां उनके हस्तगत करदी गईं। नर्मदा नदी को पार करके सूरत पहुंचने के लिए हम तट की ओर रवाना हुए और नगर के मुखिया लोग भी चुपचाप हमारे पीछे-पीछे आए। जब हम लोग कम्पनी के छोटे जहाज में सवार हुए तो अचानक एक काली बदली उठी और हम पर वर्षा का संपात हुआ। अब, हमारे दुःखी मित्र चुप न रह सके और स्वेच्छाचारी मरहठों के आशंकित अत्याचार को भूलकर करुणापूर्ण स्वर में बोल उठे 'भडौंच के दुर्भाग्य पर आकाश आंसू बहा रहा है।'

मैंने यह सब उल्लेख इस बात का विरोध करने के लिए किया है कि अंग्रेजों पर बहुत से निराधार दोष लगाए जाते हैं व इनके प्रति बहुत सी निर्मूल धारणाएं

बनाली जाती हैं जिन पर यूरोप में सहज ही विश्वास कर लिया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हिन्दुस्तान में बहुत से उच्च (अंग्रेज) अधिकारियों में से कुछ ऐसे भी हैं जो अवश्य ही घृणा के पात्र हैं। हमारे देश में भी ऐसे अधिकार-प्राप्त लोग निर्दोष नहीं है। द्रव्य और सत्ता का लालच कभी-कभी बड़े-बड़े दृढ़ विचारों वाले लोगों को भी विचलित कर देता है—परन्तु, अन्त में वह घड़ी आ पहुंचती है जब कि वे मोह से दूर भागते हैं और विशुद्ध निर्दोष अन्तःकरण ही में सुख लाभ करते हैं। धन का गबन करने वाला, यूरोपीय हो अथवा हिन्दुस्तानी, प्रत्यक्ष में मानवता के नियमों को वह माने चाहे न माने परन्तु हृदय में विराजमान कोई अदृश्य द्रष्टा उसकी सम्पूर्ण प्रसन्नता व सुख को नष्ट कर देता है और इसके बाद अपने निर्णय में कभी भूल न करने वाला वह न्यायाधीश अपने न्याय और सत्य के नियमों की अवहेलना करने वाले को पूर्णतया दण्डित करता है। विश्वबन्धुत्व, उदारता और परोपकार बुद्धि के आधार पर कार्य करने वाले जन-सम्प्रदाय पर ये कथित दोष घटित नहीं होते।"

अब से भड़ौंच सिन्धिया के अधिकार में उस समय तक बना रहा जब तक उसकी ब्रिटिश सरकार से लड़ाई न हो गई। बड़ोदा की सहायक सेना ने, जो कर्नल वुडिंगटन की अध्यक्षता में थी, 29 अगस्त 1803 को अचानक हमला करके इस पर अपना अधिकार कर लिया।

फतहसिंह गायकवाड़ अपने घर के ऊपर के खण्ड से नीचे गिर गया और 21 दिसम्बर, 1789 ई० को उसकी मृत्यु हो गई। अब उसके भाई मानाजी और गोविन्दराव में रीजेन्सी के लिए झगड़ा हुआ जो चार वर्ष बाद मानाजी की मृत्यु होने तक शान्त न हुआ। गोविन्दराव को अब यद्यपि गद्दी का हक निर्विरोध प्राप्त हो गया था परन्तु पेशवा से राजधानी छोड़कर आने की आज्ञा मिलने में उसको कठिनाई पड़ी। पेशवा माधवराव प्रथम गोविन्दराव और उसके पिता को धोदप के पास कैद करके 1768 ई० में पूना ले गया था। जब मानाजी को गद्दी मिली थी तब उसने पेशवा को 30,13,000 रुपये नजराने के और लगभग 34,000 रु० पेशकश के देने का करार करके सम्मति प्राप्त की थी। अब नाना फड़नवीस ने आज्ञा दी कि गोविन्दराव मानाजी के करार को पूरा करे और हाथी घोड़ा इत्यादि के अतिरिक्त लगभग एक लाख रुपया नजराना और भेंट करने की शर्त करने पर उसे पूना से जाने की परवानगी मिल सकती है। इसके उपरान्त तापी नदी के दक्षिण में गायकवाड़ को जो हक प्राप्त था वह तथा सूरत बंदर में जकात वसूल करने का हक भी पेशवा को दे देने की मांग नाना फड़नवीस ने की। गायकवाड़ ने पेशवा के साथ जो पहले बहुत से कौल-करार कर रखे थे उनके अतिरिक्त भी पूना सरकार के लाभ को दृष्टि में रखते हुए बहुत सी प्रतिज्ञाएं गोविन्दराव से करा लेने की बात नाना फड़नवीस ने मन में ठानी, परन्तु सालबाई में जो संधि हुई थी उसके विरुद्ध गायकवाड़ के राज्य

का विभाजन होते देखकर ब्रिटिश सरकार बीच में पड़ी और नाना फड़नवीस ने उनकी बात उचित मानकर 29 दिसम्बर, 1793 को गोविन्दराव को पूना से जाने की इजाजत दे दी।

गोविन्दराव गायकवाड़ सन् 1800 के सितम्बर मास में मर गया। बाजीराव पेशवा के भाई चिमनाजी आपा का सहायक आपाजी सेलूकर गुजरात का सूबेदार था। गोविन्दराव उसके साथ दो वर्ष तक लड़ता रहा। अपने शासनकाल में बल प्रयोग से रुपया वसूल करने और अन्य अत्याचारों के कारण आपाजी बहुत बदनाम हो गया था। जिस इमारत* में अहमदाबाद की सेशन कोर्ट बैठती है वह इसीने बनवाई थी। मुसलमान सुलतानों के राजमहलों की नींव पर उसने यह इमारत खड़ी की और जनता के मकानों का मसाला (चूना पत्थर) लूट खसोटकर काम में लिया तथा लोगों से मुफ्त में मजदूरी करवाई। उसके बहुत से अत्याचारों में से एक यह भी था कि उसने एक धनवान यूरोपीय सिपाही से कपट-व्यवहार किया और रुपया लेने के लिए बल प्रयोग किया। उस सिपाही का नाम मोशिये जीन (साधारणतया मूसाजान) था। उसका द्रव्य लेने के लिए उसको तोप के मुंह से बंधवाकर उड़वा दिया गया था। सन् 1800 ई. में जब सूरत का नवाब मर गया तो बम्बई का गवर्नर मिस्टर डंकन उस शहर पर कब्जा करने के लिए आया। उस समय उसको मुबारकबाद देने के बहाने गोविन्दराव ने अपने वकीलों को भेजा परन्तु उसका अन्तरंग आशय सेलूकर को नष्ट करने के लिए ब्रिटिश सरकार का आश्रय प्राप्त करने का था। मिस्टर डंकन तो गायकवाड़ से सूरत के आस-पास का चौरासी परगना और सूरत बन्दर की चौथ ले लेने के लिए तैयार ही बैठा था। सेलूकर के विरुद्ध सहायता करने के लिए गोविन्दराव की प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया गया और इसलिए उस समय चौरासी परगना व सूरत की चौथ के विषय में कोई संतोषजनक नतीजा नहीं निकला। इस पर गायकवाड़ ने अपने ही बल पर सेलूकर को कमजोर करने का निश्चय किया और अहमदाबाद से बड़ोदा के लिए एक सेना रवाना हुई। सेलूकर ने डाकोरजी और काठियावाड़ से अपने सरदारों को बुलाया और नगर के बाहर शाहआलम के रोजे के पास गायकवाड़ की सेना के साथ लड़ाई की। इस लड़ाई में उसकी हार हुई और उसे किले में जाकर शरण लेनी पड़ी। वहां उसके साथियों ने उसको छोड़ दिया और वह कैद कर लिया गया। * नाना फड़नवीस से सम्बन्ध रखने के कारण पेशवा

---

* बहुत पुरानी होने के कारण अब यह इमारत उतरवा दी गई है।

* गायकवाड़ को ऐसा करने के लिए छुपे तौर पर पेशवा की अनुमति मिल चुकी थी। पहले तो गायकवाड़ उसे बड़ोदा ले गया, फिर बोरसद के किले में कैद रखा। अन्त में, ब्रिटिश सरकार की कृपा से वह छोड़ा गया।

सेलूकर से अप्रसन्न रहता था। उसने गुजरात में अपने हिस्से की आय के हिसाब से पांच वर्ष तक पांच लाख रुपया वार्षिक बड़ोदा सरकार को देना स्वीकार किया और गायकवाड़ के प्रधान मंत्री रावजी आपाजी[5] के भतीजे रघुनाथ महीपतिराव को (जो काकाजी के नाम से प्रसिद्ध था), अहमदाबाद का सूबेदार नियुक्त किया।

---

5. रावजी आपाजी और उसका भाई बाबाजी दोनों प्रभु थे—ये दूसरे बहुत से दक्षिणियों की तरह गोविन्दराव के साथ लम्बे प्रवास के बाद 1793 में पूना आए थे।



प्रकरण तीसरा

आनन्दराव गायकवाड़*

महाराज गोविन्दराव गायकवाड़ की मृत्यु सन् 1800 ई० के सितम्बर मास में 19 तारीख की मध्यरात्रि में हुई। बावाजी आपाजी और प्रधान सैनिक सरदार मीर कमालउद्दीन खां ने दो बड़े धनिकों, मंगल पारख और शामल बेचर, के साथ मिलकर कार्य की व्यवस्था करने का विचार किया। शामल बेचर के अधिकार में अरब का लश्कर था। प्रातः काल कुटुम्ब की सब स्त्रियां इकट्ठी हुई, और स्वर्गीय महाराजा की रानी गेना बाई ने, जो लख्तर के झाला राजपूत वंश की थी, अपने पति के साथ सती होने का विचार प्रकट किया। परन्तु, राज्य के कार्यकर्ताओं ने उसे सब तरह से समझाबुझाकर रोका और कुरान तथा हिन्दू रीति के अनुसार शपथ खाकर यह आश्वासन दिया कि जिस प्रकार उसके पति के समय में उसकी प्रतिष्ठा और सत्ता थी उसी प्रकार आगे भी कायम रहेगी। इसके पश्चात् गोविन्दराव के शव को अग्निदाह के लिए ले गए और उसका उत्तराधिकारी सबसे बड़ा पुत्र आनन्दराव गद्दी पर बैठा। स्वर्गीय गोविन्दराव का प्रधान रावजी आपाजी उस समय अहमदाबाद था। उसने तुरन्त आकर राज्य का कार्यभार संभाल लिया। गोविन्दराव का एक दासीपुत्र कान्होजीराव था। उसने अपने पिता के जीवनकाल में ही कुछ उपद्रव खड़ा किया था, इस बात को ध्यान में रखते हुए प्रधान आपाजी ने सबसे पहले सेठ साहूकारों और अधिकारियों को वश में करके यह प्रयत्न किया कि कान्होजी राव अब आगे कुछ अड़चन पैदा न कर सके। परन्तु यह बात पूरी न पड़ी और कान्होजी राव ने अपने पक्ष के कुछ सरदारों की सहायता से राज्य पर अधिकार कर लिया और आनन्दराव गायकवाड़ को कैद कर लिया। कान्होजी बड़ा अत्याचारी था। अब, उसे अपने स्वभाव का परिचय देने का पूर्ण अवसर मिला था। उसने राज्य के कार्यकर्त्ताओं को बहुत ज्यादा त्रस्त किया और राजा आनन्दराव पर यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कोई सख्ती नहीं की परन्तु इतनी घृणा प्रदर्शित की कि उसके भाई की खुली सम्मति से कान्होजी के विरुद्ध सर्वसाधारण की एक टोली बन गई। 27 जनवरी, 1801 ई० की रात को उसका घर घेर लिया गया और थोड़े से अवरोध के बाद कान्होजी को पकड़ कर आनन्दराव के सामने उपस्थित किया

---

* यहां से हमारा आधार भाटों की दन्तकथाएं और लन्दन के ईस्ट इण्डिया हाउस के दफ्तर के कुछ अप्रकाशित कागज हैं।

गया। उसकी आज्ञा से कान्होजी के शस्त्र छीन लिए गए, बेड़ियां जड़ दी गईं और गुजरात के बीच की पहाड़ियों में रामपुर रोतिहा के किले में उसको कैद कर दिया गया। इस घटना के बाद से रावजी आपाजी राज सत्ता का सच्चा संचालक बन बैठा।

अप्रेल का महीना शुरू होते-होते फतहसिंह गायकवाड़ की पुत्री गजराबाई ने राव जी आपाजी के साथ झगड़ा कर लिया। इस झगड़े का कोई कारण तो ज्ञात नहीं हुआ परन्तु गजरा बाई ने सूरत नगर में जाकर शरण ली और वर्ष के खतम होते होते तो रावजी के शासन के विरुद्ध असंतुष्ट लोगों का एक भयंकर समूह उठ खड़ा हुआ। पीलाजी गायकवाड़ ने कड़ी[1] का राज्य अपने छोटे पुत्र खंडेराव को दिया था और सेनापति दाभाड़े ने, जो उस समय पीलाजी की अधीनता में था, खंडेराव को उस राज्य पर दृढ़ किया और उसको 'हिम्मत बहादुर' की पदवी भी दी। खंडेराव का पुत्र मल्हारराव हुआ, जिसको फतहसिंह गायकवाड़ ने उसके पिता के राज्य और पद पर नियुक्त किया और गायकवाड़ के बड़े राज घराने से उसका मेल बनाए रखने के लिए 400 घोड़ों से राज्य की सेवा करने की बात भी उससे स्वीकार कराई। यह भी तय हुआ कि यदि वह 400 घोड़ों द्वारा राजसेवा न करना चाहे तो 1,20,000 रुपया राज्य को दे। इस प्रकार वह कड़ी का जागीरदार नियुक्त हुआ। यद्यपि सामान्यतया वह बड़ोदा के राजा का पटावत गिना जाता था फिर भी जिस प्रकार मरहठा राज्य की प्रधान सत्ता होते हुए भी गायकवाड़ अपने राज्य में स्वतंत्र शासन करता था उसी प्रकार-बड़ोदा राज्य की सत्ता होते हुए वह कड़ी में पूर्ण स्वतंत्रता से अपना शासन-चलाता था।

रावजी दीवान का तो कहना था कि उसने मल्हारराव से राज्य का चढ़ा हुआ कर मांगा था और वह स्वयं कहता था कि उससे कान्होजी राव की दुर्दशा सहन न हुई इसलिए उसने सेना इकट्ठी करना आरम्भ किया। गजराबाई की टोली ने भी मल्हार राव के ही पक्ष का समर्थन किया। अब वह साफ-साफ कहने लगा कि रावजी आपाजी और उनके भाई बाबाजी ने बहुत से अनधिकारपूर्ण और अत्याचार के काम किये हैं इसलिए मुझे उनको शिक्षा देनी है तथा कान्होजी राव और दूसरे गायकवाड़ राजवंशियों को इन अत्याचारी कार्यकर्त्ताओं ने दुर्व्यवहार करके उनके

---

1. कड़ी भू. पू. बड़ोदा राज्य के उत्तरी विभाग का मुख्य स्थान माना जाता था। यह अहमदाबाद से 16 मील उत्तर में है। चौड़ी और मजबूत दीवारों के परकोटे वाला किला अभी मौजूद है। दामा जी गायकवाड़ ने कड़ी परगना अपने भाई खंडेराव हिम्मत बहादुर को जागीर में दिया था। यह बात पानीपत की लड़ाई के बाद 1761 ई० की है। गायकवाड़ वंश के बड़े और छोटे भाइयों में हमेशा ही झगड़ा रहा जिस में खंडेराव और उसका पुत्र मल्हार राव उलझे रहे। अन्त में, दासीपुत्र कान्होजी का पक्ष लेकर तो मल्हार राव ने अपना नाश ही कर डाला।

उचित अधिकारों से वंचित कर दिया है इसलिए उनको वापस अपने पद पर स्थित करने के लिए मैं आगे आया हूं। स्वर्गीय महाराजा का एक और दासी पुत्र था जिसका नाम मुकुन्दराव था। वह डाकोर में श्रीरणछोड़जी के दर्शन करने के बहाने बहुत-सा धन और जवाहरात लेकर बड़ोदा से रवाना हो गया। उसे वापस बुलाने के लिए मंत्रियों ने बहुत प्रयत्न किया परन्तु वह न माना और उपद्रव मचाने लगा। इस पर उन्होंने एक सेना भेजी और वह भागकर कड़ी के परगने में मल्हारराव की शरण में चला गया। मल्हारराव ने पहले ही बीसल नगर और बीजापुर के किलों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था। वह कहता था कि ये किले उसने अपने महाराजा आनन्दराव के लिए जीते थे और उसका साथ देने के लिए विभिन्न स्थानों में चालीस हजार फौज उसके अधिकार में मौजूद थी। गायकवाड़ सरकार की नौकरी में शिवराम नाम का एक पुराना अफसर था। वह मन्त्रियों के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर मल्हार राव से जा मिला और यह भी मालूम हुआ कि और भी बहुत से आदमी उसका अनुकरण करने के लिए तैयार थे।

अन्त में, लड़ाई के लिए उद्यत दोनों सेनाएं आमने-सामने आईं। बाबाजी और आपाजी ने शाही बाग में छावनी डाल रखी थी और उनकी फौज की एक टुकड़ी 'काली का कोट' में पड़ी थी। मल्हारराव अपनी सेना का एक भाग लिए हुए कड़ी में मौजूद रहा और उसका भाई हनुमन्तराव दूसरे भाग को लेकर कड़ी से आठ कोस आगे बाबाजी की छावनी से सात कोस के फासले पर कलोल नामक स्थान पर डेरा डाले पड़ा था। छोटी-छोटी तीन मुठभेड़ें हुईं जिनमें मल्हारराव अपने को विजयी मानता था।

ऐसी स्थिति में दोनों ही पक्षों ने ब्रिटिश गवर्नर से सहायता मांगी। कान्होजी की तरफ से गजराबाई और उसके मन्त्रियों ने ब्रिटिश सरकार को चौरासी परगना और सूरत की चौथ देना स्वीकार किया (गोविन्दराव ने ही ये दोनों भाग देना स्वीकार कर लिया था, परन्तु उसकी मृत्यु हो गई और पेशवा की अनुमति न होने के कारण इन पर अमल नहीं किया गया था) और इसके साथ ही उन्होंने कहा कि चीखली का परगना भी, जो चौरासी से भी अधिक उपजाऊ है, ब्रिटिश सरकार को दे दिया जाएगा। उधर सन् 1802 ई० के जनवरी महीने में महाराजा आनन्दराव की ओर से रावजी आपाजी ने मिस्टर डंकन के पास मीर कमालउद्दीन खां और दो वकीलों को भेजा। इन्होंने, गोविन्दराव के समय में जो चौरासी परगना और सूरत की चौथ के विषय में करार हुआ था और अमल न हो सका था, उसकी यथारीति लिखावट कर दी। ब्रिटिश गवर्नर ने बहुत समय तक दोनों पक्षों के हकों पर विचार करने के बाद आनन्दराव के नाम पर सम्पूर्ण कामकाज करने वाले मन्त्रियों को ही आश्रय देने का निश्चय किया। यह निश्चय करने के लिए मि० डंकन के पास बहुत से कारण थे। कड़ी के जागीरदार ने जो आसपास के कुछ परगने दबा लिए

थे उनके अतिरिक्त सारा प्रदेश आनन्दराव के पक्षवालों के अधिकार में था, ऐसी स्थिति में गवर्नर को उनके विपक्षियों की बात पर भरोसा करने का कोई विशेष कारण दिखाई नहीं दिया। फिर, गायकवाड़ राज्य के सच्चे स्वामी आनन्दराव महाराजा की आज्ञा से ही उनके मन्त्रिगण सालबाई की सन्धि के आधार पर गायकवाड़ राज्य में विभाग न होने देने के लिए ब्रिटिश सरकार से हस्तक्षेप के लिए बड़ी नम्रतापूर्वक प्रार्थना कर रहे थे। गवर्नर को यह भी सूचना मिली कि मल्हारराव सिन्ध से विदेशी सेना भी लाने का प्रयत्न कर रहा है और यदि वह आ जायगी तो गुजरात में ब्रिटिश सत्ता नष्ट हो जाएगी। फिर, मिस्टर डंकन को यह भी विचार था कि यदि गायकवाड़ के मन्त्रियों को ब्रिटिश सहायता प्राप्त न होगी तो वे सिन्धिया से आश्रय मांगेंगे।

निदान, ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता के गौरव और गायकवाड़ राज्य को सम्पूर्ण रखने के लिए एक सेना तैयार की गई। इस सेना में दो हजार सिपाही थे जिनमें से चार सौ यूरोपीय थे और इसका अधिकार मेजर अलेक्जैण्डर को नियुक्त किया गया जो आगे चलकर गुजरात के इतिहास में उचित रूप से प्रसिद्ध हुआ। यह तय हुआ कि मेजर वॉकर जल्दी से जल्दी से अपने सैनिक रूप को छोड़कर बड़ोदा के रेजीडेन्ट का पद ग्रहण करे। ऐसा निश्चय करने में मिस्टर डंकन का आशय यह था कि जहां तक हो सके वहां तक बल प्रयोग किए बिना ही झगड़े का निपटारा हो जाए। मेजर वॉकर को यह आदेश दिया गया कि वह प्रत्यक्ष में तो गायकवाड़ के वकीलों के साथ बड़ोदा जाए और महाराज आनन्दराव से मिलकर ब्रिटिश सरकार की ओर से उनके पिता की मृत्यु पर शोक प्रकट करे। यह रस्म इससे पहले इसलिए पूरी न हो सकी थी कि चौरासी परगना व चौथ की बात अभी तक अधूरी पड़ी थी। परन्तु, इस भेंट का अन्तरंग अभिप्राय यह था कि आनन्दराव के मन की सच्ची स्थिति का ज्ञान हो सके और यह भी मालूम हो सके कि उसका पुत्र हनुमन्तराव बाबाजी के साथ फौज में उसीकी अनुमति से भेजा गया था या नहीं। इसलिए यह योजना बनी कि जब तक मेजर वॉकर बड़ोदा में अपना कार्य करे तब तक सेना जल मार्ग से खंभात पहुंच जाए और कार्य समाप्त होने पर वह भी उससे वहीं जा मिले।

24 जनवरी सन् 1802 को सूरत से रवाना होकर मेजर वॉकर 29 जनवरी को बड़ोदा पहुँचा। जब ये लोग भडौंच में होकर गए तो सिन्धिया के कार्यकर्ताओं ने इनका खूब आदर-सत्कार किया। बड़ोदा से कुछ मील की दूरी पर मन्त्रियों की ओर से स्वागत करने के लिए आए हुए कुछ आदमी उनको मिले और, शहर से एक कोस आगे सब फौजी और मुल्की अफसरों के साथ रावजी आपाजी उनकी अगवानी करने के लिए मौजूद थे। सम्मेलन के स्थान पर खुली हवा में गलीचे आदि बिछे हुए थे। अरब जमादार आदि सभी मुख्य-मुख्य आदमियों से मेजर वॉकर की मुलाकात हुई और सभी ने अपना-अपना सद्भाव प्रकट किया। वहां से वह बड़ोदा गया- वहां

उसके ठहरने के लिए तम्बुओं का प्रबन्ध किया गया था। उनका निरीक्षण करने के लिए उसको ले गए। उस स्थान पर सम्मानसूचक रीति से शस्त्र लिए हुए एक फौज की टुकड़ी खड़ी हुई थी और तोप चलाकर उसको सलामी दी गई। दूसरे दिन दीवान फिर मिलने के लिए आया और उसने कड़ी पर अधिकार करके मल्हार राव को निकाल देने की आतुरता प्रकट की। मेजर वॉकर उस समय इस विषय पर बातचीत करना नहीं चाहता था इसलिए उसने बात टालकर खम्भात आई हुई फौज के लिए रसद सामान आदि पहुंचाने की चर्चा चलाई। इसी मुलाकात में यह तय हुआ कि मेजर वॉकर महाराजा से मिलने के लिए उसी दिन तीसरे पहर जावेंगे। इस कार्यक्रम में आनन्दराव ने कुछ परिवर्तन कर दिए और कहा कि ब्रिटिश राजदूत से मिलने के लिए पहले उसीको जाना चाहिए। इसके बदले में सभ्यता के नाते मेजर वॉकर सामने आकर रास्ते में ही उससे मिला और आनन्दराव ने हाथी से उतर कर भेंट की। इसके बाद वे सब लोग तम्बुओं में गए। महाराजा के साथ सब दरबारी घुड़सवार और पैदल थे और वहां पहुंचते ही तोपों से सलामी दी गई। मेजर वॉकर के प्रार्थना करने पर कुछ चुने हुए सरदारों और अधिकारियों के साथ उससे बात-चीत करने के लिए वह एकान्त में गया। वहां गवर्नर की ओर से सलाम और स्वर्गीय गोविन्दराव की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया। इनको महाराजा ने अन्य-मनस्क होकर ग्रहण किया, इससे तुरन्त ही ब्रिटिश राजदूत ने जान लिया कि उनका चित्त किसी एक विषय पर स्थिर नहीं हो सकता था। उस समय जो दृश्य उपस्थित हुआ उसका वर्णन मेजर वॉकर के ही शब्दों में नीचे दिया जाता है—

"आनन्दराव की अवस्था तीस या चालीस वर्ष की दिखाई देती है, उसका शरीर पुष्ट है और प्रत्यक्ष रूप से कोई दुर्बलता के चिन्ह प्रकट नहीं होते, परन्तु उसके भावहीन चेहरे और भारी आँखों से यह तुरन्त आभासित होता है कि या तो उसमें कोई स्वाभाविक कमजोरी है या, जैसा कि कहा जाता है, कुछ विनाशकारी मादक द्रव्यों के सेवन का यह प्रभाव पड़ा है। सम्भवतः इन दोनों ही बातों का इस महाराजा के मस्तिष्क पर प्रभाव है, परन्तु काम करने की अक्षमता का कारण स्वाभाविक हीनता की अपेक्षा गांजा पीने का दुर्व्यसन ही अधिक जान पड़ता है। मानसिक दुर्बलता के होते हुए भी आनन्दराव में स्मरणशक्ति मौजूद है। उसने अपने कितने ही कार्यकर्त्ताओं के नाम बताए और यह भी नहीं कहा जा सकता कि उसे अपने राज्य की बातों का सामान्य ज्ञान न हो। कभी-कभी यदि वह घबरा जाता था तो राव जी आपाजी और कमालुद्दीन उसकी सहायता करने को तैयार रहते थे। उसका ध्यान यदि कहीं जाकर स्थिर होता था तो अपने शरीर पर धारण किये हुए आभूषणों पर। वह बार-बार अपनी पगड़ी पर सिरपेंच को ठीक करता था और दस्तबन्द को अंगरखे की बाँह से अलग

करता था। आगा मोहम्मद की घड़ी को देखकर वह बहुत आकर्षित हुआ और उसको लेकर बच्चे की तरह देखने लगा। जब मुलाकात खतम होने लगी तो वह कुछ होश में आता हुआ सा मालूम पड़ा। उसने कहा, "मेरे बहुत से शत्रु हैं, जो मेरे राज्य व मेरी मानसिक स्थिति के बारे में तरह-तरह की झूठी बातें उड़ाते हैं परन्तु, मुझे आशा है कि आप धोखा नहीं खायेंगे और गवर्नर को सच्चा-सच्चा हाल लिखेंगे।" उसकी इस प्रार्थना का रावजी और कमालुद्दीन बार-बार समर्थन करते थे और यह बतलाते थे कि शत्रुओं की बातों से महाराजा को कितना दुःख होता था। इसके बाद आनन्दराव ने मल्हारराव की शत्रुता के बारे में कहा और यह इच्छा प्रकट की कि उसे शीघ्र ही दण्ड दिया जाए। उसने मल्हारराव को कड़ी से निकाल देने की हार्दिक इच्छा प्रकट की और कई बार इस प्रार्थना को दोहराया जिसमें उसके मन्त्रियों ने भी साथ दिया। महाराजा को यह विश्वास दिलाया गया कि गायकवाड़ राज्य का लाभ सदैव कम्पनी सरकार की दृष्टि में है और इसके परिणाम में अंग्रेजी फौज उनके शत्रुओं से उनकी रक्षा करेगी। इस मुलाकात में आनन्दराव ने बहुत विनयपूर्वक व्यवहार किया और अंग्रेज सरकार को अपना आश्रयदाता मानते हुए तथा कम्पनी और अपने पूर्वजों के सम्बन्धों की याद दिलाते हुए बहुत ही सम्मान और प्रेम प्रकट किया। इसके बाद, रीति के अनुसार पान-सुपारी और इतर गुलाब-जल भेंट करके गायकवाड़ आनन्दराव ने विदा ली।"

पहली फरवरी को मेजर वॉकर महाराजा से महलों में जाकर मिला। वह कहता है कि "उस दिन महाराजा का व्यक्तित्व पहले दिन की अपेक्षा बहुत गम्भीर था। वह प्रसन्न दिखाई पड़ता था और पिछले दिन की भावहीनता का स्थान बहुत कुछ उदारता व समझदारी ने लिया था। साधारण बातचीत के अनन्तर आनन्दराव ने हमको शिरोपाव भेंट किए और एकान्त में बातचीत करने के लिए कहा। बहुत-से मुख्य-मुख्य सरदार अपने नौकर-चाकरों सहित अन्दर घुस आए। आनन्दराव ने रावजी की बहुत प्रशंसा की और मल्हारराव को दण्ड देने की उत्कट इच्छा प्रकट की। उसने कहा कि उसका पुत्र हनुमन्तराव उसी की इच्छानुसार फौज में गया था। उसकी अवस्था बारह वर्ष की थी और उसको अपने पुत्र से पूर्ण सन्तोष था। उसने इस बात को पूर्णतया अस्वीकार किया कि मल्हारराव ने लड़ाई चालू करने की उससे किसी प्रकार की स्वीकृति प्राप्त की थी, परन्तु जब उससे पूछा गया कि 'क्या कान्होजी को आपकी अनुमति से ही कैद किया गया है?' तो उसने कोई उत्तर नहीं दिया और सिर नीचा करके आँखें घुमाने लगा और उसने एक भाव-पूर्ण मूकता का आश्रय लिया। उसके मन्त्रियों ने उसकी एवज उत्तर देने का प्रयत्न किया, परन्तु फिर भी वह चुपचाप बैठा रहा। फिर, उसने चुपके से मेरे कान में

कहा कि, 'अरब जमादार मेरे घातक शत्रु हैं—ये मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक बातचीत नहीं करने देते।' इसके पश्चात् सब लोग विदा हुए।

महाराजा के विश्वासपात्र सेवकों में मंगल पारख नाम का एक आदमी था। उसने बाद में मेजर वॉकर से कहा कि कान्होजी को कैद करने की बात पर आनन्दराव धार्मिक भाव का आश्रय लेकर चुप हो गया था। अपने भाई को कैद करना उसकी दृष्टि में दोष एवं पापपूर्ण कृत्य था परन्तु लोकमत की रक्षा के लिए उसे यह कार्य करना ही पड़ा। इससे वह बहुत दिनों तक दुःखी रहा और शोक प्रकट करने के लिए उसने कई दिनों तक हजामत नहीं बनवाई।

मेजर वॉकर को गायकवाड़ राज्य की स्थिति बहुत ही निर्बल और अव्यवस्थित मालूम हुई और यदि बाहरी आश्रय न मिलता तो वह नष्ट ही हो जाता। प्रबन्ध की अव्यवस्था और उससे उत्पन्न हुए कष्ट वहां के लोगों पर इतनी अधिक मात्रा में फैले हुए थे कि उनके दुर्भाग्य का अनुमान लगाना कठिन था। अव्यवस्था के सिवाय चारों ओर कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। सब महकमों की तनख्वाह चढ़ी हुई थी, देश का बहुत-सा भाग रुपया उधार देने वालों के गिरवी रखा हुआ था और वे मनमाना धन वसूल करते थे। एक साधारण तनख्वाह पाने वाला नायक राजा से भी अधिक शान से घूमता था। फौजी सरदारों ने तो सम्पूर्ण राज्य पर ही अधिकार कर लिया था और महाराजा को पूर्णतया अपने कब्जे में कर रखा था। ये फौजी सरदार शासन कार्य में कुशल न होने के कारण पैसेवालों के वश में थे। उस समय गायकवाड़ सरकार में आमद से 4–5 लाख रुपया वार्षिक का अधिक खर्चा था। दीवान रावजी आपाजी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और समझदारी के कारण राज्य-प्रबन्ध में कुशल था, परन्तु पिछले चालीस वर्षों में वह विद्रोहों से तथा उन परिवर्तनों से अच्छी तरह परिचित हो गया था जिनको वह देख चुका था या उनमें भाग ले चुका था और जिनके कारण राज्य की जड़ें बहुत कुछ हिल गई थीं।' इस कारण वह वहमी हो गया था, उसकी सावधानी कभी-कभी डरपोकपन में परिणत हो जाती थी और वह अपनी योजनाओं के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता था। अरब अधिकारियों द्वारा छीनी हुई सत्ता को वापस ले लेने के लिए उसमें धैर्य न था। कभी तो ऐसा मालूम होता था कि वह ब्रिटिश सरकार पर अविश्वास करता है और कभी-कभी वह अपनी बातचीत में बहुत ही निष्कपटता और स्पष्ट व्यवहार दिखाता था। कहते हैं कि यह दीवान प्रायः अपने अभिप्रायों को प्रकट कर दिया करता था और इससे उसके निजी व सरकारी कितने ही काम बिगड़ जाते थे।

मेजर वॉकर की राय में, गुजरात में ब्रिटिश सरकार की पूर्ण सत्ता स्थापित करने में एकमात्र विघ्न करने वाले अरब लोग थे परन्तु, वास्तव में, उसे उनका कोई डर न था। वे लोग शूरवीर थे परन्तु उनकी भयानकता (स्वभाव की तेजी) के कारण वे किसी के अधीन होकर नहीं रह सकते थे। यद्यपि वे लोग अलग-अलग

छोटे-छोटे सरदारों की अधीनता में थे परन्तु इसी कारण वे किसी साधारण रीति से संगठित नहीं हो पाते थे। उनकी कुल संख्या सात हजार से अधिक न थी और उनमें से एक हजार से अधिक एक स्थान पर इकट्ठे नहीं रहते थे। इनमें से केवल चौथे हिस्से के लोग अरबिस्तान के रहने वाले थे और बाकी लोगों का रक्त तो अरबी था परन्तु उनका जन्म गुजरात में हुआ था। इन लोगों के हथियार, जिनमें मुख्य बन्दूकें थीं, बेकार थे और इनका युद्ध-सम्बन्धी ज्ञान भी बिलकुल साधारण था। इनके अधिकार में जो किले थे उनमें बड़ोदा का दुर्ग सबसे अच्छा समझा जाता था, परन्तु वह भी किसी सुसंगठित हमले को रोक सकने की स्थिति में नहीं था। मेजर वॉकर के विचार में बड़ोदा में रखी हुई ब्रिटिश फौज की दो टुकड़ियां इन अरबों की बराबरी करने के लिए पर्याप्त थीं और उसे पूर्ण आशा थी कि इस प्रकार उनका प्रभाव कम पड़ जाने से वे भी अपनी निर्बल स्थिति को समझ जाएंगे और उनकी संख्या कम हो जायेगी। ये अरब लोग दो दलों में बंटे हुए थे— एक का सरदार मंगल पारख था और दूसरे का सामल बेचर। इनमें से सामल स्वभाव का गंदा, लोभी और दगाबाज था। ब्रिटिश सरकार की ओर उसके भाव अच्छे नहीं थे और उसके अधीनस्थ टुकड़ी में अरबों की संख्या भी अधिक थी।

जब रावजी को यह मालूम हुआ कि मल्हारराव को दण्ड देने के लिए सेना भेजने के बदले ब्रिटिश सरकार उससे और ही तरह पर मामला तय करना चाहती है तो वह बहुत नाखुश हुआ। उसने इस बात पर जोर दिया कि जब तक कड़ी पर अधिकार न कर लिया जाए तब तक कुछ नहीं हो सकता। इसके उत्तर में मेजर वॉकर ने समझाया कि ऐसा करने से देश में निरन्तर अव्यवस्था और अशान्ति फैलने की आशंका है क्योंकि कड़ी पर अधिकार कर लेना तो सहज है, परन्तु कदाचित् मल्हारराव हाथ से निकल जाए तो वह कितने ही दिनों तक देश में लूटपाट करके हैरानी पैदा कर सकता है। इस पर रावजी ने कहा कि शत्रु को वापस आने से रोकने के लिए दो ब्रिटिश फौजें नियुक्त कर दी जाएं और इस सहायता के बदले में समुद्री किनारे पर सरकार को जो भी जमीन का भाग सुगम पड़े वह दे दिया जायेगा। उसने फिर कहा कि मल्हारराव से कड़ी का पूरा परगना उसके हाथी-घोड़ों सहित ले लिया जाए और देश के किसी दूसरे भाग में एक लाख रुपया वार्षिक आमदनी की जागीर उसे दे दी जाए। उधर ब्रिटिश राजदूत को ऐसा आदेश था कि निजी तरीके पर समझौता करा देने का तो उसे पूर्ण अधिकार है परन्तु यदि रावजी न मानें और मल्हारराव का नाश करने पर ही तुले बैठे हों तो ब्रिटिश सरकार को बीच में नहीं पड़ना है, फौजें वापस बुला ली जाएँ। अन्त में, रावजी ने स्वीकार किया कि कड़ी के जागीरदार ने बड़ोदा के मुल्क पर हमला किया है इसके बदले में यदि ब्रिटिश फौजें दो-तीन दिन तक उसकी हद में छावनी डाल दें तो उसे (रावजी को) बहुत संतोष होगा। इसके साथ ही उसने यह भी कहा कि यदि मल्हारराव

शान्तिपूर्ण ढंग से रहना कबूल करेगा तो उससे वसूल करने योग्य कर में से बहुत-सा भाग छोड़ दिया जाएगा।

मेजर वॉकर ने सरकार के पास जो सूचना भेजी उसमें अपनी राय देते हुए लिखा कि मल्हारराव अपने राजा की अधीनता स्वीकार नहीं करता है तो न्याय और नीति की दृष्टि से वह अवश्य ही दण्डनीय है। महाराजा का पटावत होते हुए उसकी जागीर खाता है और कर देने के लिए मना करता है, कर माँगने पर विदेशी शत्रुओं से आत्म-रक्षा करने का बहाना करके सामने शस्त्र उठाता है और अपने आशय को और ही तरह प्रकट करके अन्तर में महाराजा को पदभ्रष्ट करने की इच्छा लेकर राजद्रोह करता है। मल्हारराव कहता है कि वह कान्होजी का पक्ष लेकर खड़ा हुआ है, परन्तु इस बात में कोई सार नहीं है क्योंकि कान्होजी का राजगद्दी पर न्यायपूर्ण हक नहीं है और उसको पदभ्रष्ट करने का उसने केवल समर्थन ही नहीं किया है वरन् तोपें चलाकर खुशी भी प्रकट की है। उसने गायकवाड़ के देश पर जो हमला किया है उसकी योजना उसने पहले ही बना रखी थी क्योंकि इसके लिए न तो पहले शत्रुता की घोषणा की गई और न कोई शिकायत ही सामने आई। यदि मल्हार राव अपनी जिद पर अड़ा रहे तो उसको दबा देने से लोग प्रसन्न होंगे और इस कार्य की सफलता का परिणाम यह होगा कि सहायक सेना स्वीकार कर ली जाएगी। इसकी सफलता के लिए ब्रिटिश सरकार को प्रत्यक्ष सहायता करना सरासर आवश्यक है और कड़ी की चढ़ाई में विजय प्राप्त करने के बाद उस टुकड़ी को अथवा वैसी ही किसी और फौज की टुकड़ी को स्थायी रूप से बड़ोदा भेज देना उचित होगा।

मेजर वॉकर को जो कार्य सौंपा गया था उसको पूरा करके वह 8 फरवरी को तीसरे पहर बड़ोदा से विदा हुआ। गायकवाड़ की फौज लेकर बाबाजी को उसके साथ भेजा गया और यदि मल्हारराव सन्धि के लिए प्रार्थना करे तो महाराजा के राज्य के लिए लाभप्रद शर्तों पर सन्धि करने का पूर्ण अधिकार भी उसको दिया गया।

रण चौथा

मल्हारराव गायकवाड़

पाठकों को ऐसा प्रतीत होगा कि पिछले प्रकरण में हमने सन्धि समझौते का वृतान्त आवश्यकता से अधिक बढ़ाकर लिखा है, परन्तु गुजरात का भविष्य बहुत कुछ इन्हीं बातों पर निर्भर था इसीलिए इसको इतने विस्तार से लिखना पड़ा। यदि ब्रिटिश सरकार से मांगी हुई सहायता न मिलती और फौजें खम्भात से आगे न बढ़तीं तो बड़ोदा राज्य अवश्य ही उसी दुःखपूर्ण अराजकता और गड़बड़ी की अवस्था में पड़ जाता जिसमें आगे चलकर होल्कर और सिन्धिया के राज्य पड़ गए थे। परन्तु, सब घटनाएं इस प्रकार द्रुत गति और नियोजित रूप से घटती रहीं कि उन पर गुजरात के भावी राजनीतिक सम्बन्धों की नींव दृढ़ होती चली गई।

सूरत से चली हुई फौज 2 फरवरी को खम्भात उतरी और नारायणसर के पास उसी खुली जगह पर पड़ाव डाला जहां पहले सन् 1775 में कर्नल कीटिंग की मातहत फौज ठहरी थी। बड़े अधिकारियों के ठहरने के लिए बाग में एक बंगला सुपुर्द कर दिया गया था। इसी बीच में बाबाजी और मल्हार राव की फौजों में अव्यवस्थित और अनिर्णीत छोटी-छोटी लड़ाइयां होने लगीं और साथ में इसी तरह की सन्धि-चर्चा भी होती रही जिससे कोई लाभ न निकला। कहते हैं कि मल्हारराव का लश्कर कुल मिलाकर पन्द्रह हजार[1] आदमियों का था। उनमें शिवराम[2] नाम का एकमात्र दमदार अफसर था जिसकी अध्यक्षता में लगभग सात सौ कवायद सीखे हुये घुड़सवार थे। एक पलटन का नाम "गोसाइन (गोसांई की स्त्री) का लश्कर" था, जिसका अध्यक्ष पारकर नामक अंग्रेज था। लगभग दो सौ आदमियों की एक दूसरी टुकड़ी का नायक जोखिम नामक पुर्तगाली फिरंगी था। उसने इनमें कुछ व्यवस्था कायम की थी इसलिए कुछ

1. यह संख्या पारकर (Parker) ने लिखी है, परन्तु उसका विवरण कई जगह परस्पर विरोधी है। मेजर वॉकर का अनुमान है कि दस और बारह हजार के बीच घुड़सवार और पैदल थे और कुल मिलाकर छोटी मोटी पन्द्रह तोपें थीं।
2. देखिए प्रकरण 9 की टिप्पणी।

लोग लाल जाकट पहने हुए थे, वाकी सब लोग, जैसा कि पारकर साहब ने कहा है, अपने-अपने पसन्द की पोशाक पहने हुए थे और मनमाने ढंग से लड़ते थे। इस घिलमिल फौज की वाकी संख्या काठी और कोली तथा सिंधी और पठान लोगों से पूरी होती थी। इनमें से काठी और कोली कवचधारी घुड़सवार थे, जिनका सरदार भूपतसिंह नामक ठाकुर था, जो पहले बावाजी के साथ हुई एक दो छोटी-मोटी लड़ाइयों में प्रसिद्धि पा चुका था। आगे के वृत्तांत में पाठक इस भूपतसिंह से "भांकोरा के ठाकुर" के नाम से परिचित होंगे। यद्यपि इस समय तो यह भूपतसिंह मल्हार राव के पक्ष का नामी आदमी था परन्तु पहले इसकी मल्हारराव से कट्टर शत्रुता थी। कान्होजी के शासनकाल में इसी ठाकुर को कड़ी के जागीरदार के विरुद्ध भेजने के लिए कह कर वड़ोदा भेजा गया था, परन्तु जब कान्होजी कैद हुए तो इसको भी कैद कर लिया गया। इसके बाद रावजी ने यह समझ कर कि कहीं इसी द्वेषभाव को लेकर यह मल्हारराव के देश पर हमला न कर बैठे, इसको मुक्त कर दिया था।

तारीख 22 फरवरी तक ब्रिटिश फौजें एक कदम भी आगे नहीं बढ़ीं और इस बीच में मल्हार राव अपने अरब सहायकों की मदद से कान्होजी की मुक्ति के लिए षड्यंत्र रचता रहा। उधर, दूसरे पक्ष के लोग अंग्रेज फौजों की ढील और खम्भात से रेजीडेण्ट के एक वकील को कड़ी भेजने के कारण निराश हो रहे थे। मल्हार राव ने अपनी फौजों को निःशस्त्र करने व वीसलनगर तथा दूसरे ऐसे प्रदेश, जहां पर उसने कब्जा कर लिया था, छोड़ने के लिए साफ इनकार कर दिया। इन दोनों वातों को मल्हार राव से कबूल कराए बिना और कोई बन्दोवस्त नहीं हो सकता था इसलिए डंकन ने, जो उस समय खम्भात में था, बावाजी की फौज से जा मिलने के लिए अपने लश्कर को रवाना होने का हुक्म दिया। मल्हार राव को खबर मिली कि महाराजा के जिस प्रदेश पर उसने अनधिकारपूर्ण कब्जा कर रखा था उसको हटाने के लिए फौज रवाना हो चुकी है और यदि वह उस प्रदेश को छोड़ना कबूल कर ले तो केवल एक सौ मनुष्य साथ लेकर मिस्टर डंकन से भेंट करने की परवानगी मिल सकती है। इन बातों को स्वीकार किए बिना समझौते की और कोई सूरत नहीं निकल सकती थी। मेजर वॉकर 23 तारीख को रवाना होकर 4 मार्च को अहमदावाद पहुंचा और दूसरे दिन अड़ालज पहुंच कर उसने भारी सामान व बीमार सिपाहियों को वहीं रखा। मल्हार राव समझौते की बातें तो करता था परन्तु उनके अनुसार कार्य करने के कोई लक्षण प्रकट नहीं करता था। 10 तारीख को अंग्रेजी फौजों ने कड़ी की सीमा में प्रवेश किया। उनके साथ जो गायकवाड़ की सेना थी उसको पीछे छोड़ दिया गया था जिससे कि उस सेना के अव्यवस्थित होने के कारण कोई

शिकायत का अवसर न आए। अंग्रेजी सेना ने सिरेता के पास छावनी डाली और वहीं पर मल्हार राव ने मेजर वॉकर से मुलाकात करने की इच्छा प्रकट की।

इसके अनुसार मुलाकात तो हुई परन्तु मेजर वॉकर को सन्धि हो जाने की कोई आशा नहीं दिखाई दी। मल्हार राव के मन में अविश्वास और दगा था क्योंकि, वह मुलाकात के समय बहुत से हथियार और आदमियों को साथ ले गया था। घुड़सवार और पैदल सिपाही मिलकर कुल दो हजार आदमी उसके साथ थे—इनके अतिरिक्त तीन तोपें भी थीं। पहले, ब्रिटिश छावनी में मुलाकात होने का निश्चय हुआ था, परन्तु वह उससे 2 मील की दूरी पर ही ठहर गया; वहीं पर एक सायवान तनवाया गया और उस जगह से आगे बढ़ने के लिए वह राजी नहीं हुआ। फिर भी, दूसरे दिन शाम को कितने ही कारण बतलाते हुए वह मेजर वॉकर से मिला और अपनी नई फौज को तोड़ देने व ब्रिटिश सरकार की इच्छानुसार कार्य करने के लिए उसने सहमति प्रकट की। उसने यह भी इच्छा प्रकट की कि यह सन्धि-चर्चा किसी विश्वासपात्र वकील के द्वारा गुप्त रूप से तय की जावे ताकि उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे। मेजर वॉकर ने इस बात को स्वीकार कर लिया। मल्हार राव के सामने ये शर्तें रखी गईं कि वह जीते हुए तमाम प्रदेश लौटा दे, गायकवाड़ के जितने मनुष्य उसने कैद कर रखे थे उनको मुक्त कर दे, उनसे वसूल किया हुआ कर वापस दे दे, चढ़ा हुआ कर चुकाने का प्रबन्ध करे, लड़ाई का खर्चा दे और भविष्य में शांतिपूर्वक रहने का विश्वास दिलाकर महाराजा को प्रसन्न करे। यह भी तय हुआ कि वह अपनी अतिरिक्त फौज को तुरन्त तोड़ दे और जितनी फौज सदा से रखता आया है उतनी ही कड़ी की चहारदीवारी के अन्दर रखे। जब तक मेजर वॉकर को उसकी निष्कपटता का विश्वास न हो जाए तब तक पास ही में ब्रिटिश फौज की छावनी पड़ी रहेगी। यह भी तय हुआ कि ब्रिटिश फौजें तुरन्त ही हटा कर कलोल भेज दी जाएंगी और गायकवाड़ की फौजों को भी कुछ समय बाद वहीं पर भेज दिया जाएगा और उसी स्थान पर मल्हार राव की मेजर वॉकर से अन्तिम भेंट होगी। 15 तारीख को मेजर वॉकर कलोल पहुंचा परन्तु वहां पर उसे कोई भी न मिला और न मल्हार राव की तरफ से कोई सूचना प्राप्त हुई इसलिए 16 तारीख को वह बूडासन नामक गांव को चला गया। यह गांव कड़ी से 3 मील की दूरी पर है। ब्रिटिश लश्कर के पहुंचने पर मल्हार राव के कुछ घुड़सवार दिखाई दिए, परन्तु कोई शत्रुता का चिह्न प्रकट किए बिना ही वे तुरन्त वहां से लौट गए। पास ही में एक ऊंची सी जगह पर कब्जा करके एक तोप और फौज की टुकड़ी को वहां पर रख दिया गया। इस ऊंची जगह से मेजर वॉकर को कड़ी, मल्हार राव की छावनी और मैदान में फैली हुई फौज की तमाम हल-चल अच्छी तरह दिखाई देती थी। कड़ी का किला छोटा और टेढ़ामेढ़ा बना हुआ था। इसके चार दरवाजे थे जिसमें से एकमात्र,

फतहपोल पर नया मोर्चा बांधा गया था और उसी पर तोपें चढ़ा कर रखी थीं। मल्हार राव का निवासस्थान किले के भीतर था और दूर से ही अच्छी तरह दिखाई पड़ता था। बड़ी-बड़ी मीनारें, बुर्जे और चबूतरा खास तौर से दृष्टि में आता था। इस चबूतरे पर से आसपास का प्रदेश नजर में आ सकता था।

दोपहर होते-होते मल्हार राव का पत्र लेकर दूत आए। इस पत्र में इतनी नम्रता दिखाई गई थी कि मेजर वॉकर को यह विचार भी न आ सका कि यह कार्यवाही भी एक कपटकार्य का साधन मात्र हो सकती थी। स्थानीय अधिकारी सुन्दरजी और कप्तान विलियम्स के हाथ पत्र का उत्तर भेजा गया। उनको रवाना हुए 20 ही मिनट हुए होंगे और वे मल्हार राव की छावनी के अगले हिस्से तक ही पहुंचे होंगे कि उनको कैद कर लिया गया और मल्हार राव के पास जो दो तोपें थीं उनसे ब्रिटिश छावनी पर गोलाबारी शुरू कर दी गई। मेजर वॉकर ने कुछ देर गायकवाड़ के सरदारों से सलाह की और उन सबके मोर्चे निश्चित करके यह तय किया कि सब फौजें मिलकर शत्रु की छावनी पर हमला करें। कमालुद्दीन खां अपने एक हजार के लगभग घुड़सवार लेकर ब्रिटिश सेना की दाहिनी ओर रहा और बाबाजी कुछ पैदल, घुड़सवार और गोलंदाजों को लेकर बांई तरफ रहा। गायकवाड़ की फौजों के तैयार होने के समाचार मिलने पर ब्रिटिश सेना कतार बांधकर अपनी चारों तोपों के साथ 2-2।। बजे के करीब धीरे-धीरे परन्तु व्यवस्थित रूप में आगे बढ़ी। किसी ऊंचाई की जगह को हाथ में लेने व शत्रु के पड़ाव के बिलकुल सामने जा पहुंचने के लिए सेना ने दाहिनी रुख किया। ब्रिटिश सेना के आगे बढ़ते ही मल्हार राव के तोपखाने ने और भी जोर से गोलाबारी शुरू की; दुर्भाग्य से ये तोपें ऐसे स्थान पर लगाई गई थीं कि वहां से मार का असर ज्यादा होता था। फिर भी पांच बजे के करीब मेजर वॉकर शत्रु की छावनी के सामने लगभग आधमील के फासले पर जा पहुंचा। वहां से शत्रु की फौज बिलकुल सामने दिखाई पड़ती थी। अब वह अपने विचार के अनुसार हमला करने की सोच ही रहा था कि उसके पास गायकवाड़ की फौजों के समाचार पहुंचे। बाबाजी छावनी से थोड़ी दूर चला था और अरब लोग अंग्रेज सेना के पीछे-पीछे चलने में आनाकानी कर रहे थे। उधर कमालुद्दीन को जिस स्थान पर नियुक्त किया था, वह थोड़ी देर तक तो वहां टिक सका परन्तु शत्रु के अच्छे घुड़सवारों के विरुद्ध अधिक देर न ठहर सका और पीछे हट गया। गायकवाड़ की सेना से पूर्ण सहायता मिले बिना मेजर वॉकर को अपने विचारे हुए हमले को स्थगित करना पड़ा इसलिए वह दांई तरफ बढ़ता गया और शत्रु की मार से बचता हुआ बहुत दूर निकल गया तथा जहां उसके घुड़सवार ठहरे हुए थे उस ऊंची जगह पर जा पहुंचा। इस स्थान पर फौज गोधूलि के समय तक ठहरी और फिर शत्रु की किसी विघ्न-बाधा के बिना अपनी पहली छावनी में जा पहुंची। इस लड़ाई में यद्यपि शत्रु पक्ष का अधिक

नुकसान हुआ परन्तु ब्रिटिश सेना की भी हानि कम नहीं हुई। सम्राट की फौज की 80 वीं रेजीडेण्ट का लेफ्टिनेंट क्रीग व कम्पनी के नौकर कप्तान मैक्डोनल्ड और लोवेल मारे गए। कुल 146 आदमी मारे गये या घायल हुए जिनमें से 25 यूरोपीय थे; एक तोप के पहिए टूट गए थे इसलिए उसे रणभूमि में ही छोड़ देना पड़ा।

मेजर वॉकर को अब अच्छी तरह ज्ञात हो गया था कि जो कुछ सेना उसके पास थी उससे निश्चित रूप से हमला करके लड़ाई का अन्त नहीं हो सकता था, इसलिए उसने मरहठों की पद्धति से लड़ाई करने का निश्चय किया और बाबाजी से सलाह करके इस तरह मोर्चा बांधकर शत्रु की छावनी की तरफ बढ़ने का इरादा किया जैसे कि वह एक सुरक्षित किला हो। इसी बीच में डंकन व कौंसिल के दूसरे अधिकारियों ने खम्भात में जितनी सेना इकट्ठी हो सकती थी वह एकत्रित करके रवाना करने का प्रयत्न किया। बम्बई से जितनी फौज रवाना होने को थी वह तो जहाज पर चढ़ा दी गई और गोआ स्थित ब्रिटिश सेनाध्यक्ष (कमान्डिग ऑफिसर) को हुक्म दिया गया कि उसके पास जितनी यूरोपीय व देशी फौज थी उसको लेकर कड़ी के मुकाम के आगे जा पहुंचे। 'इन्ट्रेपिड' और 'टर्पसिकोर' नामक सम्राट के जहाज तथा 'कार्नवालिस' व 'अप्टन कैसिल' नामक कम्पनी के जहाज शेष फौजों को उत्तर की ओर ले जाने के लिए तैनात किए गये।

कुछ समय तक कड़ी के मुकाम पर अव्यवस्थित रूप से युद्ध होता रहा जिसमें विपक्षी बहुत करके मेजर वॉकर की सेना पर नज़र रखते हुए मुख्यतः गायकवाड़ के सेनापतियों की फौज पर अपनी शत्रुता प्रकट करते थे। मेजर वॉकर ने देखा कि उसके पास गोला बारूद की कमी है, बाबाजी की सेना का तोपखाना बेकार है और उस सेनापति (बाबाजी) के लश्कर के लोगों में यद्यपि वास्तविक साहस और सचाई या भरोसे की कमी नहीं थी फिर भी ऐसा लगता था कि वे उदासीन से थे और अंगीकृत कार्य के प्रति उनमें उस तत्परता का अपेक्षाकृत अभाव था जो मल्हार राव की सेना के बिना कवायद सीखे हुए परन्तु शूरवीर पठानों, गुसाइयों और कोलियों में मौजूद थी। अतः उसने सोचा कि गायकवाड़ की सेना की सहायता के बिना आक्रमण पूरा नहीं पड़ सकता इसलिए यही अच्छा होगा कि और कुछ न करके अपना बचाव करता हुआ वह अलग बैठा रहे अथवा किसी भी ऐसे काम में हाथ न डाले जिसको, मित्रों की सहायता की अपेक्षा न रखते हुए, स्वयं उसका ही लश्कर पूरा न कर सके। उसी समय मेजर वॉकर और मल्हार राव के बीच सन्धिवार्ता भी चलती रही। मेजर वॉकर ने अपनी शर्तें कुछ शिथिल भी कर दीं क्योंकि वह कप्तान विलियम्स को, जो बन्दी के रूप में दुःख पा रहा था, मुक्त कराने के लिए चिन्तित था, परन्तु मल्हार राव अपनी शर्तों का विस्तार करता ही चला गया और उस पूरी वार्ता का कोई फल न निकला।

सर विलियम क्लार्क ने 12 अप्रेल के दिन खम्भात पहुंच कर सेना का कार्य अपने हाथ में लिया। पहले तो यह इरादा हुआ कि जैसे-जैसे फौजें उतरती जाएं वैसे ही उन्हें तुरन्त रवाना कर दिया जाए, परन्तु जब यह पक्की खबर मिली कि विपक्षियों की एक हजार घुड़सवार सेना मंकोड़ा के भूपतसिंह की अध्यक्षता में रास्ता रोके तैयार खड़ी है तो इस जोखिम से बचे रहने में ही बुद्धिमानी थी। इसलिए सर विलियम क्लार्क अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ चला और अप्रेल मास की 24 तारीख को मेजर वॉकर से वूडासरण नामक स्थान पर जा मिला। उस समय उसके पास सहयोगियों[3] की सेना के अतिरिक्त पांच या छः हजार मनुष्यों का लश्कर हो गया जिनमें दो हजार यूरोपीय थे।

ब्रिटिश सेनापति ने पहला काम तो यह किया कि मल्हार राव के पास पूर्व-प्रस्तावित सन्धि की शर्तों को शान्तिपूर्वक स्वीकार कर लेने का सन्देश भेजा। जब सर विलियम क्लार्क की पहुंच की खबर मिली तो मल्हार राव के यहां विचार-विमर्श होने लगा; मुकुन्दराव गायकवाड़ ने शिवराम, भूपतसिंह और पठानों के सरदार को राजी-खुशी झगड़ा निपट जाने में बाधा उपस्थित करने के लिए बुरा भला कहा और सिर पर संकट लाकर खड़ा कर देने का दोषी भी उन्हीं को ठहराया। सभा में उपस्थित दूसरे सरदार भी चिन्तातुर होकर एक दूसरे का मुंह देखने लगे। स्वयं मल्हारराव भी भयभीत और घबराया हुआ नजर आया, परन्तु न जाने क्या कारण हुआ कि अंग्रेजों के सन्देश का कुछ भी उत्तर नहीं दिया गया और सब काम अपने ही ढंग से होता रहा।

कड़ी नगर पर आक्रमण करने से पूर्व दृढ़ता से सामने खाई खोद कर जमी हुई शत्रु सेना को बिखेर देने की बात सर विलियम क्लार्क को आवश्यक जान पड़ी। इनमें सब से प्रबल तो एक तोपखाना था जो विपक्षियों के व्यूह के दक्षिणी भाग में लगा हुआ था और, कहते हैं कि, उसकी रक्षा के लिए एक यूरोपीय अफसर की अधीनता में बारह सौ अथवा चौदह-सौ पठान तैनात थे। इस मोरचे पर 30 अप्रेल के दिन हमला करने के लिए हिज मेजेस्टी (इंगलैण्ड के राजा) की 75 वीं रेजीमेण्ट, उसके आजू-बाजू में 84 वीं पल्टन व कम्पनी सरकार के लम्बे-लम्बे सिपाहियों की फौज तथा 84 वीं रेजीमेण्ट के शेष सिपाही और चार तोपें तैयार की गईं; यह सम्पूर्ण सेना लेफ्टिनेण्ट कर्नल वुडिंगटन की देखरेख में तैयार हुई। दिन उगते ही ये लोग चुपचाप तोपों के पीछे आ पहुंचे और बन्दूक की मार के फासले से मोर्चा काबू में ले लिया। छीनी हुई कितनी ही तोपों का मुंह विपक्षियों की ओर तुरन्त मोड़ दिया गया। ब्रिटिश सेना ने पूरा-पूरा लाभ उठाने का सोत्साह प्रयत्न किया और

3. गायकवाड़ की सेना।

ग्यारह बजते-बजते तो कड़ी के मुखभाग पर लगे हुए मोर्चे व खाई उनके कब्जे में आ गए; जो सेना उनकी रक्षा के लिए तैनात थी उसमें भगदड़ पड़ गई और वह तितर-वितर हो गई। जहां तक शत्रुओं द्वारा प्रतिरक्षा का सवाल है इस विजय में हुई हानि नगण्य-सी ही होती, परन्तु मल्हार राव की सेना में से एक बारूद से भरी हुई गाड़ी पकड़ी गई थी उसने आग पकड़ ली। प्रायः इस युद्ध में हुई समस्त हानि उसी के कारण हुई।[4] मल्हार राव की छावनी और पास ही के कडेल नामक गांव को लूट कर आग लगादी गई और उसके भागते हुए सिपाहियों को शहर के दरवाजे में घुसने से रोक दिया गया तथा उनको इधर-उधर बिखर जाने की आज्ञा दे दी गई। थोड़ी देर के लिए उन्होंने पुनः एकत्रित होकर कड़ी के सामने की तरफ़ मोर्चा जमाया परन्तु शीघ्र ही वे फिर बड़ी भारी गड़बड़ी में पड़ गए। उसी घबराहट के समय में मल्हार राव ने कैप्टेन विलिम्स को छोड़ दिया जिसको धोखे से पकड़ कर उसने इतने दिनों से कैद कर रखा था। सन्ध्या समय सुन्दरजी उसको साथ लेकर ब्रिटिश छावनी में पहुंचा।

बाबाजी ने इस सफलता का वृत्तान्त तुरन्त ही अपने भाई को लिख कर भेजा वह मित्रसेना के पराक्रम से बहुत उत्साहित हुआ और अपने व अपने साथियों को लिए जो लाभ का अवसर उपस्थित हुआ था उस पर उसने प्रसन्नता प्रकट की। उसने लिखा—"बाबा साहिब! अंग्रेजों की युद्ध प्रणाली देख कर मैं तो आश्चर्य चकित हो गया। मेरा खयाल है कि दुनियां में उनकी तरह कोई भी नहीं लड़ सकता। उन्होंने सिर्फ छः घण्टों में अपना इरादा पूरा कर लिया और अब श्रीमन्त के सौभाग्य से कड़ी पर भी दो दिन में विजय प्राप्त हो जाएगी। कुडाली से कड़ी केवल आधे कोस पर है। अंग्रेजों की सेना-पंक्ति खाई के समीप है। अंग्रेजों को यहां

---

4. इस युद्ध के हताहतों की विगत इस प्रकार है :—

यूरोपीय	मारे गए	22;	घायल हुए	82 = 104	= 162
देशी	,,	6;	,,	52 = 58	

इनमें जो अधिकारी मारे गए उनकी विगत—

लेफ्टिनेण्ट	फ्रांसिस ईवी (Francis Ivie)	सम्राज्ञी की 84वीं रेजीमेण्ट
,,	डेविड प्राइस (David Price)	,, 86 ,,

घायल अफसरों की विगत

लेफ्टिनेण्ट	हेनरी पोलचर (Henry Polcher)	प्रथम प्रलम्ब सिपाहियों की पल्टन
,,	हेनरी रूम (Henry Roome)	,, बटालियन छठी रेजीमेण्ट

लाने का जो परिणाम होगा उससे आपकी बुद्धिमानी का ठीक-ठीक परिचय लोगों को मिल जायगा और उनकी बहादुरी से आपके शत्रु ही नहीं, सारी दुनियां उनसे डरेगी व आदर करने लगेगी। इससे हमारी सब चिन्ताएं दूर हो गई हैं और हम जो कुछ करना चाहते हैं वह सब बात हमारे वश में आ गई है।

मल्हार राव ने कैप्टेन विलियम्स और सुन्दरजी को मुक्त कर दिया था इसलिए सर विलियम क्लार्क ने उसे पुनः सन्धि के लिए कहलाया। इस पर लड़ाई के दूसरे दिन उसने सन्देश भेजा कि अब वह आत्मसमर्पण कर देगा अतः उसकी इच्छानुसार एक छोटी सेना की टुकड़ी उसको ब्रिटिश सन्निवेश में ले आने के लिए नगर द्वार तक भेज दी गई। दरवाजे पर वह पालकी में भी बैठ गया, परन्तु उसी के कुछ आदमियों से समझा बुझाकर और प्रत्यक्ष में अटकाव पैदा करके उसको आने से रोक दिया। अतः नगरकोट को तोड़ने के लिए तोपों की कार्रवाई शुरू कर दी गई और 3 मई के दिन मल्हार राव ने वास्तविक रूप में आत्मसमर्पण कर दिया, जिसकी शर्त केवल यह थी कि उसकी व उसके कुटुम्ब की रक्षा की जाए। दो दिन बाद कड़ी के किले को विपक्षियों ने पूरी तरह खाली कर दिया और उस पर मित्र-सेनाओं का अधिकार हो गया; ब्रिटिश और गायकवाड़ दोनों के झण्डे उस पर साथ-साथ फह-राने लगे। वहां पर छोटी-मोटी सैंतीस तोपें, हाथी, ऊंट और बहुत सा गोला बारूद एवं अन्य युद्ध का सामान प्राप्त हुआ।

कड़ी के पतन के बाद तुरन्त ही बड़ोदा में भी ब्रिटिश सत्ता स्थापित हो गई। मार्च के महिने में डंकन और रावजी आपाजी के बीच एक सन्धि हुई जिसके अनुसार गायकवाड़ सरकार ने सदा के लिए चोरासी परगना और चौथ हवाले कर दी तथा ब्रिटिश फौज के खर्चे की जमानत के रूप में सूरत के समीप 'अट्ठावीसी परगनें' की आय का अपना भाग लिख दिया। इसके अतिरिक्त एक गुप्त सन्धि भी हुई जिस पर युद्ध की समाप्ति तक अमल न होना स्वीकार किया गया। इसके अनुसार बड़ोदा सरकार ने दो हज़ार हिन्दुस्तानी पैदल, एक यूरोपीय तोपखाने की टुकड़ी और उसी के परिमाण में लश्कर का निरन्तर खर्चा बर्दाश्त करना स्वीकार किया और यह भी कबूल किया कि इस खर्चे के निमित्त गायकवाड़ राज्य का वह भाग नामांकित कर दिया जाएगा जो दोनों पक्षों के लिए सुविधाजनक होगा। अरबी बेड़े को तोड़ देने का भी निश्चिय हुआ। जून की 4 तारीख को आनन्दराव गायकवाड़ की सरकार ने अंग्रेजों द्वारा दी गई सहायता के प्रमाणस्वरूप सूरत अट्टावीसी का चीकली परगना कम्पनी सरकार को नाभार भेंट कर दिया; दो दिन बाद ही एक और समझौता हुआ जिसमें मार्च मास में हुए करार और चीकली-समर्पण की सम्पुष्टि की गई और यह भी तय हुआ कि बर्खास्त अरबी बेड़े को चुकाने के लिए अंग्रेज सरकार रुपया कर्ज दे जिसकी निशांदेही में बड़ोदा, कोरल, जिनोर, पितलाद और अहमदाबाद के परगने लिखे

जाएं। उसी दिन माहाराजा आनन्दराव ने एक और सन्धिपत्र लिखा जिसके अनुसार भविष्य में सहायतार्थ नियुक्त सहायक सेना का खर्चा पूरा करने के लिए धोलका का परगना विक्रम संवत् 1860 (1804 ई०) के आरम्भ से ब्रिटिश अधिकार में दे दिया गया। उसी समय सेना पर प्रथम वर्ष के व्यय निमित्त 7,80,000 रुपये की बाबत भी लिखापढ़ी हुई जिसके अनुसार उक्त रकम के मध्ये 50,000 रुपये की नडियाद के गावों की जायदाद[5] अंग्रेजों को सौंप दी गई तथा बाकी रकम अदा करने के लिए कड़ी की आमदनी व काठियावाड़ से संवत् 1857-58 (1801-2 ई०) में प्राप्त होने वाली मुल्कगीरी की जमा उनको लिख दी गई। सात जून को मेजर वॉकर को बड़ोदा के रेजीडेण्ट का पद सम्हालने का आदेश हुआ। तदनुसार वह 11 तारीख को वहां जा पहुंचा। गायकवाड़ ने उसका बहुत आदरसत्कार किया। रावजी की सलाह से उसका डेरा उनके निवास के सामने ही एक बाग में लगाया गया और वहीं उसने ब्रिटिश झण्डा फहरा दिया।

कुछ ही दिन पहले आनन्दराव की सरकार के विरुद्ध हुए दूसरे विद्रोह के समाप्त होने की सफलता के समाचार भी प्राप्त हो चुके थे। गायकवाड़ वंश के सम्बन्धी गणपति राव ने बहुत पहले स्वर्गीय माहाराजा गोविन्दराव के मुकाबले में गद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न किया था; फिर भी सीधे और शांत स्वभाव वाले उन महाराजा ने संखेड़ा की गढ़ी और संलग्न छोटा-सा परगना, साधारण-सा राजस्व निर्धारित करके, उसको दे दिया था परन्तु, अब मल्हार राव से मिलकर अपनी स्वतंत्रता स्थापित करने के इरादे से उसने वह इजारे की रकम बहुत दिनों से देना बंद कर दिया था। कड़ी का पतन होने के बाद उसे अपनी गढ़ी में बंद हो कर बैठना पड़ा। उसके पास यद्यपि दो ही तोपें थीं और सुरक्षा के लिए भी नगण्य-सा ही सामान था फिर भी गायकवाड़ की सेना के हमले का वह सामना करता रहा। गणपतिराव के साथ महाराजा के पिता का एक दासीपुत्र मोरार राव भी मिल गया था। ब्रिटिश सेना के एक दस्ते को लेकर कप्तान बेथ्यून गायकवाड़ की सेना से जा मिला और 7 जुलाई को संखेड़ा फतह हो गया। इस शर्त पर किले पर अधिकार हो गया कि किलेदारों की निजी सम्पत्ति एवं प्राणों को कोई आंच नहीं आएगी। पहली रात को ही गणपति राव और मोरार राव कुछ साथियों को लेकर पैदल ही निकल पड़े। उन्होंने मालवा के एक बड़े जागीरदार और स्वर्गीय गोविन्दराव के जामाता बापू पंवार के यहां जा कर शरण ली।

अब गायकवाड़ मन्त्रिमण्डल और ब्रिटिश रेजीडेण्ट का ध्यान कुछ महीनों तक अरबी सिपाहियों को निकालने में लगा रहा। ये लोग पिछले कुछ वर्षों से

---

5. जायदाद अर्थात् स्थिति प्राप्त करने का स्थान; किसी बेड़े या अमले का खर्च चलाने निमित्त निर्धारित राजस्व।

रियासत के हर काम पर काबू किए हुए थे। इस कार्यवाही का यहां पर यथावत् विवरण देना आवश्यक नहीं है—केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह काम ब्रिटिश सेना की सहायता के विना नहीं हो पाता। अरब जमादारों को वड़ोदा शहर में घेर लिया गया और अन्त में उनको 26 दिसम्बर 1802 ई० के दिन कर्नल वुडिगटन की सेना के आगे समझौता करके शस्त्र डालने पड़े।

गुजरात में जिस प्रकार अंग्रेजों का दखल हुआ उसकी रूपरेखा हमने यहां पर दी है; अब, हम इस अवसर पर इसकी आगे की प्रगति पर विचार करने का उपक्रम करते हैं।

21 अप्रेल 1805 ई० को गायकवाड़ के साथ एक निर्णायक पारस्परिक सुरक्षा सन्धि[6] सम्पन्न हुई जिसमें पहले के मुआयदों को सुदृढ़ करने व उनमें आवश्यक घटावढ़ी व हेर-फेर करने की कार्यवाही हुई। गायकवाड़ ने पहले दो हज़ार सहायक सेना रखने का करार किया था अब उसने तीन हजार सैनिक रखना स्वीकार किया जो उसी के राज्य में रहेंगे, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर ही उनका उपयोग किया जा सकता था। उनके खर्चे के लिए 11,70,000 रू० की उपजवाले परगने नामजद कर दिए गये। चौरासी, चीकली और केड़ा (खेड़ा) के परगने सूरत की चौथ सहित अंग्रेजों को सौंप दिये गए और गायकवाड़ सरकार ने अंग्रेजों से जो कर्ज लिया था उसको चुकाने के लिये अन्य परगनों के राजस्व की आय भी उन्हीं के हक में लिख दी गई।[7]

---

6. इस सन्धि के विषय में मुल्ला फीरोज ने अपने 'जार्जनामा' में विशेष विवरण लिखा है, वह द्रष्टव्य है। इसी जार्जनामा में सन्धि की तिथि 12 अप्रेल लिखी है जो अंकों के विपर्यय से हुई भूल जान पड़ती है।

7. आनन्द राव गायकवाड़ की सरकार की ओर से जो परगने और जायदाद ऑनरेबुल ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सुपुर्द किये गए थे उनकी सूची गङ्गाधर शास्त्री के एक कागज में दी हुई है, जो कर्नल वॉकर की 1 जनवरी, 1806 ई० की रिपोर्ट के साथ संलग्न है :—

इनाम	रुपया
खेड़ा की किलेदारी	42,000
चीकली का परगना	76,000
सूरत वंदर की चौथ	50,000
चौरासी का परगना	90,000
	2,58000

गोविन्दराव के गद्दी पर बैठने के बाद बड़ोदा और पूना राज्यों के बीच किसी प्रकार की सन्धि नहीं हुई थी। आवा शीलूकर का विद्रोह दबा देने के बाद गायकवाड़ ने अहमदाबाद, काठियावाड़ की मुल्कगीरी, पितलाद, नापाड़, चूड़ा राणपुर, धन्धुका, घोघा और खम्भात के कुछ हकूक पेशवा से इजारे पर ले लिए थे। वसई की सन्धि के अनुसार राणपुर, घोघा और धन्धुका के परगने व खम्भात में पेशवा के हकूक तो ब्रिटिश सरकार को सौंप दिये गये थे। बाकी का ठेका पेशवा सरकार ने जून, 1804 से दस वर्ष के लिए गायकवाड़ के नाम कर दिया। परन्तु, जब यह अवधि समाप्त हो गई तो पेशवा ने नया पट्टा करने से इनकार कर दिया क्योंकि वह अब गुजरात में अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाना चाहता था। अतः 1815 ई० में उसने त्रीकमजी डेंगलिया[8] को सरसूबादार नियुक्त किया जिसने पेशवा के नाम से उन

जायदाद	
नाडियाद का परगना	1,75,000
धोलका	4,50,000
बीजापुर	1,30,000
मातर	1,30,000
मूंडेह (महुधा)	1,10,000
तपा* कड़ी परगना	25,000
कीम कटोद्रा* की जकात	50,000
काठियावाड़ का सालाना बरात*	1,00,000
कुल जमा	11,70,000

*. कीम और कटोद्रा दो नाम हैं। कीम B.B.C.I Rly पर सूरत से 11 मील पर स्टेशन है। कटोद्रा या राव का करोद्रा सूरत से बुरहानपुर वाली सड़क पर 11 मील पर स्थित है।

*. बरात या बरात (फारसी) राजस्व की हुण्डी। (देखिए—English Factories 1618-21, i, 201; note 322 etc.) ये साहूकारों द्वारा लिखी जाती हैं।

8. त्र्यम्बकजी डेंगलिया, वास्तव में, भूतपूर्व पेशवा का जासूस या गुप्तचर था। 1812 ई० के लगभग वह उस राजा का 'आमे आमनी' [सर्वेसर्वा] हो गया और उन कनिष्ठ नौकरों और मुहलगों का प्रधान बन गया जो बाजीराव को पूना के दरबार में घेरे रहते थे और उसके दुर्गुणों एवं ब्रिटिश विरोधी नीति को बढ़ावा देते रहते थे। इसीके परिणाम में उसका उच्छेद हुआ।

त्र्यम्बक जी को 1814 ई० में अहमदाबाद का सर सूबादार बनाया गया और जल्दी ही वह अपनी क्रूरताओं के लिए कुख्यात हो गया। इसके साथ ही

→

परगनों पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार प्राप्त किए हुए प्रभाव का ब्रिटिश शक्ति के विरुद्ध सांठ-गांठ करने में प्रयोग करने लगा।

सन् 1817 में पूना की सन्धि के अनुसार पेशवा ने उस तूफानी अधिकारी को अमान्य कर दिया। उसी समय उसने गायकवाड़ से भविष्य की समस्त मांग छोड़ दी और पिछला हिसाब भी चुकता कर दिया तथा ओलपाड़ के अतिरिक्त गुजरात की समस्त राजस्व आय ब्रिटिश सरकार के हवाले कर दी।

उसी वर्ष 6 नवम्बर को वड़ोदा में एक विशेष सन्धि हुई जिसमें गायकवाड़ ने, जिसको पूना की सन्धि से वहुत लाभ हुआ था, गुजरात में अपने-अपने राज्य के सुविधानुसार एकीकरण की योजना स्वीकार की तथा अपनी सहायक सेना में एक हजार स्थायी पैदल व दो रिसालों की वृद्धि मंजूर की और वढ़े हुए खर्चे के लिए मध्यवर्ती परगने ब्रिटिश सरकार को देना स्वीकार कर लिया।



वह वड़ोदा दरबार से मिल कर अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगा। उसके अपराध उस समय तो चरम सीमा पर ही पहुंच गए जब कि उसने पण्ढरपुर के खुले वाजार में किराए के हत्यारों को गंगाधर शास्त्री का वध करने के लिए नियुक्त किया। गंगाधर गायकवाड़ सरकार की ओर से पेशवा के दरबार में राजदूत हो कर आया था और उसकी सुरक्षा का जिम्मा ब्रिटिश सरकार ने अपने ऊपर ले रखा था। इस कृत्य के लिए त्र्यम्बकजी को समर्पित करने हेतु पेशवा पर दवाव डाला गया और अंततो गत्वा वह थाना की जेल में वन्द कर दिया गया। 1816 ई० में एक साईस की सहायता से वह वड़े ही चमत्कारिक ढंग से जेल में से निकल भागा और दक्षिण की पहाड़ियों में चला गया। वहां पेशवा की साजिश से उसने गुरिल्ला युद्ध शुरू कर दिया। 1817 ई० की पूना-सन्धि के परिणाम-स्वरूप यह युद्ध वंद हो गया।'

अन्तिम मरहठा-युद्ध में त्र्यम्बकजी ने वहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया था और कोरी गांव के युद्ध में तो उसकी वीरता विशेष प्रशंसनीय थी जब 1818 ई. में पेशवा ने आत्म-समर्पण कर दिया तो उसे खानदेश में से तलाश करके वन्दी वनाकर वंगाल भेज दिया गया। उसके विचित्र कृत्यों का कुछ परिचय डवल्यू. वी. हॉकले (W.B. Hockley) के चमत्कारिक परन्तु विस्मृत उपन्यास 'पाण्डुरङ्ग हरि' से मिलता है जो सम्भवतः दक्षिण के जीवन का सर्वश्रेष्ठ समसामयिक विवरण है।

प्रकरण पाँचवाँ

काठियावाड़ की मुल्कगीरी[1]

हम देख चुके हैं कि अणहिलवाड़ा के राजाओं और अहमदाबाद के सुलतानों की नीति अपने पड़ोसियों के प्रति मूलतः समान ही रही है। जहां वे अपने को पूर्ण सबल समझते वहां पर पूर्ण विजय के अधिकार जमाते परन्तु बहुत बार जहां आधीनीकरण पूर्णतः सम्भव न होता वहां संदिग्धावस्था में संघर्ष न बढ़ा कर अपना कर वसूल करके ही संतोष कर लेते थे। गुजरात में सुलतानों के जमाने में और बाद में, अहमदाबाद में नियुक्त शाही सूबेदारों के समय में मुसलमानी सत्ता कायम रखने के लिए जहां-जहां दुर्ग बने हुए थे वहां पर थाने कायम करके सेना रखी जाती थी जिससे प्रायः राजस्व लगातार वसूल होता रहता था और विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त हमला करने के लिए सेना का उपयोग अनावश्यक-सा हो गया था। ये थाने धीरे-धीरे या तो उठा दिए गए या इनके सिपाही कम कर दिए गए। मुगल शासन के अन्तिम दिनों में जो अराजकता के दृश्य निरन्तर देखने को मिलते थे उनमें से बहुत-से तो करदाताओं से उचित रकम वसूल करने के लिए किये गये वार्षिक सैनिक अभियानों के ही परिणाम थे। मुसलमानों के लिए तो अपवाद रूप में यह रास्ता अपनाना आवश्यक हो गया था परन्तु जो लोग उनके बाद में आये उन्होंने तो इसको अपना नियमित और रुचिकर व्यवसाय ही बना लिया।

---

1. 'मुल्कगीरी' फारसी शब्द है, जिसका अर्थ होता है, मुल्कों को फ़तह करना। मराठी में इस शब्द का प्रयोग बलपूर्वक राजस्व वसूल करने के अर्थ में होता है। (देखिए—बम्बई गजेटियर, भा. 7, प्र. 7, पृ. 315–318)

प्रोफेसर यदुनाथ सरकार ने अपनी Shivaji and his Times नामक पुस्तक में, जो कलकत्ता से 1919 ई० में प्रकाशित हुई है, पृ. 479–81 पर लिखा है कि मरहठों ने यह विचार मुसलमानों से लिया है। कुरान में 'दार उल हर्ब' अर्थात् काफिरों के राज्य पर हमला करना जरूरी बताया गया है।

'सभासद बखर' में, जिसका अनुवाद श्री जे. एल. माथुर ने Life and exploits of Shivaji नाम से किया है, और जो बम्बई से 1884–6 में प्रकाशित हुआ है, पृ. 20 पर स्पष्ट लिखा है कि 'मरहठा सेना को वर्ष में आठ मास तक दूसरे राज्यों से धन वसूल करके गुजारा करना चाहिए।'

मरहठों की मुख्य रूप से यही नीति थी कि देश में जहां तक उनकी पहुंच होती वे वहां से बलात् पैसा वसूल करते थे। उनकी यह नीति तब तक बनी रही जब तक कि अनुभव से उन्होंने यह न सीख लिया कि राजस्व की रकम सदा के लिए निर्धारित करके वसूली करना अधिक लाभदायक होता है और तभी उनके मन में विजित देशों में नियमित शासन चलाने की बात भी आई। उनके इतिहासकार का कहना है कि "जब मराठा लोग अपनी सीमा से बाहर प्रस्थान करते थे तो उनके लिए कर उगाहना या युद्ध करना समानार्थक बात थी। जब किसी गांव में प्रतिवाद होता तो वहां के मुखिया पकड़ लिए जाते और उनको धमका कर या थोड़ा बहुत पीड़ित करके रकम ठहरा ली जाती थी; नकद रुपया तो बहुत कम मिलता था परन्तु गांव में कारोबार करने वाले बोहरों या साहूकारों से हुण्डियां लिखा लेना अच्छा समझा जाता था। ये हुण्डियां भारतवर्ष के किसी भी हिस्से में मान्य हो जाती थीं। किसी दुर्ग के रक्षक यदि असफल मुकाबला करते और हार जाते तो उन्हें तलवार के घाट पार उतार दिया जाता था।" ऐसी चढ़ाइयां मरहठों के धन–लोलुप स्वभाव के बहुत अनुकूल थीं और ये "मुल्कगीरी या देशभ्रमण" के नाम से कही जाती थीं।

जब मरहठे शुरू-शुरू में गुजरात आये तभी उन्होंने, पूर्ववर्ती मुसलमानों का अनुकरण करते हुए, देश की हालत और अपनी रुचि के अनुसार इस 'मुल्कगीरी' को अपना लिया था। तीन-तीन या चार-चार हजार लुटेरे घुड़सवारों की तादाद में बिना बन्दूकों या डेरे तम्बुओं को साथ लिए ये लोग उन इलाकों में लूटपाट करने पहुंच जाते जो अभी राजपूतों के अधिकार में थे और जितना धन भोमिया या भूस्वामी देना कबूल कर लेते या वे अपने बल से वसूल कर सकते उतना ही वहां से समेट लाते। देश में जैसे-जैसे इनकी सरकार जमने लगी वैसे-वैसे ही ये मुल्कगीरी के अभियान नियमित रूप में होने लगे तथा उनके साथ अनियमित पैदल फौज भी जाने लगी। इन मरहठा सेनापतियों का यह कायदा था कि जहां तक सम्भव होता वहां तक ये वसूली की रकम को बढ़ाते जाते थे और अपने पूर्ववर्तियों द्वारा वसूल की गई रकम से तो कम करना जानते ही न थे। इस पिछले नियम को तो वे इतनी कट्टरता से बरतते थे कि यदि बकाया रह जाए तो पिछली दर से दो साल की रकम वसूल करना ज्यादा पसन्द करते बजाय इसके कि कुछ नरम शर्तों पर कोई समझौता किया जाय। उधर राजपूत राजाओं का यह तरीका था कि वे इसी में इज्जत समझते थे कि पहले तो जब तक बन पड़े किसी भी प्रकार का कर देने से इन्कार कर देना, विरोध करना और फिर अन्त में यदि वश न चले तो अपनी शक्ति भर अधिक से अधिक अनुकूल शर्तों पर समझौता कर लेना। मुल्कगीरी-सेना इतनी शक्तिशाली नहीं थी कि पूरे इलाके पर अधिकार कर सके या उन गढ़ियों को जीत सके जहां डटकर मुकाबला होता था; इसलिए ये लोग तो खुले शहरों और दुर्गहीन गांवों में

ही अपनी कार्यवाही करते थे और इसके लिए फसल के मौके को ही ज्यादा पसन्द करते थे क्योंकि इससे ठाकुर को तुरन्त मजबूर करने की भी सहूलियत रहती थी और, यही नहीं, उनके घोड़ों के लिए चारा-दाना भी तुरन्त उपलब्ध हो जाता था। जब मरहठा सेना किसी मुखिया की सरहद पर पहुंचती और उसका किसी प्रकार का विरोध करने का विचार न होता तो वह अपने किसी मोतबिर प्रतिनिधि को सीमा पर भेज देता और उसको सभी तरह की वाजिब मांग के लिए आश्वस्त कर देने के भी अधिकार प्रदान कर देता था। इस पर उसकी रियासत में आक्रामक सेना द्वारा लूटपाट न करने का आश्वासन दे दिया जाता और वहां पर एक या अधिक घुड़सवार, सेना के अग्रभाग में से, प्रत्येक गांव के सुरक्षार्थ छोड़ दिये जाते थे। ये (रक्षक) वाँहधर[2] कहलाते थे। जब कोई ताल्लुकेदार सामना करने का विचार प्रकट करता अथवा तुरन्त निपटारा करने की इच्छा प्रकट न करता तो चारों तरफ पिंडारियों को छोड़ दिया जाता और सेना वहां पर हर तरह की लूटपाट व विनाश करती हुई आगे बढ़ती। खेतों में से पके हुए धान की फसल साफ करदी जाती, गांवों में जबरदस्ती आग लगाकर उनको नष्ट कर दिया जाता, घरों में नंगी दीवारों के अतिरिक्त कुछ न छोड़ा जाता और प्रायः उस (राजपूत सरदार) की जमीन में प्रत्येक एकड़ की खेती नष्ट कर दी जाती व हर एक ढाणी की झोंपड़ियों को जलाकर ढेर कर दिया जाता; यह क्रम तब तक चलता रहता जब तक कि वह मांगा हुआ राजस्व देना स्वीकार न कर लेता।

शिवराम गारड़ी, जिसके विषय में पहले उल्लेख किया गया है, कवायद सीखे हुए सिपाहियों का अफसर था। उसने मुख्यतः मुल्कगीरी राजस्व की वसूली के काम को अपने निर्देशन में बहुत आगे बढ़ाया और मूल स्थिति से कहीं का कहीं आगे पहुंचा दिया। पूर्व अधिराजों द्वारा जो वास्तविक राजस्व वसूल किया जाता था उसके अतिरिक्त भी मरहठों ने कितने ही नामों से अन्य प्रकार के कर लागू कर दिये, जैसे—अपने रिसालों के घोड़ों के लिए 'चारा-दाना' का कर तथा 'प्रकीर्ण-व्यय'—कर जिसके अन्तर्गत सभी तरह के बढ़े-चढ़े व्यय आ जाते थे। कर देने वाले इलाके को बाद में दो भागों में बांट दिया गया था—काठियावाड़, जिसमें झालों का देश, आस-पास की समस्त भूमि और सारा सोरठ प्रायद्वीप आ गया था और महीकांठा,

2. मूल पुस्तक में वाँहधर (Bandhurs) का अर्थ तीरंदाज, बाणधर (a bow-man) लिखा है। वास्तव में, वाँहधर जमानती या प्रतिभू को कहते हैं। (हि. अ.)

जिसमें मही नदी के किनारे के अम्वाभवानी और कच्छ के रण तक का देश सम्मिलित था ।[3]

अरब सिपाहियों द्वारा कितने ही स्थानों पर विद्रोह कर देना, महाराजा गोविन्दराव का देहान्त हो जाना तथा कान्होजी और मल्हार राव का विरुद्ध हो जाना आदि कुछ ऐसे कारण उपस्थित हो गए थे कि सदा की भाँति काठियावाड़ में मुल्कगीरी करने के लिए फौज नहीं भेजी जा सकी जिससे 1798–99 ई० में उस प्रान्त के राजस्व की रकम चढ़ी रह गई। इस चढ़ी रकम को वसूल करने का काम वावाजी अप्पाजी को सुपुर्द किया गया इसलिए कड़ी-विजय के तुरन्त वाद ही 1802 ई० में वह इस कार्य को पूरा करने के लिए रवाना हुआ। बीच के समय में काठियावाड़ के ताल्लुकेदारों ने अपने-अपने किले वनवा लिए और मुकावला करने के लिए तैयार हो गए; जो खजाना मुल्कगीरी की रकम अदा करने में काम आता उसको और-और कामों में लगा दिया, मुख्यतः अपने ही आपसी झगड़ों में। उनकी आशंकाएं इस खवर से और भी ज्यादा वढ़ गई थीं कि वावाजी ने चढ़ी हुई रकम को एक साथ वसूल करने का पक्का विचार कर लिया था। मल्हार राव के साझीदार पाटड़ी के देसाई को अधीन करके वावाजी ने काठियावाड़ में प्रवेश किया। उसने मालिआ, मोरवी, जूनागढ़, भावनगर और वढवाण के अभियानों में तावड़तोड़ सफलता प्राप्त करके कड़ी के जागीरदार के भयानक विद्रोह को, उसे पुत्र-सहित वन्दी वनाकर, दवा दिया और उस देश से वसूल होने योग्य सम्पूर्ण वकाया का हिसाव वेवाक कर लिया; साथ ही, उसने उस प्रान्त को अधीन करके ऐसी व्यवस्था कायम कर दी जो सैंकड़ों वर्षों से देखने में नहीं आई थी। इस अभियान के दौर में गायकवाड़ सेनापति को जो आशातीत सफलता प्राप्त हुई वह उसकी सरकार की वास्तविक शक्ति से परे थी। परन्तु, इसके मूल में ऐसे पर्याप्त प्रमाणों का अभाव नहीं था कि प्रायद्वीप के ताल्लुकेदार यह जानकर तुरन्त ही वावाजी की शर्तों को मानने के लिए तैयार हो गये कि उसको व उसके राजा को ब्रिटिश शक्ति का वहुत

---

3. इन दोनों प्रान्तों से जो मुल्कगीरी की आय होती थी उसके आंकड़े गायकवाड़ सरकार के अधिकारियों ने 1802 ई० में कर्नल वॉकर को इस प्रकार दिए थे —

प्रान्त	गायकवाड़ का भाग	पेशवा का भाग	योग
काठियावाड़	4,09,521 रु०	5,38,019 रु०	9,47,540 रु०
महीकांठा	3,00,622 रु०	15,000 रु०	3,15,622 रु०

बड़ा वरदहस्त प्राप्त था। यदि उन्हीं के शब्दों का प्रयोग करें तो उनको भय था कि "फिरंगियों की फौज चारों ओर फैल जावेगी।" ऐसी दशा में, सुदृढ़ नीति के उद्देश्य, मानवीय भावना और ब्रिटिश सत्ता की सत्कीर्ति ने इस बात को आवश्यक बना दिया कि जो प्रभाव अदृष्ट होते हुए भी सत्ता में आ चुका है उसे खुले रूप में स्वीकार करके पूर्णरूपेण उपलक्षित किया जाय।

गायकवाड़ सरकार का ब्रिटिश के साथ सम्बन्ध स्थापित होते ही यह ज्ञात हो चुका था कि बड़ोदा रियासत की आमदनी का बहुत बड़ा भाग काठियावाड़ में नियमित रूप से मुल्कगीरी राजस्व की वसूली होने पर निर्भर था और उस समय जो खिराज की रकम चढ़ी हुई थी उसका वसूल हो जाना कोई सामान्य काम नहीं था। गायकवाड़ का मन्त्रिमण्डल यह अच्छी तरह समझे हुए था कि इस बकाया रकम को ब्रिटिश सहायता के बिना वसूल करना उनके बूते की बात नहीं थी; उनकी इस कमजोरी के कारण ही यह आवश्यक हो गया कि सहायक-सेना में देशी पैदल फौज को बढ़ा कर तीन बटालियनें रखनी पड़ीं और इसके साथ ही यह भी निश्चित करना पड़ा कि इन फौजों में से एक को काठियावाड़ में आवश्यकता पड़ने पर ही भेजा जायगा। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार अपने आपको अप्रत्यक्ष रूप से एक ऐसे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आबद्ध समझती थी कि यदि उसके प्रति अपने मित्रों की इच्छानुसार मार्ग अपनाया जाय तो उसको अपने सामान्य सिद्धान्तों और राजनीति से विलग होकर मूल्य चुकाना पड़ेगा। इसलिए सर्वोच्च सरकार के तत्कालीन अध्यक्ष मार्क्विस ऑफ वेलेज़ली को 15 दिसम्बर, 1802 को ही यह मत प्रकट करना पड़ा कि यदि प्रायद्वीप के कुछ राजाओं से नियत समय पर, फौज भेजने की आवश्यकता पड़े बिना ही, वार्षिक कर देते रहने का समुचित समझौता कर लिया जाय तो यह गायकवाड़ सरकार और गुजरात में ब्रिटिश हितों के प्रति अधिक उपयोगी और स्वीकार्य सेवा-कार्य होगा। इस प्रकार, वास्तव में, लगातार कितने ही ऐसे प्रसंग आ पड़े थे कि ब्रिटिश के लिए काठियावाड़ के मामलों में इस तरह का हस्तक्षेप करना आवश्यक हो गया। गायकवाड़ सरकार ने इस सम्भावना को समझ लिया कि यदि ठाकुर लोग स्वेच्छा से कर देने लगेंगे तो उनके अत्यधिक सैनिक व्यय में बहुत-सी कमी की जा सकेगी; सरकार को यह भी पूर्वाभास हुआ कि कर-वसूली के नाम पर अनाप-शनाप खर्चे के रूप में जो बहुत बड़ी रकम हड़प हो जाती है वह बच जायगी और इससे उनके आय-स्रोत में मूल्यवान वृद्धि होगी; परन्तु, साथ ही, इन अभिलषित उद्देश्यों को पूरा करने के उपायों के लिए वे अपने ब्रिटिश मित्रों के ही मुखापेक्षी थे। उधर, ब्रिटिश अधिकारी यद्यपि गायकवाड़ सरकार की सहायता करने को औपचारिक रूप से आबद्ध हो चुके थे और वे इसके लिए हृदय से इच्छुक भी थे, परन्तु काठियावाड़ी रियासतों के हितों को ध्यान में रखते हुए जब वे विचार करते थे तो ईमानदारी और आत्म-सन्तोष की दृष्टि से मुल्कगीरी का अत्याचारपूर्ण रिवाज़ अच्छा नहीं लगता था।

वे यह भी जानते थे कि राजा लोग उनकी मध्यस्थता को तुरन्त स्वीकार कर लेंगे और कदाचित् उनके सक्रिय सहयोग के अभाव में वड़ोदा रियासत को तत्कालीन परिस्थितियों में अपने उद्देश्य को पूरा करने हेतु कार्यवाही चालू रखना ही पड़ेगा, और ब्रिटिश सरकार के सिद्धान्तों से कितना ही विरुद्ध होने पर भी इसमें जो कुछ सफलता मिलेगी उसका अधिकांश ब्रिटिश की सम्भावित सहायता के ही कारण प्राप्त होगा ।

यद्यपि ये सिद्धान्त कुछ समय पूर्व ही स्वीकार कर लिये गये थे, परन्तु 3 अप्रेल, 1807 ई० तक बम्बई सरकार इनको सक्रिय रूप देने की स्थिति में नहीं आई थी। कर्नल वॉकर इन वातों से अच्छी तरह परिचित था और स्थानीय लोगों पर उसका प्रभाव भी था अतः इन सम्मिलित गुणों के कारण उसी को इस कार्य के लिए अधिकारी चुना गया और उसी दिन उसके अधीन एक सेना देकर आज्ञा दी गई कि वह गायकवाड़ की पर्याप्त सेना के सहयोग से सोरठ द्वीपकल्प में उक्त निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए रवाना हो जाय ।

ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता से राजस्व वसूली के लिए मुल्कगीरी वन्द करने और इसके वदले में निश्चित खिराज की रकम का वन्दोवस्त करने की वात काठियावाड़ के राजाओं को मान्य होगी या नहीं, यह जानने के लिए पहले से ही उपाय कर लिये गये थे। यद्यपि इसका परिणाम पक्ष में ही आया था, परन्तु कर्नल वॉकर को लगा कि काठियावाड़ में ब्रिटिश फौजों के आगमन के वहुत वाद तक राजा लोग इस वात पर विचार करते रहे कि ब्रिटिश सरकार किस सीमा तक, वास्तव में, निःस्वार्थ भाव से इस काम को सम्पन्न करेगी ।

उस अफसर ने लिखा है कि "राजाओं के पास जो परिपत्र भेजा गया था उसको निर्व्याज नहीं समझा गया और ज्यों ही फौजें आगे वढ़ीं तो उस ओर से असाधारण और विचित्र तरह के सम्वाद आने लगे जिनसे उस देश की भावनाओं का पता चलता था। अत्यन्त स्वाभाविक रूप में लोग सोचने लगे कि अब हम (ब्रिटिश) लोग अपनी तरफ से मुल्कगीरी अभियान पर निकले हैं अतः मेरे पास ऐसे कुछ लोगों के प्रस्ताव आने लगे कि उनकी सेना वहुत वहादुर और पैसा निकलवाने की कला में दक्ष है अतः यदि उनकी सहायता ली जायेगी और उनको हिस्सेदार वना लिया जायेगा तो कम्पनी की फौज को कुछ अधिक करना-धरना नहीं पड़ेगा। मालिया[4] के राजा ने कच्छ रण पर अधिकार करने और चोड़ वागड़ (चोड़वाड़) कच्छ तथा सिन्ध में मिलकर लूट करने के लिए आक्रमण करने की इच्छा प्रकट की।

---

4. काठियावाड़ की एक रियासत—इम्पीरियल गजट, भा. 17; पृ. 86

दूसरे लोगों ने सोचा कि हमारा उद्देश्य युक्ति से गायकवाड़ के अधिकार को समाप्त कर देने का है इसलिए वे बड़ी प्रसन्नता से कम्पनी की अधीनता स्वीकार करने की इच्छा जताने लगे और गायकवाड़ की उपेक्षा-सी करते प्रतीत होने लगे। यही नहीं, कुछ ऐसे प्रवंचनापूर्ण प्रयत्न भी किये गये कि गायकवाड़ सरकार की दयानतदारी पर से हमारा विश्वास उठ जाय। ऐसे प्रयत्नों के विरुद्ध तैयार रहना और उनको प्रथम प्रयास में ही समाप्त कर देना आवश्यक जान पड़ा। उनका अभिप्राय प्रवंचनापूर्ण था जिसके परिणाम, आचरण में भेद और असहयोग उत्पन्न हो जाने के कारण, संयुक्त हितों पर आधारित उद्देश्य के लिए बहुत गम्भीर निकल सकते थे। इसलिए मैंने भोमियों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि कम्पनी की फौजें तो काठियावाड़ में गायकवाड़ की सहायता के लिए आई थीं और हमारा मकसद कम्पनी की मध्यस्थता से देश में ऐसी स्थायी व्यवस्था कायम कर देने का था कि जिससे गायकवाड़ सरकार भी लाभान्वित हो और भोमियों के हित भी हमेशा के लिए सुरक्षित हो जाएं।

कर्नल वॉकर के प्रयत्नों से गायकवाड़ सेना के सेनापति विट्ठलराव ने योग्यतापूर्वक पूर्ण सहायता की, जिससे जल्दी ही भोमियों के मन में विश्वास उत्पन्न हो गया; ब्रिटिश सरकार के अभिप्राय निःस्वार्थ हैं, इस बात को सहज ही प्रमाणित करने के लिए भी एक प्रसंग उपस्थित हो गया। कंदोरणा का किला नवानगर वालों ने छीन लिया था जिसको ब्रिटिश सेना ने हस्तगत करके पुनः उसके मूल स्वामी को लौटा दिया। अब भोमियों के विचार पूरी तरह बदल गये थे और कितने ही निर्बल राजा तो ब्रिटिश सरकार के न्याय द्वारा अपने सभी नुकसानों की पूर्ति के स्वप्न देखने लगे। ब्रिटिश प्रतिनिधि ने जिन लोगों को संरक्षण से लाभ हो सकता था उनको संरक्षित करने के प्रत्येक अवसर का तत्परता से उपयोग किया, बहुत से धाड़ैतियों को घर बैठा देने में वास्तविक सफलता प्राप्त की और अन्य बहुत से आतंकपूर्ण कार्यों को भी रोका, परन्तु उसने अपने प्रयत्नों को सामान्यतया एक ही उद्देश्य के प्रति केन्द्रित किया और वह यह था कि भोमियों के दुर्भाग्यपूर्ण अस्पष्ट और दुःसाध्य मामलों के विवादों में न पड़ कर ऐसी व्यवस्था करना कि जिससे उनको भविष्य में भय से मुक्ति और सुरक्षा प्राप्त हो सके। इतने दिनों से राजस्व की कोई दर निश्चित नहीं थी और इसकी रकम घटती-बढ़ती रहती थी इसलिए उसकी मुख्य कठिनाई राजस्व कायम करने के लिए कोई उचित मानदण्ड ग्रहण करने की थी। स्पष्ट था कि एक तरफ तो बड़ोदा सरकार का ऐसी आशा रखना उचित ही था कि उनकी राजस्व आय में यदि बढ़ोतरी न हो तो जो कुछ उस समय थी उसमें बिना कमी किये रकम कायम की जाए—और ब्रिटिश सरकार को भी उनकी आवश्यकताओं की पूरी-पूरी जानकारी थी ही; उधर भोमियां सरदार भी ब्रिटिश सत्ता पर विश्वास किये बैठे थे कि उनसे जो अत्यधिक रकम वसूल की जाती थी उससे उनकी

वचत हो जायगी और उन पर हमेशा के लिए ऐसी मालगुजारी नहीं बांधी जायगी जिसका अदा करना उनके बूते से बाहर हो।

बाबाजी और अन्य प्रशासकों के समय में राजस्व की चालू दर मुख्यत: 'अतिरिक्त व्यय' (सायर खर्च) के नाम पर बहुत ज्यादा बढ़ गई थी और भोमियों ने उनकी भूमि की अधिक से अधिक आय पर हिसाब लगाकर कायम की गई इस रकम को अनिच्छापूर्वक स्वीकार कर लिया था; यह रकम स्थायी बन्दोवस्त के लिए उचित नहीं थी। इसके दो कारण थे, एक तो इसको क़ायम हुए इतना समय नहीं हुआ था कि इसको अमल-दर-आमद माना जा सके; दूसरे, यह बात स्पष्ट थी कि आगामी वर्षों में बिना बल प्रयोग और दवाव के इसका वसूल होते रहना सम्भव नहीं था। अतः प्रत्येक सरदार को थोड़ी बहुत छूट अवश्य दी गई और मुख्यत: उक्त मद में। फिर, ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता से इक़रारनामें तय हुए। इनके अनुसार बड़ोदा सरकार को यह आश्वासन दिया गया कि ख़िराज की जो दर तय हुई है उसके हिसाब से रकम नियमित रूप से अदा होती रहेगी और देश के भोमियों को इस बात के लिए पावन्द किया गया कि वे आपसी आक्रमण, लूट खसोट और ऐसे आतंककारी कार्य बंद कर देंगे जिनसे मुल्क में अब तक लगातार दुःख फैले हुए थे; समुद्री किनारे की छोटी-छोटी रियासतों ने जल-दस्यु वृत्ति का परित्याग करने की प्रतिज्ञा की तथा अपनी सीमा में टकराकर टूटे हुए जहाजों की सम्पत्ति पर से अपना हक छोड़ दिया; उसी समय जाड़ेजा और जेठवा[5] राजपूतों ने कन्या-वध की

---

5. जाड़ेजा अथवा जारेजा और जैठवा अथवा जेठवा राजपूत जातियों के विषय में देखिए—टॉड कृत 'इतिहास' सं. 1920, भा. 1; पृ. 102, 136।

इस विषय में टॉड कृत 'Travels in Western India' का हिन्दी अनुवाद 'पश्चिमी भारत की यात्रा' का प्रकरण 19 भी द्रष्टव्य है।

अयोध्या के राजा रामचंद्र जी के सेनापति दक्षिण देश के राजा हनुमान जी का पुत्र मकरध्वज हुआ। उसको रामचंद्र जी ने श्रीनगर का राज्य दिया। उसके मोरध्वज हुआ जिसने मोरवी बसाया, जहाँ 'ध्वज' नामधारी सात राजा हुए। इसके बाद अड़तालीस 'कुमार' पदवीधारी राजा हुए। तदुत्तर बारह 'राजान' पदधारी और सत्ताइस 'महाराज' पदवी वाले राजा हुए। 94वाँ माणजी महाराज और 95वाँ जेठीजी हुआ जिसके वंशज जेठवा हुए। ऐसी एक किंवदन्ती प्रचलित है कि जब हनुमान जी समुद्र लाँघकर लंका जा रहे थे तो उनके पसीने की बूँद को एक मकरी निगल गई और उसके गर्भ रह गया। उसी का पुत्र मकरध्वज हुआ।

श्री सी. वी. वैद्य ने अपने 'स्टोरी ऑफ दी रामायण' नामक ग्रन्थ के पृ. 55 में लिखा है कि हनुमान मनुष्य कोटि के थे।

अमानुषिक प्रथा को भी बन्द करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और मध्यस्थ बनी हुई (ब्रिटिश) शक्ति ने देश को आतंक एवं मुल्कगीरी अभियानों से प्रतिवर्ष होने वाली हानि से बचाने का बीड़ा उठाया। इन करारों को स्थायी रूप से कायम रखने व गायकवाड़ सरकार को यह पक्का विश्वास दिलाने को कि इन सदुपायों को अपनाने पर बहुत से भावी लाभ आधारित हैं, प्रान्त में मरहठा घुड़सवारों और ब्रिटिश सहायक सेना की एक पलटन कायम रखने का निश्चय किया गया।

ब्रिटिश राजदूत के प्रभाव से जो बन्दोबस्त योग्यतापूर्वक किया गया उसके फलस्वरूप काठियावाड़ के ताल्लुकेदारों ने तो इस बात का आभार माना कि रकम वसूल करने के एक आतंकपूर्ण तरीके में बहुत बड़ा सुधार आ गया और इसका भविष्य प्रायः निश्चित हो गया; उधर, गायकवाड़ सरकार के अधिकारों को (जो अब पहले की तरह केवल अधिकाधिक शक्ति के साधनों पर ही आधारित नहीं रहे थे) देश के ठाकुरों ने स्वेच्छा से अधिक दृढ़ता और औपचारिकता के साथ मान्य कर लिया और अब ये सम्बन्ध भविष्य के लिए ऐसे आधारों पर स्थिर हो गए जो प्रायः सभ्य रियासतों में परस्पर हुआ करते हैं। कर्नल वॉकर का कहना है कि "इससे यथार्थ रूप में वह लाभ हुआ जिसको गायकवाड़ से पूर्व कोई भी सरकार प्राप्त नहीं कर सकी थी।"

प्रकरण छठा

वाघेल–धोलका के कसवाती–झाला

अब हम उन राजपूत घरानों का विवेचन करेंगे जिनका कर्नल वॉकर से उस समय वास्ता पड़ा। जब गुजरात के पूर्वोल्लिखित बहुत से परगने ब्रिटिश अधिकार में आए तो बाद के कौल करारों द्वारा उस क्षेत्र के अनेक भागों में अंग्रेजी सरकार के प्रभाव का प्रसार हुआ।

राजवंशी वाघेलों की छोटी शाखा के विषय में हमको अहमदशाह के समय से अब तक कोई बात लिखने का अवसर नहीं मिला।[1] कर्नल वॉकर ने साणंद अथवा कोट के राजा का पता लगाया जो धोलका परगना के स्वतंत्र गरासियों[2] में अग्रगण्य था। यद्यपि उसके अधिकार में चौबीस ही ग्राम थे फिर भी वह राजा की पदवी धारण करता था एवं विस्मृत अणहिलपुर के उच्च राजवंश की सन्तान होने का गर्व करता था। उसका मुख्य नगर कोट था जो यद्यपि दुर्ग अथवा नगरकोट से सुरक्षित नहीं था फिर भी एक दुर्भेद्य झाड़ियों के जंगल से घिरा हुआ था। वह अपनी सेवा में दो हजार पैदल सिपाही व डेढ़ सौ घुड़सवार रखता था जो हमेशा उसके निवास-स्थान पर पहरा देते थे और उसकी अंगरक्षा करने अथवा शत्रु पर आक्रमण करने में उसी तत्परता से संलग्न थे जैसे किसी सार्वभौम सत्ताधारी राजा के सेवक होते हैं। गांगड़ का सरदार उनका सम्बन्धी था जिसके पास यद्यपि गिनती के आठ ही गांव थे परन्तु वे बहुत उपजाऊ थे और उसके पास एक हजार सिपाहियों की सेना थी।

ये दोनों ही ठाकुर सर्वोच्च सत्ता को वार्षिक कर दिया करते थे। यह रकम परिस्थितियों के अनुसार घटती बढ़ती रहती थी। सरकार को उनके आन्तरिक

---

1. देखिए रासमाला, हि. अ., भा. 1 (उ.); पृ. 314–15.
2. गुजरात के गरासिया वंशपरम्परागत भू-स्वामी, जमीनदार या वतनदार थे। बहुत करके ये लोग मुसलमानों के समय से ही शासक सत्ता को एक निश्चित 'जमा' या रकम कर के रूप में देते आते थे। मरहठों के अधिकार में गरासियों का एक नया दल उठ खड़ा हुआ, जो सिर्फ लुटेरे थे और जहाँ कहीं मौका मिलता जमीन पर कब्जा करके वे गढ़ियाँ बना लेते थे। वहाँ से आस-पास के देश से 'टोडा गरास' के नाम से कर वसूल करते या लूटपाट करते रहते। वे लोग प्रायः गुजरात के बड़े मैदान (रास्ती) के पूर्व में पहाड़ी इलाके (मेहवास) में बने रहते थे और मैदान में लूटपाट किया करते थे।

मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था; वह तो केवल इनसे बलपूर्वक कर वसूल कर लेती थी और इनको देश की शान्ति में गड़बड़ी पैदा करने से रोके रखती थी।

वाघेलों के पड़ोस में ही धोलका के कसबाती[3] थे, जो मुसलमानों की एक लड़ाकू जमात थी। ये लोग प्रान्त के मुख्य नगर में रहते थे और मरहठे इनको राजपूत गरासियों की शक्ति से मुकाबला करने के लिये बहुत ही उपयोगी समझते थे। कसबातियों के तीन भेद थे, मीणा, रहेण और परमार। ऐसी प्रसिद्धि है कि पहली दो जातियां तो सोलहवीं शताब्दी के अन्त में दिल्ली की तरफ से आई थीं। अन्तिम जाति के लोग, जैसा कि उनके नाम से ही ज्ञात होता है, राजपूत रक्त के हैं और वास्तव में मूली के परमारों के वंशज हैं जो मुसलमान धर्म में परिवर्तित होकर बोताद में बस गए थे।[4]

कवियों की कथा के अनुसार सन् 1654 ई० में बोताद के मलिकों में से दो भाइयों में झगड़ा हुआ और उनमें से एक मलिक मोहम्मद नाराज़ हो कर धोलका चला गया। उसके पौत्र कमाल मोहम्मद के सात पुत्र हुए जो अपनी अधीनता में दो सौ घुड़सवारों के साथ अहमदाबाद में अभयसिंह राठौड़ की सेवा में रहते थे और बाद में नवाब कमालउद्दीन (या जवांमर्द खां) बाबी के साथ हो गए थे। जब नवाब अहमदाबाद छोड़ने को बाध्य हुआ तो परमार जूनागढ़ लौट आए और वहां पर बहुत वर्षों तक सेवा करते रहे। अन्त में, जब उनकी तनख्वाहें बहुत चढ़ गईं तो जूनागढ़ के नवाब ने गारियाधार के गांवों की खिराज वसूली के अपने अधिकार उनको दे दिए क्योंकि वह स्वयं वसूल करने में समर्थ नहीं था। ये भाई गारियाधार के लोगों से पहले ही से बहुत मिले जुले थे इसलिए वे अपने कुटुंब और सेना सहित राजी-खुशी वहां के लिए रवाना हो गए। गांव वालों को इससे बड़ी तकलीफ हुई और उन्होंने इस पाप को हमेशा के लिए काट देना चाहा; परन्तु, इसी बीच में उन लोगों के मन में किसी प्रकार की शंका उत्पन्न न हो जाय इसलिए उन्होंने एक-एक घुड़सवार को

---

3. कसबाती का अर्थ है कस्बे या नगर में रहने वाले। ये कसबाती लोग प्रायः उन सिपाहियों के वंशज हैं जो लूट या बोहरगत (रुपया उधार का लेनदेन) के द्वारा मालदार हो गए हैं और मध्यम वर्ग अथवा जमींदार श्रेणी तक जा पहुंचे हैं। गायकवाड़ सरकार इनसे नरमी का व्यवहार करती थी और इनसे ही अधिकृत गांवों के कर की रकम तय कराती थी। इनको ऋणियों को बन्दी बनाने का अधिकार प्राप्त था और सुरक्षा की एवज़ में बनियों से रकम वसूल करने को भी ये लोग अधिकृत थे। घोघा समुद्रतट के कुछ मल्लाह भी कसबाती हैं। हमारे व्यापारिक जहाजों के लिए आजकल हमको घोघा प्रान्त से बहुत से कुशल नाविक इन्हीं में से प्राप्त होते हैं।
4. देखिए रासमाला हि. अ.; भा–1 (उ.) पृ. 339–345।

एक-एक घर में आमन्त्रित किया और उनकी बड़ी आवभगत की। अन्त में, एक रात को जब सभी अश्वारोही आराम कर रहे थे तो संकेत के लिए नगाड़ा बजाया गया और प्रत्येक गृहस्वामी ने अपने अतिथि घुड़सवार को मार डाला। मलिक फतह मोहम्मद और मलिक उच्छा, बस यही दो परमार-बन्धु जीवित बचे, बाकी उनके सभी भाई अपने समस्त रक्षकों के साथ नष्ट हो गए।

जब यह खबर धोलका पहुंची तो सब तरफ से यही चिल्लाहट हुई कि बड़ा भारी अत्याचार हो गया। दोनों ताल्लुकेदारों ने भी कहा, 'यदि हम युद्ध में मारे जाते तो कोई ग़म नहीं था, परन्तु हमारे साथ दग़ा करके यह अत्याचार किया गया है। हम तो अब फकीर हो जाएँगे।'' उनके मित्रों ने फकीर न बनने और बदला लेने के लिए उनको समझाया बुझाया। उन्होंने यह बात मान ली और नये घोड़े खरीद कर व नये आदमी साथ लेकर नवाब की सेवा में जूनागढ़ लौट गये। कुछ वर्षों तक तो बदला लेने का कोई अवसर नहीं मिला परन्तु अन्त में एक बार जब गायकवाड़ की सेना काठियावाड़ में दौरा कर रही थी तो धोलका का कसबाती नीवाज खां रेहण भी मरहठों के साथ था। रेहण और परमारों में अच्छा मेलजोल था इसलिए मलिक फतह मोहम्मद और मलिक उच्छा भी उसके साथ हो लिये। नीवाज खां ने गारियाधार का लगान गायकवाड़ को चुका दिया और बाद में ताल्लुकेदारों का बदला लेने के लिए उसने गांव पर आक्रमण करके उसको नष्ट कर दिया; वहां पर गधों से हल चलवाया और नमक बुआ दिया। परमारों ने गांव के मुखिया व उसकी दो लड़कियों को पकड़ लिया और उनको अपनी रखेल बना लिया।

कमाल मोहम्मद ने बहुत धन पैदा किया था; परन्तु उसके सब से बड़े लड़के ने अपनी तलवार का उपयोग इतनी अच्छी तरह किया कि उनके वंश की सम्पदा बढ़ गई और उसको कुछ गांव भी प्राप्त हो गए। वह केशरी का ताल्लुकेदार कहलाता था और उसके अधिकार में सोलह गांव थे। गारियाधार में उसकी मृत्यु हो जाने के बाद उसका भाई फतह मोहम्मद उसका वारिस हुआ; वह भी 1746 ई० में मर गया तब उसका पुत्र शेर मियां गद्दी पर बैठा। उसने ताल्लुके पर अच्छी तरह शासन किया, अपनी तलवार का अच्छा उपयोग किया और अपने गरास में वृद्धि की।

शेर मियां 1799 ई० में मर गया और उसका पुत्र भावा मियां उत्तराधिकारी हुआ।

फतह मोहम्मद के भाई मलिक उच्छा को उसके पिता की जायदाद में कोई हिस्सा नहीं मिला परन्तु अपने सद्भाग्य से उसको स्वतंत्र रूप से कुछ गांव मिल गए और उसने अपना ठिकाना कायम कर लिया; वह बनवाड़ा का ताल्लुकेदार कहलाने लगा। यह ताल्लुका भी धोलका परगना में ही था। 1765 ई० में उसकी मृत्यु हुई तब उसके तीन पुत्र थे। सब से बड़ा नाना मियां अपने पिता की गद्दी पर बैठा और

1799 ई० में निःसन्तान मर गया। उसके भाइयों को पिता के गरास में तो कोई हक नहीं मिला परन्तु उन्होंने अपने ही वलवूते पर कई ग्राम प्राप्त कर लिए। उनकी वहन मूल वीवी शेर मियां को व्याही थी। और भावा मियां यद्यपि दूसरी स्त्री का लड़का था फिर भी वह एक तरह से नाना मियां का भानजा था इसलिए वही उसका वारिस हो गया और उसको पांच गांव, एक हाथी, दो सौ घोड़े व अन्य सम्पत्ति प्राप्त हो गई।

भावा मियां के गद्दी पर वैठने के कुछ ही समय वाद चार सौ लुटेरे जट्ट अश्वारोहियों की एक टोली ने आकर उसके एक गांव पर आक्रमण किया; उनका खयाल था कि शेर मियां तो मर ही गया है, अब वे निर्भय होकर यह कार्यवाही कर सकते हैं। यद्यपि वे शेर मियां से कई वार मात खा चुके थे, परन्तु इस बार कुछ मवेशी घेर ले गए और वापस केशरी पहुंच कर ही उन्होंने दम लिया। यहां उन्होंने गांव वालों को वहुत तंग किया और यद्यपि लोगों ने वहुत समझाया कि "यह शेर मियां का गांव है, यदि उसके घुड़सवार आ पहुंचेंगे तो तुमको हानि उठानी पड़ेगी"; परन्तु जट्टों ने कोई ध्यान नहीं दिया और कहा "शेर मियां तो संसार से चला गया और उसका लड़का पालने में झूल रहा है।" भावा मियां ने जब इस घटना का हाल धोलका में सुना तो वह तुरन्त घोड़े पर सवार हो साठ अश्वारोहियों को साथ लेकर रवाना हो गया। उस समय उसकी अवस्था वाईस वर्ष की थी। जव उसका मुकावला लुटेरे घुड़सवारों से हुआ तो वह निधड़क होकर उनके बीच में चला गया और उसने ऐसी तलवार चलाई कि उसकी उम्र को देखते हुए सब दंग रह गए। लुटेरे जल्दी ही भाग खड़े हुए और पांच मृतकों व अनेक घायलों को पीछे छोड़ गए। जव धोलका के लोगों को मालूम हुआ कि ताल्लुकेदार ज़ट्टों पर हमला करने के लिए रवाना हो गया है तो वड़ी संख्या में घुड़सवार तैयार होकर उसकी मदद करने को दौड़ पड़े परन्तु वे लड़ाई के समय पर वहां नहीं पहुंच सके। उनके पहुंचने से पहले ही भावा मियां और उसके साथी गिरफ्तार किए हुए घोड़ों और मारे गए पांच जट्ट मुखियाओं के सिर साथ लिए हुए लौट रहे थे।

उन दिनों जट्ट और काठी वड़ी-वड़ी टोलियां वना कर देश में वेरोकटोक घूमते रहते थे मानों वे सरकारी सिपाही हों। भावा मियां के पूर्वजों ने उन्हें अनेक वार परास्त किया था और इसी कारण उनमें कट्टर दुश्मनी चली आ रही थी, परन्तु जव उसने उस नादान उम्र में ही ऐसी वहादुरी दिखाई और उसकी कीर्ति दिन व दिन वढ़ने लगी तो जट्ट लोग उसका सामना करने से डरने लगे।

शेर मियां पेशवा की सेवा में रहा था, परन्तु भावा मियां गायकवाड़ से मिल गया और वहां उसने वहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। जव 1800 ई० में शेलूकर को निकालने के लिए वड़ोदा की सेना अहमदावाद के विरुद्ध रवाना हुई तो भावा

मियां दो सौ घुड़सवार लेकर उसके साथ था; और 1802 ई० में जब गायकवाड़ ने मल्हारराव के विरुद्ध ब्रिटिश सहायता मांगी और उनकी सेना को खम्भात में उतर कर कड़ी की ओर बढ़ने में कठिनाई महसूस हुई तो गायकवाड़ ने भावा मियां को लिखा। वह दो सौ घुड़सवार लेकर ब्रिटिश सेना के साथ गया और अंग्रेजों के साथ उसके बहुत अच्छे सम्बन्ध बन गए।

प्रसिद्धि प्राप्त करने बाद भावा मियां 1812 ई० में मर गया। उसके दो पुत्र बापू मियां और मलिक मियां थे जिनमें से बड़ा गद्दी का मालिक हुआ। उस समय उसके ताल्लुके में तीस गांव थे।

यह वृत्तांत कसबातियों के उस प्रमुख घराने का है जिसके विषय में कर्नल वॉकर ने उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि ये लोग वीर और उपद्रवी थे। इनमें से बहुतों के पास बड़ी संख्या में घुड़सवार रहते थे जिनको आवश्यकता पड़ने पर ये पड़ोसी शक्तियों को किराये पर दे देते थे। धोलका प्रान्त का प्रायः सभी खुशहाल हिस्सा इनके अधिकार में था; ये लगान के लिए रकम अगाऊ देकर भूमि को रहन लिखवा लेते थे इसलिए यहां पर इन लोगों का बहुत प्रभाव था।

पाटड़ी[5] में संस्थापित हो जाने के बाद झाला राजपूतों की उन्नति के विषय में लिखने को हमें बहुत ही कम सामग्री प्राप्त हुई है। हरपाल का ज्येष्ठ पुत्र शेडो अथवा सोढोजी हुआ। उसकी पन्द्रहवीं पीढ़ी में चन्द्रसिंहजी[6] के समय में झालों की राजधानी पाटड़ी से कच्छ के छोटे रण के किनारे हलवद नामक नगर में स्थानान्तरित हो गई और उसी के राज्यकाल में अथवा उसके तुरन्त बाद ही हरपाल की रियासत दो भागों में बंट गई जो अब तक अपनी-अपनी स्वतंत्रता बनाए हुए हैं। चन्द्रसिंहजी के बड़े पुत्र पृथ्वीराज ने अपना पैतृक राज्य तो खो दिया परन्तु वांकानेर और वढवाण की अलग गद्दियां कायम कर लीं; दूसरा पुत्र अमरसिंह हलवद में अपने पिता की गद्दी पर बैठा जिसकी सन्तान में ध्रांगध्रा के वर्तमान महाराजा हैं; तीसरे पुत्र अभयराज जी ने लखतर में अपनी गद्दी स्थापित की। सायला का घराना हलवद वाले अमरसिंह की शाखा में है और चूड़ा में वढवाण वालों के छुटभाई की शाखा चलती है। जिस महाराणा चन्द्रसिंह जी का हवाला यहां पर दिया गया है उसका नाम मीरात-ए-अहमदी में मिलता है

---

5. देखिए रासमाला (हि. अ.) भा. 3, पृ. 22-23।
6. काठियावाड़ गजेटियर के पृ. 426 में लिखा है कि चन्द्रसिंह जी ने 1584 ई० से 1628 ई० तक राज्य किया।
   वे 1618 ई० में बादशाह जहांगीर से भी मिले थे। (तुजुके जहांगीरी का रॉजर्स और बेवरिज कृत अंग्रेजी अनु: भा. 1; पृ. 428।

ग्रौर लिखा है कि वह 1590 ई० में वीरमगांव में गुजरात के शाही वजीर खान ग्रजीज कोका से मिला था। हरपाल के दूसरे पुत्र शेखड़ोजी ने वीरमगांव जिले में संचाणा (ग्रथवा ससाना) में चौरासी गांवों का गरास कायम कर लिया था जो वाद में ब्रिटिश राज्य में मिला दिए गये थे, परन्तु उसके वंशज वहां पर ग्रब भी 'वांटा' वसूल करते हैं। हरपाल के तीसरे पुत्र मांगोजी ने लीमड़ी की गद्दी कायम की जो पहले शीग्रानी[7] में ग्रौर वाद में जाम्वू में स्थापित की गई थी।

चन्द्रसिंहजी के पुत्र पृथ्वीराज की वात भाट लोगों ने इस प्रकार कही है—

हलवद के राजा राजश्री चन्द्रसिंह जी के तीन पुत्र थे जिनमें पृथ्वीराज सव से वड़ा था। शीग्रानी के राजपूत उदाजी ने ग्रहमदावाद के सूवेदार से झगड़ा होने के कारण गांव छोड़ दिया ग्रौर हलवद की तरफ चला गया। पृथ्वीराज घुड़सवारी के लिए निकला था। वह ग्रपने घोड़े को पानी पिलाने के लिए एक तालाव पर ले गया ग्रौर संयोग से उसी समय ऊदाजी भी इसी ग्रभिप्राय से वहां ग्रा गया। तालाव पर कुछ लोगों ने ऊदाजी को पृथ्वीराज के पास न जाने की चेतावनी दी क्योंकि उसकी ग्रादत ग्रपने पास ग्राए हुए घोड़ों के चावुक मार देने की थी। ऊदाजी ने इस वात की परवाह नहीं की ग्रौर कुंग्रर के पास चला गया। जव कुंग्रर उसके घोड़े के चावुक मारने को तैयार हुग्रा तो ऊदाजी ने तुरन्त ग्रपना भाला सम्हाला ग्रौर कहा 'ग्रगर तुम मेरे घोड़े के चावुक मारोगे तो मैं भाला चलाऊंगा।' उस समय पृथ्वीराज निश्शस्त्र था इसलिए वह गांव लौट गया ग्रौर वहां पर ऊदाजी के डेरे को लूटने की तैयारियां करने लगा। जव चन्द्रसिंह जी ने यह वात सुनी तो तुरन्त ही उन्होंने हलवद की सीमा में शरण लेने वालों को लूटने के लिए मना करवा दिया। पृथ्वीराज ने इन वातों पर कोई ध्यान नहीं दिया ग्रौर जव तैयारी पूरी हो गई तो डेरा लूटने को निकल पड़ा। इस पर चन्द्रसिंह जी भी ग्रपने घोड़े पर सवार हो कर ऊदाजी के डेरे में जा उतरे। जव कुंग्रर को उसके पिता की इस कार्यवाही का पता चला तो उसने ग्राक्रमण का विचार तो छोड़ दिया, परन्तु नाराज होकर वढवाण की तरफ चला गया ग्रौर वहां से ग्रासपास के इलाकों में लूटमार करने लगा।

कुछ समय वाद उसके पास दो हजार साथी हो गये। एक वार जव उसको खवर मिली कि ऊंटों पर लदा हुग्रा खजाना जूनागढ़ से ग्रहमदावाद जा रहा है तो वह तैयार हो कर मार्ग में छुपकर वैठ गया ग्रौर खजाने को लूट ले गया। जव खजाने के रक्षकों ने जा कर शिकायत की तो मुसलमानी सरकार ने पृथ्वीराज का सर काट लाने वाले के लिए इनाम का ऐलान किया ग्रौर उसकी

---

7. शीग्रानी लीमड़ी का कस्वा ग्रौर उपजिला है।

तलाश में एक जमादार को दो हजार घुड़सवार देकर रवाना कर दिया। जब इस अधिकारी को पृथ्वीराज की शक्ति का पता चला तो उसने चालाकी से काम लेने का फैसला किया। उसने एक दूत को वढवाण भेज कर कहलाया कि उसे तो लगान वसूल करने को तैनात किया गया है अतः यदि पृथ्वीराज उसका साथ देगा तो बड़ी कृपा होगी; जमादार ने कुरान की कसम खाई कि जब तक पृथ्वीराज उसको धोखा न देगा तो वह भी कोई धोखादेही का काम नहीं करेगा। इस पर पृथ्वीराज उसके साथ हो गया और उन्होंने शीआनी पर आक्रमण करने की योजना बनाई। इस हमले में वे सफल भी हुए और ऊदाजी मारा गया। तब उसकी स्त्री के 'सत' चढ़ा और उसने सेवकों को पृथ्वीराज से अपने पति का सर मांगकर लाने को भेजा। पृथ्वीराज ने ऊदाजी का सर काटकर एक पेड़ पर लटका दिया था। उसने सती को कहला दिया कि जब तक वह स्वयं आकर उसे न ले जाय सर नहीं दिया जाएगा। इस पर ऊदाजी की स्त्री आई और वस्त्र कमर पर लपेटकर पेड़ पर चढ़ गई। उसी समय पृथ्वीराज ने ऊदाजी को गाली देकर कहा, 'बेटा! तूने तो मेरे ऊपर भाला सम्हाला ही था, अब देख, मैंने भी तेरी स्त्री को पेड़ पर चढ़ने को मजबूर कर दिया है।' जब सती ने ये शब्द सुने तो क्रोधित होकर उसने पृथ्वीराज को शाप दिया, 'ठीक है, तूने मुझे वृक्ष पर चढ़ने को विवश कर दिया है, परन्तु तेरे शोक में तो कोई भी स्त्री स्नान नहीं कर पाएगी।'[8] सती ने और दूसरे लोगों ने भी पृथ्वीराज को उसके कर्मों के लिए बुरा-भला कहा और उसको भी इसके लिए पछतावा भोगने में अधिक समय नहीं लगा। अस्तु, वह जमादार के साथ खिराज वसूल करता रहा। एक बार पृथ्वीराज के आदमी सेना के अग्रभाग में होने के कारण किसी विश्रामस्थल पर पहले जा पहुंचे। वहां पर एक कुआ था परन्तु उसमें पानी बहुत कम था इसलिए उन्होंने उस पर तम्बू तान दिया और कह दिया कि वहां कोई कुआ नहीं था।

---

8. उसका तात्पर्य यह था कि जब पृथ्वीराज की मृत्यु होगी तो किसी को पता भी न चलेगा कि वह कब और कहां मर गया।

मृतक को जब श्मशान में ले जाते हैं तो घर पर उसकी स्त्री और अन्य कुटुम्ब की स्त्रियां स्नान करती हैं। इसको 'पाणीवाड़ा' कहते है। यहां सती के शाप का यही तात्पर्य ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज का 'पाणीवाड़ा' ही नहीं होगा।

[वास्तव में, उसके भाइयों के बहकावे में आकर अहमदाबाद के सूबेदार ने पृथ्वीराज को कैद कर लिया था और उस नगर में बन्दी के रूप में उसकी मृत्यु हुई थी। आंग्रा राज्य का विस्तृत विवरण काठियावाड़ गजेटियर में देखना चाहिए। वंशावली इस प्रकरण के अन्त में दी गई है।]

इस प्रकार उसके सिपाहियों को तो वहीं पानी मिल गया और जमादार के आदमियों को छः मील से पानी लाना पड़ता था। जब जमादार को यह बात बताई गई तो उसने कहा 'पृथ्वीराज ने पहले धोखा दे दिया; अब मेरी कसम टूट गई।' इसके बाद वह छलकपट करके पृथ्वीराज को पकड़ ले गया और आज तक इस देश में किसी को मालूम नहीं है कि उसका क्या हुआ।

इस प्रकार अपने पिता की मृत्यु के समय पृथ्वीराज अनुपस्थित रहा और उसके भाई अमरसिंह ने हलवद पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज के दो पुत्र थे; एक सुलतान जी जिसके वंशज वांकानेर के वर्तमान राजा वखतसिंह जी हैं; दूसरा राजाजी था जो वढवाण की गद्दी का प्रथम पुरुष हुआ। राजाजी का विवाह सोम कुंअर बाई से हुआ था जो राव नारायणदास के पुत्र और वीरमदेव के भाई राठौड़ श्री ईसवदासजी की पुत्री थी—सम्भवतः यह वही महिला थी जिसका उल्लेख ईडर के राजकुमार के चरित्र में हुआ है। यह 'राठौड़ानी' सन् 1643 ई. में अपने प्रियपति के साथ ज्वालाओं में बैठ कर इस संसार से विदा हुई; यह बात हमें उसके दाहस्थान पर निर्मित मंदिर की मूर्ति और शिलालेख से ज्ञात होती है। इस मन्दिर को बड़े आदरभाव से 'सती राठौड़ माता' का मन्दिर कहा जाता है और यह स्थान अभागिनी राणक देवी के मन्दिर से अधिक दूर नहीं है। त्यौहार के दिन राजसी वस्त्रों और रत्नों से मूर्ति का शृंगार किया जाता है। और उसके वंशज वहां आकर प्रणाम करते हैं।

वढवाण में जो सतियों के मन्दिर हैं उनमें एक 'हाड़ी माता' का मन्दिर भी है। इस महिला का नाम बाई श्री देव कुंअर था; वह हाड़ा सरदार अमरसिंह की पुत्री और महाराणा श्री अर्जुनसिंह की पत्नी थी और उन्हीं के साथ 1741 ई. में सती हुई थी। यह मन्दिर अर्जुनसिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी महाराणा श्री सबल सिंह ने बनवाया था, जो हाड़ीरानी के पेट से पैदा नहीं हुआ था अपितु उसकी माता परमार शाखा की थी और उसका नाम अच्छुवा था। हाड़ी माता के देवरे के बराबर ही महाराणा श्री चन्द्र सिंह जी की छतरी है, जो उनके पुत्र और उत्तराधिकारी महाराणा श्री पृथ्वीराज ने 1779 ई. में बनवाई थी। उसकी माता का नाम बाई श्री कुशल कुंवर था और वह पीथापुर के बाघेला सरदार श्री जोराजी की पुत्री थी। इन थोड़े से स्मारकों से ही हमको झालावंश की सम्पदा के विषय में कितने ही वर्षों का मात्र वृतान्त प्राप्त होता है।

अन्तिम उल्लिखित वढवाण अधिपति चन्द्रसिंह जी का वृत्तान्त भाटों की ख्यातों में इस प्रकार मिलता है :—वढवाण के समीप मेमका ग्राम का एक लोहाना बैलों पर दाल लाद कर धन्धुका के पास भाल प्रान्त में रोजका नामक गांव में बेचने गया था। काठियावाड़ में बैलों पर लादे हुए बोझ को 'झालड़' कहते हैं। रोजका के मेपजी नामक चूड़समा गरासिया ने अपनी एक पुत्री का विवाह झाला राजकुमार के साथ

किया था, परन्तु वह उस घराने से हमेशा झगड़ा ही रखता था। उसने मसखरी करते हुए लोहान से कहा, 'तेरे झाले का क्या मोल है? 'लोहाना ने उत्तर दिया,' एक झाला के एक सौ भाल्या[9] लगते हैं।' यह सुनकर चूडासमा बहुत नाराज हुआ और उसने लोहाना को खूब पीटा तथा उसका बैल छीन कर गांव से बाहर निकाल दिया। लोहाना ने जाकर अपने स्वामी वढवाण के राजा चन्द्रसिंह जी से पुकार की। राजा ने बैल और उस पर लदे हुए बोझ की कीमत पूछ कर लोहाना को चुका दी और अपने मन में किसी न किसी दिन रोजका के ठाकुर से बदला लेने का दृढ़ निश्चय किया।

चूडासमा का मोरशिया नामक ग्राम था। कुछ समय बाद चन्द्रसिंहजी दो हजार सवार लेकर उधर गए। उन्होंने गांव को लूटा और घरों की लकड़ियां गाड़ियों में भरवा कर अपने घर की ओर रवाना हो गये। मेपजी के पुत्र लाखाभाई और रामाभाई अपने बहनोई लीमड़ी के राजा हरभूमजी[10] के पास गए और वढवाण के साथ झगड़े का किस्सा कह कर अपने भारी नुकसान का हाल सुनाया। हरभूमजी तुरन्त ही सात सौ घोड़े और आठ सौ पैदल लेकर उनकी सहायतार्थ रवाना हो गया और अपने साथ गायकवाड़ के सेनानायक भगवानभाई को भी ले गया, जो उस समय बारह हजार घुड़सवार लेकर उस इलाके में आया हुआ था और लीमड़ी में ठहरा हुआ था। मित्र सेनाएं शाम को भादर नदी के किनारे पर ठहरीं और उन्होंने अपनी बन्दूकों से चन्द्रसिंह जी का रास्ता रोकने का इरादा किया। इतने ही में वढवाण का राजा भी वहां आ पहुंचा और उसने उनके पास ही अपना पड़ाव डाला। उसने सोचा कि अब लूट के सामान को घर ले जाना असम्भव है और यदि एक भी गाड़ी पीछे रह गई तो उसकी आबरू चली जायगी इसलिए उसने सब गाड़ियों के आग लगा दी। प्रातःकाल तीन बजे उठकर चन्द्रसिंह जी ने कसूंभे का 'लाल प्याला[11] पिया। उसे निश्चय हो गया था कि होने वाली लड़ाई में वह अवश्य मारा जायगा इसलिए उसने गंगाजल पिया, पवित्र तुलसीदल मुंह में रखा और कुछ मूंगे के आभूषण धारण किए।[12] जब वह इस प्रकार तैयार हो गया तो गोरिम्भो नामक एक

9. भाल्या के दो अर्थ हैं; एक, मिट्टी का बर्तन और दूसरा, भाला इलाके का निवासी।
10. लीमड़ी के हरभूम जी के वर्णन के लिए देखिए—काठियावाड़ गजेटियर, पृष्ठ 534.
11. घोटी हुई अफीम को 'कसूंभा' कहते हैं, जिसका त्योहार के अवसरों पर प्रत्येक राजपूत सरदार पान करता है और अपने हाथ से साथियों में भी वितरण करता है।
12. ये सब क्रियाएं अन्तिम समय में सम्पन्न की जाती हैं।

अरब जमादार ने, जो उसका सेवक था, कहा, 'ठाकुर ! यदि आप को उचित प्रतीत हो तो मैं अपने पाँच सौ मकरानियों के साथ उनकी तोपों पर हमला करूं और आप मुख्य फौज का सामना करें अथवा मैं केन्द्र पर आक्रमण करूं और आप तोपों का सामना करें।' चन्द्रसिहजी ने प्रथम प्रस्ताव को ही सबसे अच्छा समझा और घोड़े से उतर कर अपनी तलवार और ढाल सम्हाल ली। तब उसके सरदारों में से एक ने आकर समझाया कि पैदल युद्ध करना ठीक नहीं है, परन्तु दरबार ने उत्तर दिया 'क्या अब भी जीवित रहने की कोई आशा बच रही है ?' सरदार ने उत्तर दिया, 'महाराज ! यह तो परमात्मा के हाथ की बात है, झाझरा कुलदेव और शक्तिदेवी आपकी रक्षा करें ! परन्तु, जब घोड़ा मौजूद है तो आपको पैदल युद्ध करने की क्या आवश्यकता है ?' इस प्रका उसने राजा को पुनः घोड़े पर चढ़ने को राजी कर लिया और दूसरे सवार भी अपने-अपने घोड़ों पर चढ़ कर शत्रु पर आक्रमण करने चल पड़े। उधर गोरिम्भो जमादार अपने पांच सौ पैदलों के साथ तोपों की तरफ आगे बढ़ा। तोपों में गोले भरे हुए थे और वे नदी के दूसरे किनारे पर थीं। गोलंदाजों ने भरसक जल्दी की, परन्तु जमादार के आदमी पहले ही किनारे से उतर कर नदी के पेट में पहुंच गए थे इसलिये अब वे गोले उनके सर से ऊपर होकर दूसरी ओर जाने लगे। जमादार ने तुरन्त ही गोलंदाजों पर आक्रमण कर दिया और वे तोपें छोड़कर भाग खड़े हुए। इसी बीच में चन्द्रसिहजी ने हरभूमजी की सेना के मुख-भाग पर आक्रमण कर दिया और गोलंदाजों के भागने के कारण पस्तहिम्मत होकर वह सेना भी भाग गई। हरभूमजी बचकर लीमड़ी भाग गया परन्तु चन्द्रसिंह जी ने उसका ठेठ तक पीछा किया और लगभग पचास सवारों को मार गिराया।[13]

जब लड़ाई समाप्त हो गई तो गायकवाड़ के सेनानायक भगवानभाई ने एक छड़ी बरदार[14] को भेज कर कहलाया कि तोपें तो उसके स्वामी की सम्पत्ति थीं। चन्द्रसिहजी ने कहा कि उसे तो इस बात का कोई पता ही नहीं था, सेनानायक आकर अपनी तोपें ले जाएं अथवा वह स्वयं भेज देगा। तब मरहठा घुड़सवार आकर तोपें वापस ले गए और भगवानभाई बड़ोदा लौट गया। चन्द्रसिहजी भी अपने घर वढवाण वापस चला गया।

चन्द्रसिहजी और हरभूमजी की मृत्यु के बाद लीमड़ी के राजा हरभूमजी के पुत्र हरिसिहजी ने चन्द्रसिह जी के पुत्र पाथाभाई (पृथ्वीराज) से बदला लेने को आक्रमण किया। वह पांच सौ घोड़े और दो सौ पैदल लेकर वढवाण पर आया।

13. भाटों ने एक ऐसी भी वार्ता लिख रखी है कि चन्द्रसिह जी को हरभूम जी पिता अदेराजी (उदेराज जी) ने परास्त किया था। काठियावाड़ गजे.के पृष्ठ 553-54

14. चांदी की छड़ी लेकर जाने वाला सन्देश वाहक।

घुड़सवार-सेना को तीन भागों में विभक्त किया गया; एक टुकड़ी तो वढवाण से छः मील दूर खारी नदी पर और बाकी दो खेरालू (केराला) और पालीयावल्ली के तालावों पर जमा की गई। ऐसा हुआ कि लीमड़ी के कोई पचीस सवार वढवाण के दरवाजे तक बढ़ गए और उन्होंने एक किसान को मार डाला, और आगे भी कुछ नुकसान किया इतने ही में गश्त पर निकले हुए पाथाभाई के पन्द्रह सवारों ने उन पर अचानक आक्रमण कर दिया। लीमड़ी के आदमी भाग गए और पाथाभाई के सवारों ने नदी के किनारे तक उनका पीछा किया जहां उनकी आगे वाली सेना पड़ी हुई थी। वढवाण के सिपाहियों ने छावनी पर गोलियां चलाई और पांच आदमियों को मार दिया; बाकी लोग भी भाग गए और उन्होंने केराला तक उनका पीछा किया। राजा पाथाभाई को जब इस घटना की खबर मिली तो वह दो सौ पैदल और तीन सौ सवार लेकर तुरन्त रवाना हो गया और उसने केराला में डेरा डाले हुए शत्रुओं पर आक्रमण कर दिया, जो हार कर भाग गये। इस झगड़े में परवड़ी का रामाभाई और हरिसिंहजी का मामा लाखाभाई काम आए। उनकी छतरियां अब भी उस स्थान पर मौजूद हैं।

खारी नदी पर एक और लड़ाई हुई जिसमें स्वयं हरिसिंह जी मौजूद था। इस मुकाम पर पाथाभाई के मामा पीथापुर के वाघेला शेर भाई को उसका घोड़ा हरिसिंहजी की फौज के बीच में लेकर निकल गया। हरिसिंह जी ने उसका पीछा किया और मार डाला। इसके बाद दोनों सेनाएं अपने-अपने घरों को वापस लौट गई।[15]

कुछ वर्षों बाद संवत् 1863 (1807 ई.) में झालों में पुनः परस्पर झगड़ा हो गया। वढवाण की सीमा पर एक खोरा नाम का गांव है जिसमें एक पुराना गढ़

15. नीचे दिए हुए दोनों दस्तावेजों से दोनों पक्षों में हुए समझौते पर प्रकाश पड़ता है। पहला तो 'रणवटी' दस्तावेज है जो लड़ाई में मारे गए मनुष्यों के वारिसों की क्षति पूर्ति के लिए लिखा गया है; दूसरा 'बाहरवाटियों' (दस्युओं) को वापस उनके घर बैठाने के समय का है।

(1)

महाराणा श्री हरभूम जी योग्य लिपायतं झाला गोपालजी, झाला वीसोजी झाला भावजी, झाला भाईजी, झाला अज्जा भाई, झाला मूलोजी, झाला रामसिंहजी, झाला रतनजी, झाला संग्रामजी, झाला रतनजी लाखाजी तथा समस्त भायात की राम-राम वंचज्यो। अपरंच वारेजड़ा गांव में भाइयों में झगड़ा खड़ा हुआ और झाला मालजी तथा झाला हमीर जी ने झाला रामसिंहजी का माथा काट लिया। इसलिए (लीमड़ी के) चौरासी गांवों से झाला मालजी तथा झाला

→

है जो सिद्धराज का बनवाया हुआ बताया जाता है। वहां से छः मील की दूरी पर ध्रांगध्रा के राजा का गूजरवेदी नामक गांव है। सीमा के इन दोनों नाकों पर वढवाण और हलवद के राजाओं की चौकियां थीं। एक वार बकरईद के दिन गूजर

हमीरजी को देश निकाला दिया गया है और झाला मालजी तथा झाला हमीर जी के भाग का जो गरास (वंशपरंपरागत भूमि) वारेजड़ा और जालिया गांवों में है वह झाला राम सिंहजी के सर के वदले में झाला कुशियाजी को चन्द्र और सूर्य तपें तब तक के लिए 'आघाट' (कदापि अपुनर्ग्राह्य रूप में) दिया जाता है। कुशियाजी को इन दोनों गांवों की उपज मिलेगी और वे ही इस गरास का उपभोग करेंगे। इसके अतिरिक्त झाला मालजी तथा हमीरजी के किसी भी वंशज को चौरासी गांवों में नहीं वसने दिया जावेगा। ऐसे आदमी को जो भी कोई रखेगा वह दरवार (लीमड़ी के महाराणा) का गुनहगार होगा और दरवार उसे दण्ड देंगे तो कोई शिकायत नहीं होगी। हम सव करार के अनुसार चलेंगे और इसके लिए नीचे लिखे लोगों की जमानत है; वोडाणा का रावा वासंग, रावा भग्गा, रावा नारायण, रावा धना तथा गढवी अणदा। हम ऊपर लिखे अनुसार आचरण करेंगे। संवत् 1833 (1777 ई.) मागशिर सुद 6 सोमवार।

दस्तखत	तत्र साख (साक्षी)
गोपालजी आदि	श्री जगदीश (अर्थात् सूर्य)
व कलम झाला संग्रामजी	झाला मालजी
	झाला मेघा भाई
	झाला चांदा भाई
	राठोड़ कांदा
	गोलेतर राजाजी
	देसाई लल्लू भाई

लिखतं भवानीदास, वणियों (दोनों पक्षों) के हजूर (उपस्थिति) में लिखा है।

(2)

नीचे लिखी प्रतिज्ञा के पालन में श्री भीमनाथ जी साक्षी हैं। हम इसका पालन करेंगे।

महाराणा श्री हरिसिंहजी योग्य लिखायतं झाला कुशिया श्री रामसिंह तथा केशाभाई निवासी वारेजड़ा का जुहार वंचावसी। शा. नानजी डूंगरशी का हम पर कर्जा था उसके चुकारे की निशा में हमने गांव वारेजड़ा उनके रहन कर दिया था। वाद में हमारे और नानजी के झगड़ा हो गया और हम गांव छोड़ कर उकराला चले गए, जहां से हमने दरबार को बहुत कष्ट पहुंचाया। इन कृत्यों के पश्चाताप में हम वारेजड़ा गांव दरवार को सत्तर वर्ष

→

वेदी के मुसलमान सिपाही अपने गांवों में बकरा तलाश करने गए और जब वहां कोई बकरा नहीं मिला तो खोरा की तरफ निकल गए। वहां एक एवड़वाले से तीन शिलिंग (डेढ़ रुपये) में बकरा ठहरा लिया परन्तु बिना कीमत चुकाए ही उस पशु को लेकर चलते बने। एवड़वाला तुरन्त ही गांव में लीमड़ी की चौकी पर गया और उसने जो कुछ वाकया हुआ उसको बयान कर दिया। इस पर लीमड़ी थाने के आदमी निकले और गूजरवेदी जाकर बकरा मांगने लगे। ध्रांग्ध्रा के सिपाहियों ने अब पशु की कीमत देने का इकरार किया परन्तु लीमड़ी वालों ने पैसा लेने से इनकार कर दिया और बकरा लेकर वापस घर चले गए। जब ध्रांग्ध्रा के आदमियों ने हलवद

के लिए नजर करते हैं; इस अवधि पर्यन्त दरबार ही इस गांव का उपभोग करें। इसके बाद जैसा भी दो आदमी कहेंगे वैसा फैसला नानजी की देनदारी का कर लेंगे। इन शर्तों के बाद ही दरबार ने हमको बुलाकर गांव में 'जिवाई भूमि' (निर्वाह योग्य) प्रदान की है जिसका उपभोग करते हुए हम जीवनयापन करेंगे और किसी प्रकार की गड़बड़ी भविष्य में नहीं करेंगे। इस करार का पालन करने हेतु हम निम्नलिखित व्यक्तियों की जमानत पेश करते हैं—चंधुका कसबाती, सैयद बुलाकी आजम भाई, शेख साहिब तथा परबड़ी के चूडासमा रामसिंह जी, ये सब अपनी-अपनी माल मिल्कियत सहित जवाबदार हैं। संवत् 1853 (1797 ई.) भाद्रपद सुद 2, शनिवार।

इसके सिवाय यदि ऊपर लिखे जमानतदार कभी अस्वीकार करें तो भगवान दास मेहता की जमानत है; तथा गढ़वी दला जीवण तापड़िया शाखावाला, गढवी जीवण साहू खम्भलाव का, गढ़वी अज्जा ऊदा देथा शाखा का पचम गांव का और रावल देव करशणवाला पानशीणा गांव का भी अपनी-अपनी माल मिल्कियत सहित जवाबदार हैं।

गढ़वी दला, ऊपर लिखा सही — साख (साक्षी)

श्री जगदीश (सूर्य)

राठोड़ कांदा

झाला वाजीभाई, गेडी ग्रामवासी

वाघेला हाथी भाई भवानजी लोलियाना का

गढ़वी अज्जा देथा, ऊपर लिखा सही — शा पीताम्बर भवानी

गढ़वी जीवण साहू, ऊपर लिखा सही — सोलंकी काका जेतारा

पटेल मूलो आशा

गोहिल हजूजी जेठाजी दो कुरला का

रावल देव करण वेला ऊपर लिखा सही

लिखितं मयाराम, वणियों के हजूर में लिखा [देखिए—टॉड कृत राजस्थान का इतिहास, सन् 1920; भा. 1; पृष्ठ 235, 324

जाकर अपने राजा को घटना का वर्णन किया तो वह नाराज हुआ और बोला 'तुमने त्यौहार के दिन जो पशु खरीद लिया था उसे वापस क्यों ले जाने दिया ?' इसके बाद उसने वढवाण पर चढ़ाई करने का पक्का इरादा कर लिया और कानेर, वाँकानेर, सायला और चूड़ा के ठाकुरों तथा लीमड़ी के हरिसिंह जी को सहायता के लिए बुला भेजा। इनमें से वाँकानेर वाला तो नहीं आया और बाकी सब अपना-अपना लश्कर लेकर आ गए। हरिसिंह जी ने वढवाण वालों को कहलाया 'तुम आत्म-समर्पण कर दो। तुम हलवद और लीमड़ी को अलग-अलग समझते हो ? यदि तुम हनुमान से मुकाबला करोगे तो अवश्य ही हार खाओगे। समझदार मनुष्य यम को अपने द्वार पर कभी नहीं बुलाता। जो कुछ होना था सो हो गया, परन्तु अब भी यदि तुम हठ करोगे तो तुम्हारे दुर्ग का नाश हो जाएगा और फिरंगियों की सेना देश भर में फैल जाएगी।[16] परन्तु, वढवाण के पृथ्वीराज ने तो सामना करने का ही निश्चय किया और कभी ध्रांगध्रा और कभी लीमड़ी से लूटे हुए धन से सेना इकट्ठी कर ली। जब मित्र सेनाएं एकत्रित हो गईं तो एक बार तो ध्रांगध्रा के राजा ने सम्पूर्ण खर्चा उठाया और बाद में जब उसने बन्द कर दिया तो सब ठाकुर अपने-अपने आदमियों का खर्च उठाने लगे। मैदान में कुछ लड़ाइयां होने के बाद पृथ्वी-राज वढवाण के किले में जाने को विवश हुआ तब मित्र-सेनाओं ने घेरा डाल दिया और अपनी तोपों से एक जगह रास्ता निकाल लिया। इस अवसर पर भाटों और चारणों ने दोनों ओर के योद्धाओं में बीच बचाव करके शांति करा दी।

यहां तक तो भाटों के आधार पर वृत्तान्त लिखा गया है; अब, इसके बाद ही कर्नल वॉकर झालावाड़ में पहुंचा था, उसने यहां का हाल इस प्रकार लिखा है—

---

16. कवि जमाल ने 'वकरी की लड़ाई का गीत' रचा है, जो 'फॉर्ब्स गुजराती सभा' के हस्तलिखित-ग्रन्थ-संग्रह में सं. 35–1–च पर सुरक्षित है :—

हरि हंदे फरमाण लख्यो, वली भेज्यो वढवाण।
हलवद ने गढ लिंबडी, जूदां पथा म जाण ।।
जूदां पथा म जाण, नवी नहि धारिये।
हडमत साथे वाथ, भरतां हारिये ।।
कर मांह वांवव प्रीत, अजारे कारणे।
बुद्धि कोय जमराज, तेडावे बारणे ?
वेधियां ज्यां न दीशे, दुजो जाशे दरंग।
फेलाशे फरंगी घटा, चोकाशे चतरंग ।।
चोकाशे चतरंग, सवइया चालशे।
होक हवाईयां कंईक, वाण हालशे ।।
गोलें मारी कोट, पियाले घालशां।
हलहलो ही लोक, ने भाला आलशां ।।

'लीमड़ी, वढवाण और ध्रांग्ध्रा के राजाओं में जो पिछले दिनों लड़ाई हुई वह भी (देश की दुर्दशा का) एक कारण है। इस लड़ाई का उपहासयोग्य प्रसंग इस प्रकार बन गया कि ध्रांग्ध्रा के थाने के कुछ सवारों ने एक गड़रिये से मूल्य तय करके बकरा लिया था, परन्तु उसने जाकर फरियाद कर दी। इस पर वढवाण के कुछ आदमी आकर उन सवारों से उस बकरे का मांस छीन ले गए जो वे पका रहे थे। इससे ध्रांग्ध्रा वालों में वैरभाव उत्पन्न हो गया; एक लड़ाई से दूसरी की आग सुलग गई; लींमड़ी का ठाकुर भी इस झगड़े में शामिल हुआ और यह विरोध यहां तक बढ़ा कि वढवाण के साठ से भी अधिक गांवों में से चार को छोड़कर जब तक सब बरबाद न हो गये और वढवाण के किले की दीवारें न टूट गईं तब तक शांति नहीं हुई। दूसरे तालुकों में भी इसी तरह का नुकसान हुआ।

भाट की ख्यात के अनुसार इस झगड़े में हलवद के राजा का एक लाख रुपया, लीमड़ी वाले के पचासी हजार और चूडा व सायला वालों के दस-दस हजार रुपये खर्च हुए।

जब कर्नल वॉकर काठियावाड़ में मरहठों की मुल्कगीरी का बन्दोबस्त कर रहा था तब समस्त झालावाड़ भी इसी में शामिल था और कितने ही कारणों से यह देश अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त हो गया था। आपसी कलह का मूल कारण किसी भी राजा अथवा ठाकुर की जायदाद का उसके वंशजों में बंटने का रिवाज था; और, यह रिवाज गुजरात के इसी भाग तक सीमित नहीं था। बड़ी शाखा वाले छोटी शाखा वालों के विरुद्ध इसलिए जोरजबर्दस्ती या छल कपट करके ऐसे प्रयत्न करते रहते थे कि उनकी जायदाद अधिक छिन्न-भिन्न न हो। इससे राजपूत कुटुम्बों में निरन्तर ही आपसी वैमनस्य बना रहता था। देश पर बाहरी संकट भी कम दुखःदायक नहीं थे; काठी, जट्ट, मियांणा[17] और नन्य लुटेरी जातियां इस प्रान्त के थोड़े से गांवों के दुःखी लोगों में सदैव त्रास उत्पन्न करती रहती थीं। लकड़ी और वनस्पति के अभाव में खेतीवाड़ी की दुर्दशा साफ दिखाई देती थी। झालावाड़ के बहुत से हिस्सों में तो किसान शस्त्र लेकर खेतों में जाते थे और प्रत्येक

---

17. मियांणों का निकास सिन्धियों से है। ये बहुत लड़ाकू होते हैं और मालिया में बहुत बड़ी संख्या में बसे हुए हैं। निम्नलिखित वृत्तान्त से उनके सामान्य रहन-सहन व चालचलन का अनुमान किया जा सकता है—

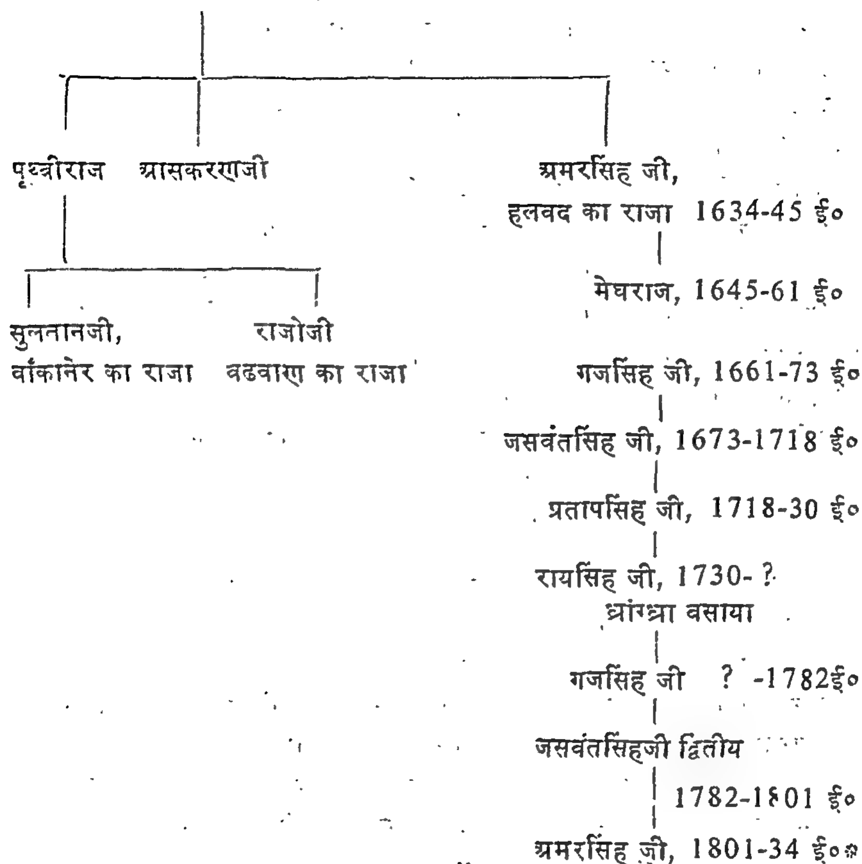
एक दिन गायकवाड़ सेना का एक अरब सिपाही नमाज पढ़ रहा था, उसी समय एक मियांणा उधर से निकला और पूछा 'तुम को ऐसा किसका डर लग रहा है कि सर को इतना झुकाए हुए हो? अरब ने कुछ नाराज सा होकर जवाब दिया 'मैं अल्लाह के सिवा किसी से भी नहीं डरता।' मियांणा ने कहा, 'तो आओ, मेरे साथ मालिया चलो न, वहां तो हमें अल्लाह का भी डर नहीं है।' मियांणा जाति के विशेष विवरण के लिए देखिए, बॉम्बे गजेटियर वा० 9, भाग 1, पृष्ठ 519

गांव में किसी ऊंचे स्थान अथवा ऊंचे पेड़ पर मचान बांध कर चौकसी की जगह बना ली जाती थी जहां से भयभीत करने वाले लुटेरों के घोड़ों को देखते ही सूचना दी जाती थी। ढोर, नित्य बरतने योग्य बर्तन और हल ही किसानों की मात्र सम्पत्ति थी; वे तुरन्त ही इनको लेकर पास के किसी ऐसे गाँव में चले जाते थे जहां थोड़ा बहुत बचाव हो सके; कदाचित् मैदान ही में लुटेरे उन्हें आ पकड़ते तो वे उन्हें 'रण' के रास्ते मोड़ कर कच्छ अथवा चोरवागड़ के बाजार में ले जाते जहां तुरन्त ही उनके दाम उठ जाते थे। पेशवा, गायकवाड़ और जूनागढ़ के नवाब द्वारा वार्षिक मुल्कगीरी की चढ़ाइयों से यह देश, जिसको प्रकृति से पूर्ण फलद्रूपता प्राप्त हुई थी, और भी अधिक बरबादी और गैर आबादी की ओर आगे बढ़ रहा था। इसके ऊजड़ होने की स्थिति का स्पष्ट अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब मरहठा सूबेदार इधर से निकलते तो बलीते (इन्धन) की इतनी तंगी पड़ती कि कभी-कभी तो भोमियां ठाकुरों को अपना कोई गांव ही खाली कराकर लश्कर को ईंधन पहुंचाना पड़ता था। विशेषतः इस समय तो विपत्तियों के और भी बढ़ जाने के मुख्य कारण बाबाजी द्वारा पिछली बकाया की वसूली, नडियाद से बचकर मल्हारराव का इस देश में आ जाना और झाला सरदारों के आपस के विनाशकारी झगड़े थे, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

झालावाड़ बहुत से स्वतंत्र राज्यों में विभक्त हो गया था जिनमें हलवद अथवा ध्रांगध्रा, लीमड़ी, वढवाण, वांकानेर, चूड़ा, लख्तर और सायला मुख्य थे। इनकी स्थापना के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है। ध्रांगध्रा के राजा को कुल-क्रमानुसार अब भी बड़ा माना जाता था और दरबारी प्रसंगों में उसको प्रथम सम्मान तथा हरपाल के वंशजों में सबसे ऊंचा आसन दिया जाता था। इस राजा के राज-काज में बड़ी अव्यवस्था थी और इसके राज्य को एक अयोग्य मंत्री लूट रहा था जो बाद में फरार हो गया। झालाओं की दूसरी रियासतों की हालत भी इससे अच्छी नहीं थी और चूडा और लख्तर के ताल्लुकेदारों ने तो अस्थायी रूप से मरहठों की अधीनता ही स्वीकार कर ली थी। लख्तर के मंत्री हीरजी खवास ने दरबार को पैसा उधार दिया था और रियासत पर सम्पूर्ण सत्ता प्राप्त करली थी। वह किला बनाने की तैयारी कर रहा था और इस तरह अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का मनसूबा बांध रहा था। झाला सरदार ने डर कर अपनी पुत्री गेनाबाई से सहायता मांगी जो स्वर्गीय महाराजा गोविन्दराव गायकवाड़ की विधवा थी। अब, बड़ोदा सरकार को बीच में पड़ना पड़ा; उन्होंने हीरजी खवास का कर्जा चुका दिया, परन्तु कार्यकर्ताओं के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे लख्तर रियासत का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लें कि जिससे सरकार का ऋण बेबाक हो सके। जब यह कदम उठा लिया गया तो उन्होंने दरबार के गुजारे के लिए उपज का एक भाग नियत कर दिया।

प्रकरण छः का परिशिष्ट

(ध्रांग्ध्रा के राजाओं का वंश वृक्ष)



● ●

* गुजराती भावान्तरकर्त्ता ने परिशिष्ट में 1843 ई० से लिखा है, वह ठीक है; आगे के राजाओं का क्रम इस प्रकार है :—

रणमलसिंह जी (1843-1869)
|
मानसिंह जी (1869-1900)
|
अजीतसिंह जी (1900-1911)
|
घनश्यामसिंह जी (1911-)

प्रकरण सातवां

धोलेरा के चूडासमा-गोहिल

पहले कह चुके हैं कि सोरठ प्रायद्वीप में अंग्रेजों ने अपना प्रथम जमाव गिरनार के प्राचीन राजवंश में गणनीय अधिपतियों के आश्रय में कायम किया था। सोरठ के रावों के एक छुटभइया ने पैतृक सम्पत्ति के रूप में चार चौरासियां (अर्थात् प्रत्येक चौरासी गांव का परगना) प्राप्त की थीं; इनमें से एक धन्धुका का तालुका उसके पुत्र रायसलजी को मिला था। रायसल जी के चतुर्थ पुत्र मेहरजी के वंश में चूडासमा गरासिया सैसलजी हुआ जिसके अधिकार में, आनन्दरावं गायकवाड़ के समय में, धोलेरा, राहतलाव बंदर, भांगड़, भीभतलाव, गूमा और सैबीलाव ग्राम थे अथवा इन पर वह अपना हक बताया करता था। सब मिला कर इन गांवों का क्षेत्रफल एक लाख बीघा था। इनमें से तीन गांव वेचराग या ऊजड़ थे।

जब अहमदाबाद के सूबेदार और मरहठों में बंटवारा हुआ तो धन्धुका कन्ताजी भाण्डे के हिस्से में आया और वह इसको अपनी निराली जागीर समझने लगा। कन्ता जी से इसे दामाजी गायकवाड़ ने ले लिया और जब दामाजी को पेशवा के अधीन होना पड़ा तो यह पूना दरबार के अधिकार में चला गया। मरहठा सरकार की अधीनता में देश की अव्यवस्था और शासकों की दिन-ब-दिन बिगड़ती हुई आर्थिक अवस्था के कारण परगनों का ठेका कूमाविशदारों अथवा इजारदारों को इतनी भारी रकम पर दिया जाता था कि बिना अत्याचार किए उसका वसूल होना संभव नहीं था। इन लोगों को जो इलाका इजारे पर दिया जाता था उस पर केवल आस-पास के राज्यों वाले ही धावे नहीं मारते थे वरन् कोई भी लुटेरा जो सौ-पचास आदमी अपने झण्डे के नीचे इकट्ठे कर लेता था वही इनको लूटने के लिए सक्षम हो जाता था। इस प्रकार गांवों की बरबादी हो रही थी और इलाके का बहुत बड़ा हिस्सा ऊजड़ हो गया था। उस समय बहुत से छोटे-मोटे जागीरदार यह चाहते थे कि वे अपने आपको व अपनी जागीरों को किसी ऐसी सरकार के संरक्षण में सौंप दें जो पड़ोसी राज्यों की लूट-खसोट से उनकी भूमि को बचा सके और उन राज्यों को उस कर से अधिक रकम वसूल करने से रोक सकें जो वे मुगल शासकों को उस समय दिया करते थे। इन गरासियों की नजर में ब्रिटिश सरकार, जो अब सामने आ रही थी, एक ऐसी सत्ता थी जैसी कि वे चाहते थे इसलिए उन्होंने सहायता के लिए अपने-अपने आवेदन-पत्र भेजे।

मिस्टर डंकन ने 11 जून, 1802 ई. के अपने पत्र में खम्भात से गवर्नर जनरल को लिखा "यहां से बीस मील दक्षिण में राहतलाव अथवा धोलेरा नामक बन्दरगाह है, उसके स्वामी मानाभाई गोरभाई और सायसलजी सत्ताजी तथा उनके भाईबन्धु हैं; ये लोग पिछले चार वर्षों से आग्रह कर रहे थे कि उनके गांव की उपज में से उनके लिए आधा भाग छोड़ देने की शर्त पर उस बन्दर पर कब्जा कर लूं। गुजरात द्वीपकल्प के साथ अपने व्यापारिक और अन्त में राजकीय सम्बन्धों में सुधार करने की दृष्टि से मैंने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली है। उन लोगों ने ऐसा इसलिए किया है कि पड़ोसी लुटेरों से उनकी रक्षा हो जाय और मुख्यतः भावनगर के राजा द्वारा भूमि हड़प लेने की कार्यवाही से वे बच सकें। बात यह है कि धोलेरा की अपेक्षा भावनगर बन्दर छोटा और असुविधाजनक पड़ता है इसलिए भावनगर का राजा इसको दबा लेने और अपने बन्दर को मुख्य बनाने की इच्छा से यहां की आबादी को परेशान करता है और गरासियों के भायातों को अपना हिस्सा उसे सौंप देने के लिए मजबूर करने की युक्तियां करता रहता है। इन्हीं लोगों में से हालोजी नाम का एक छुटभाई है जिसने अपना भाग उसको लिख भी दिया है, परन्तु वह हिस्सा इतना छोटा (धोलेरा के सौ भागों में से ग्यारह के बराबर भी नहीं) है कि हमारे साथ इन सब लोगों के हित में जो संधि हो रही है उसमें बाधक बनने में नगण्य है। इसके अतिरिक्त, सम्मिलित जायदाद के किसी भाग को एक ही भाई किसी अन्य को दे दे यह मान्य नहीं हो सकता और यह तुच्छ प्रयास हमारे साथ करार हो जाने के बाद की तारीख में इसलिए किया गया है कि हमारे अधिकारों में बाधा पड़े, परन्तु इसमें कोई दम नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सब गरासियों ने मिलकर हमसे जो पहले मुआयदा कर लिया है उसी की प्रथम प्रतिक्रिया में ही इस कदम को माना जा सकता है। इन गरासियों का इलाका धन्धुका परगने में है और इनको पेशवा को 'खण्डणी' (कर) देनी पड़ती है, परन्तु ऐसा लगता है कि पेशवा इनके आन्तरिक प्रबन्धों में कोई हस्तक्षेप नहीं करता है। यह बात भावनगर के राजा के ताजा प्रयत्नों और जिन शर्तों पर कुछ भूमि वास्तव में उसके अधिकार में दे दी गई है उससे साफ प्रकट हो जाती है।"

सायसल जी और मानाभाई ने जो रास्ता निकाला उसी का अनुसरण करते हुए तुरन्त ही धन्धुका और धोलका परगनों के ग्रामाधिपतियों एवं हकदारों ने सर मिगुएल डी सूज़ा (Sir Miguel de Souza) के द्वारा सिफारिश करा कर अपनी अर्जियां भेजना आरम्भ कर दिया। परन्तु, इस प्रकार जिन गांवों को ब्रिटिश सरकार के अधिकार में देने के प्रस्ताव आए उनमें से बहुतों पर तो भावनगर के रावल, लीमड़ी के ठाकुर अथवा अन्य राजाओं का बीस या इससे भी अधिक वर्षों से कब्जा चला आ रहा था इसलिए रेजीडेन्ट की राय में उन लोगों द्वारा जो दावे पुनः खड़े किए जा रहे थे वे बहुत पुराने पड़ चुके थे अतः उसने इन प्रस्तावों की स्वीकृति को सफलतापूर्वक अमान्य कर दिया। कर्नल वॉकर ने लिखा है—"माननीय कम्पनी

सरकार को जो अस्पष्ट, अविश्वस्त और विवादग्रस्त हक उदारतापूर्वक अर्पित किए जा रहे हैं उनका न कहीं अता-पता है, न किसी को उनकी स्थिति का ही स्मरण है; उनकी शर्तें भी ऐसी हैं कि जिन ऊजड़ ग्रामों को वर्तमान स्वामियों ने आबाद और कृषियोग्य बनाया है वे उनसे ले लिए जाएं और इस प्रकार केवल कम्पनी के साधनों द्वारा होने वाले लाभ का अर्धांश हकदार गरासियों को छोड़ दिया जाय तथा उन्हीं के हित के लिए कम्पनी पुनर्निर्माण कराकर उन गांवों को आबाद करावे। काठियावाड़ में हमारे दृष्टिकोण के अनुसार आगे बढ़ने के लिए मानवीय हितों पर मुख्य ध्यान देना होगा और सामान्यतः कम्पनी सरकार का लाभ, प्रतिष्ठा एवं मान इसी बात में है कि पारस्परिक द्वेषवश झगड़ने वाले प्रतिस्पर्द्धी राजाओं की स्थिति से संकटापन्न लाभ उठाने की अपेक्षा उनमें मेलजोल पैदा किया जाय।"

अब हम पुनः गोहिलों के वृत्तान्त पर आते हैं जो सौराष्ट्र प्रायद्वीप के तट पर अंग्रेजों द्वारा नए अधिकृत स्थानों के समीपतर पड़ोसी थे।

गोहिलों का दसोंधी भाट कहता है[1] कि जब बादशाह की मुद्रा साहू राजा की मुद्रा में बदल गई तो अरबों की टोलियां उस राजा के साथ रहने लगीं; उसका राज्य मक्का तक फैल गया और पूर्व में भद्रिका तक चला गया; उसके सूबेदार इतने शक्तिशाली थे कि दो-गुनी दर पर खंडणी वसूल करते थे।

---

1. गुजराती भाषान्तर में इस वृत्तान्त का एक रूपक दिया है :—

शक्का शाह का फरक्का हुआ शाह हुवा गज शक्का,
लगशा हलका लगे आरबांका लार।
लगे मक्का पूर्वका अठीने बद्रका लगे,
दूणा टका लेवे ऐसा पका सूबेदार। 1
ग्रेह फरी फरी आया कमाय मुलकगरी,
बणी सभा आवी करी हाजरी बखत।
गंध्रवां संगीत गीत केई भांत बातां गातां,
ता ता थेई थेई राजे पीरो तखत। 2
शिवाजी की घोड़ी बाबा कांक तोड़ी बोला शाहू,
दलीका मरोड़ी तोड़ी लीयाने संदेश।
हाथ जोड़ी देशपति कौण देश पेश हूवा,
नुआ कौण देश पेश देश का नरेश ॥ 3
लड़ी आठ काठ लगे राजरे नीम बोलीया,
पाट कीया भाठराज नाट राज पेश।
नरां तरां ठाठ बंधे तोय ठाठ आपे नावे,
दरंगा तोपां का ठाठ हे सोरठ देश ॥4
पीर पठा सूबेदार वठा दठा कंठा पीला,

वे दिग्विजय करके उसके दरबार में लौटे। सभी का नामोच्चार किया गया, राजसभा बुलाई गई, गंधर्व गान करने लगे और वार्ताओं का बखान होने लगा, राजा सिंहासन पर विराजमान हुआ। साहू ने शिवाजी को कहा, 'हमने दिल्ली को तोड़कर विशाल प्रदेश पर अधिकार कर लिया है। अब, कौन-कौन

तठा लखा पदा कीया तठा ही तागीर।
अठा जो सोरठा जीति आव तो सोरठ आंपु,
जठा तठा नग्र ठठा तठां ही जागीर।5

चढाया मुगटा भटापट्टा चढे सेन
वंश वड़ा सोई वेवटा वसात।
वस्ता रस्ता शहेर सोई जावे ऊपसता,
रसता वसता आया छाया गुजरात।6

जाड़ा शलेखाना लही दली का असली जादा,
खागां भली आया भले मुगली खंधार।
मही वही रत चाली रुस्तम अली मार,
हले लार लार जुमले असी हजार।7

कोल पामी जमीदार शीश नामी एम कहे,
ठेई सामी न दे कोउ सलामी गाम ठाम।
दावो कोण वांचे अठे हमारो गरीब दावो,
नमावो भावो तो पावो सतारा ईनांम।8

आया डेरा देता देता हेरा करे फरी आया,
शीशकु नमाया भाया थे हो मेरा शाम।
कोट वीया खेच लीया पेश वीया कीया केक,
कंठे रोप घरी कीया कोस दो मकाम।9

पंडे कुवो वाला पाती मंडे जावी भावा पास,
शीहोर का कोट छंडु तो शंभुका सोगन।
मंडुगा प्रभात भंडा डंडु शहर चारमेर;
मेरे तेरे चार पहोर रात का मगन।10
चीठी दीठी घ्रीठी तांतो भांभट्ठोन त्रिठी चढी,
पंडा पीठी दारु मारावजी ठीको पाप।
वेर गयो पंडतड़ो तणे कंठा आमे कहे खड़ा,
वाट वड़ो लड़ो कोट चढ़ो मारा वाप।11
नोवतां निसान गडे चड़े फोजां खड़े नोर,
नेडा अडे आया अठे शीहोर नरंद।

से देश हमने जीत लिए हैं और कौन से देश बाकी बचे हैं ? शिवाजी ने कहा, 'आपका नमक खाकर मैंने बहुत से देशों को जीता है, भाटी राजा को भी अधीन कर लिया है, परन्तु सोरठ एक ऐसा देश है जहां बहुत से मनुष्य हैं, किले हैं और तोपें हैं। उस देश पर अभी तक अधिकार नहीं हुआ।' तब साहू ने कंताजी और पीलाजी दोनों बराबर के सरदारों की ओर देखा और उनको एक लाख वार्षिक का पट्टा कर दिया। उसने कहा 'यदि तुम सोरठ विजय करोगे तो वह मैं तुमको दे दूंगा; जहां-जहां पर नगर हैं वहां-वहां तुम को जागीर दूंगा।' ऐसा कह कर उसने

मीणोंरो कोकवाण ठणाणे ऊगते भाण,
गणोंरो नाला उगोला घणोंरो गरद ।।2

दो वला धुआका गोट ताकी ओट दहुं दोट,
चलाये कटकां कोट आमसामी चोट ।
लगे नांही चोट लडे लोढ़ जातां कोट लागा
लगे चोट लोटपोट ज्युं कबूत्र लोट ।।3

फडके कड़के केक वीया सीस घुड फके,
न घृगंठी रही महाभड केने दान ।
रदे न थडकी बैठा भावसिंह रतनाणी,
मरेठा कडके बैठा वडके मेदान ।।4

काय तुं हैरान मले कानमां दीवान कयो
सामन आपको रीयो से नहीं सामान ।
काय तुं गुमान करे मोर कह्यो मान कंठा,
मान आयो नहीं मारूं लागो आसमान ।।5

गुण्टी हुं करे गीया कंठा तो ठाउद गीया,
कूच कीया डेरा पाड़े उपाड़े मकाम ।
गीया नांही घरे फरे जाता जाता मरे गीया,
राव घरे नके गीया असा गीया राम ।।6

फरे साख आई शाऊ रावतां बोलाया फरे,
मरे सबे घर आया कबाया आलम ।
पीला कंठा नाठा फरे, अठे कठे फता पाया
मता पाया वता पाया न पाया मालम ।।7

फेर रावताण कावे नाव का नीयाव फावे,
जावे जावे सोई जावे कबू आवे जोय ।
चुगो हतो लावे जे तो छोरवां को छोरू चावे,
माचाकुल लेवा जावे, न मावे भवोय ।।8

उनको राजपद और शिरोपाव प्रदान किए; सेना तुरन्त रवाना हो गई; वह वस्तियों को उजाड़ती हुई आगे बढ़ती रही और गुजरात पहुंच कर अधिकार कर लिया। दिल्ली के अधिकारी तोपखाना लेकर आगे बढ़े और मुगल तलवारें निकल पड़ीं। युद्ध में अस्सी हजार फौज का नेता रुस्तम अली[2] मारा गया। तब जमींदार लोग सिर नवा कर कहने लगे "आप हमारे स्वामी हो, प्रत्येक गांव आपको 'सलामी' देगा। हम तो गरीब हैं, आपका कौन सामना करेगा? परन्तु, यदि आप भाव पर विजय प्राप्त करोगे तो सतारा में आपको इनाम मिलेगा। भाव ने हमको बहुत दुःख दिए तब हमने गर्दन डाल दी और उसको कह दिया 'तुम हमारे स्वामी हो।' उसने बहुत से दुर्गों पर अधिकार कर लिया है।" यह सुन कर कन्ताजी के बदन में आग लग गई; उसने आगे बढ़कर सिहोर से दो कोस के अन्तर पर डेरा डाला। एक ब्राह्मण को बुला कर उसके हाथ भाव के नाम पत्र भेजा 'सीहोर का किला छोड़ दो अन्यथा, शम्भु की शपथ है, मैं प्रातःकाल में ही आकर तुम्हारे नगर में सर्वत्र अपने झण्डे फहरा दूंगा। तुम्हें केवल रात्रि की चार घड़ी का समय देता हूं।" भावसिंह ने उसका पत्र पढ़ा और वह बहुत क्रुद्ध हुआ। ब्राह्मण को कहा "तुम मुझे अपनी पीठ दिखाओ जिससे तुम्हारा वध करने का पाप न लगे।" ब्राह्मण ने जा कर कन्ताजी से कहा "प्रातः प्रयाण करके उससे युद्ध करो।"

नौबतें गड़गड़ाईं, सेना ने कूच किया और कन्ताजी सीहोर आकर पहुंचा जहां पर वह नरेन्द्र विराजमान था। कोकवाण[3] चलने लगे, तोपों के गोले दड़दड़ाने लगे और पहाड़ियां गूंज उठीं। दोनों ओर से गोलाबारी शुरू हुई। दुर्ग में बसने वालों का तो कोई नुकसान नहीं हुआ परन्तु आक्रमणकारी कबूतरों की तरह बिखर गए। बाहरवालों में से बहुत से मारे गए और रेत चाटने लगे। किलेवाले अडिग रहे। रतनसिंह का पुत्र भावसिंह किंचित् भी भयभीत नहीं हुआ—मरहठे थक गए। दीवान ने कहा—"क्यों परेशान हो रहे हो—हमारी सेना और सामग्री बहुत थोड़ी रह गई है? मेरी सलाह मानो। गगनचुम्बी मरु हमारे हाथ नहीं आ सकता।" ऐसा कहकर उन्होंने अपने डेरे उखाड़ लिए और वापस लौट गए। परन्तु, कन्ताजी घर नहीं लौटा और रास्ते में ही मर गया। वह अपने राजा के पास न जा कर यमलोक को चला गया।

दूसरा वर्ष आया। साहू ने अपने रावतों को पुनः एकत्रित किया। उसने कहा "क्या आप सब लोग देश विजय करके आए हैं? क्या पीलाजी और कन्ताजी की कहीं पराजय हो गई, जो वे नहीं आए? उनका क्या हुआ?" रावतों ने जवाब दिया "जो जाता जाता है वह शायद वापस भी लौट आता है और साथ में इतना धन भी

रुस्तम अली की हार के लिए ऊपर देखिए पृ० 4

अग्निबाण।

ले आता है कि बेटे-पोते बैठे-बैठे खावें; परन्तु, जो भाव से युद्ध करने जाता है वह कभी नहीं लौटता।"[4]

पहले लिख चुके हैं कि भावसिंह गोहिल ने अपनी नई राजधानी भावनगर की स्थापना 1723 ई. में की थी।[5] वह साहसी और सूझबूझ वाला

---

4. गुजरात में एक कहावत प्रचलित है—

'जे जाय जावे, ते कदि नह आवे,
जो ते आवे, सात पीढ़ी बैठ के खावे।

इसी का रूपान्तर है—

ते जाय जावे, ते पहरी ने आवे,
जो पहरी आवे, तो पर्‌या-पर्‌या खावे,
एतलु धान लावे।

यह कहावत रोचक होने के साथ-साथ 600 ई० के लगभग जावा उपनिवेश की भी सूचना देती है जो गुजरात के राजा क्षेमचरित द्वारा स्थापित किया गया था। यद्यपि जावा के ऐतिहासिक वृत्तान्तों में इसका उल्लेख मिलता है परन्तु गुजरात में केवल उक्त कहावतों से ही इस बात का पता चलता है। देखिए, बाम्बे गजेटियर वा. 1, भा. 1, परिशिष्ट 4, पृ० 489 और हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट्स इन इंडिया एण्ड सिलोन, पृ० 259

5. यह गोहिलों के दसोंधी भाटों का कहना है। कर्नल वॉकर कहते हैं कि इस नगर की स्थापना 1742-43 ई. में हुई थी। (काठियावाड़ गजेटियर में भी ऐसा ही उल्लेख है; देखिये—भावनगर पर लेख, पृ० 385–97) परन्तु, यह ठीक नहीं है। कथा इस प्रकार है कि भावसिंहजी एक बार सीहोर से इवायरी माता के दर्शन करने गये थे तो वहां वड़वा नामक गांव से आगे एक रमणीय मैदान में जा निकले; इसके एक ओर सुन्दर समुद्री खाड़ी थी, दूसरी ओर सीहोर का मनोरम किला और पालीताना की पर्वत श्रेणी थी; फिर, एक ओर समुद्र का विस्तार और पीरम द्वीप का अद्भुत दृश्य था। इन सब प्राकृतिक सुन्दर दृश्यों को देखकर उनके मन में वहां एक शहर बसाने का विचार उत्पन्न हुआ। सीहोर में लगभग 150 वर्ष से गद्दी चली आती थी और बहुत-सी बातों की वहां अनुकूलता भी थी परन्तु समुद्री लहरों वाले शहर के बिना व्यापार की अपार आमदनी और अन्य सुविधाओं का अभाव ही था। इस विचार को दृढ़ करके उन्होंने पण्डित बुला कर मुहूर्त निकलवाया और संवत् 1779 के वैसाख सुदि 3 के दिन चढ़ते पहर अपने नाम पर भावनगर बसाकर वहां अपनी राजधानी संस्थापित की। इस तरह यह सन् 1723 ई० ही आता है।

सरदार था और अपनी मृत्यु से पूर्व ही इस नव संस्थापित नगर को एक सुस्थिर व्यापारिक केन्द्र के रूप में देख कर उसे सन्तोष प्राप्त हुआ था।[6] मुगल साम्राज्य की अवनति के कारण वह उथल-पुथल और अशान्ति का समय था; नाथों द्वारा यातायात खतरे से खाली नहीं था और व्यापार पर भी भारभूत करों में वृद्धि हो गई थी। घोघा और खम्भात को संरक्षण मिलना बन्द हो गया था तथा अहमदाबाद के साथ लाभदायक व्यापार में कमी आ गई थी इसलिए इन दोनों बन्दरगाहों के व्यापार को अपेक्षाकृत हानि पहुंची थी। वहां बहुत थोड़े से वर्ग ही संस्थापित रूप में रह गए थे; मही के मुहाने से सिन्धु नदी तक का प्रदेश लुटेरों के कब्जे में आ गया था जो नजर पड़ते ही व्यापारियों के माल को लूट लेते थे: और समुद्र दरियाई डाकुओं से भर गया था। इस प्रकार भावनगर में एक अपेक्षाकृत शक्तिशाली शासक के जम जाने से बहुत लाभ हुआ क्योंकि वह सुयोग्य, समर्थ और व्यापार की वृद्धि को प्रोत्साहन देने के लिए उत्सुक भी था।[7] गोहिल रावलों और बम्बई सरकार के पारस्परिक सम्बन्धों का श्रीगणेश हम इसी तिथि से मानते हैं; जैसा कि कर्नल वॉकर ने कहा है "उस समय, जब कि इस इलाके में व्यापार और साधन अब (1807 ई.) की अपेक्षा बहुत सीमित थे तो भावनगर के रावल के साथ मित्रता का निर्वाह बहुत आदर एवं यत्नपूर्वक किया हुआ प्रतीत होता है।"

भावसिंह के बाद 1764-65 ई. में उसका पुत्र अखैराजजी गद्दी पर बैठा। वह सामान्यतः भावाजी के नाम से प्रसिद्ध था। उसके स्वभाव में महत्वाकांक्षा नहीं थी इसलिए युद्ध में भी उसकी रुचि नहीं थी। उस समय तलाजा और महुवा कोलियों के अधिकार में थे जो व्यापारियों और अन्य लोगों के वाहनों पर हमला करके ही अपना गुजरबसर करते थे। इन दोनों स्थानों को मुक्त कराने के लिये जब बम्बई से फौज रवाना हुई तो, अपने समुद्री व्यापार के संरक्षण और संवर्द्धन

---

6. सूरत के सीदी (सिधी) किलेदार के साथ उन्होंने इस प्रकार अनुबन्ध किया था। सन् 1739 ई० में भावनगर के महाराजा और सूरत के किलेदार में यह करार हुआ कि एक ओर महाराजा को बन्दरगाह की जकाती आमदनी का $1\frac{1}{4}$ प्र०श० देगा और सूरत से लदनेवाले व्यापारियों के माल पर कम जकात लेगा; दूसरे, सीदी भावनगर बन्दरगाह और राज्य के शत्रुओं के विरुद्ध महाराजा की मदद करेगा और भावनगर के व्यापारियों का जो माल सूरत जायगा उस पर बिल्कुल जकात वसूल नहीं करेगा। सन् 1760 ई० में दिल्ली के बादशाह ने सूरत के किलेदार का हक ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया तभी से भावनगर राज्य और ब्रिटिश सरकार के बीच मैत्री का बीजारोपण हुआ।

7. भावनगर राज्य की राजवंशावली–भा० 2 के गोहिल प्रकरण में देखना चाहिए।

के लिए आवश्यक समझकर, वह रावल अपनी सेना लेकर उससे जा मिला। विजय के बाद ब्रिटिश सरकार ने तलाजा रावल के सुपुर्द करना चाहा परन्तु अपनी विनम्र नीति के अनुसार उसने इनकार कर दिया। इसके फलस्वरूप तलाजा खम्भात के नवाब को दे दिया गया। यह घटना 1771 या 1772 ई. की है। इससे कोई एक वर्ष बाद ही रावल अखैराजजी कालवश हो गये और उनका पुत्र बखतसिंह गद्दी पर बैठा।

रावल बखतसिंह आताभाई के नाम से अधिक प्रसिद्ध था। वह अपने पिता की अपेक्षा अत्यधिक महत्वाकांक्षी और साहसी था। उसने विविध उपायों और उपलब्धियों द्वारा अपने राज्य का विस्तार किया और साथ ही व्यापार को भी बढ़ावा देकर उसका संरक्षण किया। भाट कहते हैं कि "संवत् 1836 (1780 ई०) में श्री बखतसिंह ने नूर मोहम्मद को तलाजा से निकाल बाहर किया और वहां पर अपना कब्जा कर लिया; उसने जाजमेर को भी अपने अधीन कर लिया। उसी वर्ष उसने जसा खसिया कोली को मार भगाया और श्री महुवा बन्दर पर अधिकार कर लिया।" कर्नल वॉकर का कहना है कि तलाजा से खम्भात के नवाब को निकालने में बखतसिंह ने बल और युक्ति दोनों ही का प्रयोग किया था, उसका यह भी कहना है कि इसके तुरन्त बाद ही रावल ने बालाक जिले पर भी अपना शासन जमा लिया (जिसे प्राचीन काल में बाला राजपूतों[7] की सम्पत्ति होने के कारण यह नाम मिला था) परन्तु उसमें से कुछ ऐसे गांवों को छोड़ दिया था जो सरवैया जाति के अधिकार में थे; पहले अंग्रेजी फौजों के साथ जिस महुआ के किले पर चढ़ाई करके उसको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था उसी को अब उसने पुनः आबाद करके एक चहल-पहल वाला बन्दरगाह बना दिया।

ब्रिटिश प्रतिनिधि कर्नल वॉकर ने आगे कहा है "यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इस मूल्यवान् प्रदेश और विस्तीर्ण समुद्रीतट को जलदस्युओं से प्राप्त किया गया है और इसके लिए भावनगर के ठाकुरों ने कितना भी बल एवं साहस का प्रयोग किया हो परन्तु उनका मुख्य उद्देश्य व्यापार का संरक्षण करने का ही था। इस नीति के नतीजे बहुत अच्छे निकले और व्यापार का संरक्षण करने की इस नियमित योजना से कम्पनी सरकार की रियाया को समुद्रतट पर व्यापार करने की प्रत्येक सुविधा सुलभ हुई। इस नीति से होने वाले लाभ की खोज करने का सर्वप्रथम विचार भावनगर के रावलों की ही सूझबूझ का फल था और उनकी प्रजा

---

7. वलभीपुर का विध्वंस होने के बाद वहां का राजवंश पहले ईडर और फिर मेवाड़ चला गया। वहां से एक शाखा गुजरात में चली आई जो अब धर्मपुर में है। मेवाड़ में बापा रावल के वंशज राणा रहप (1201ई०–1239ई०) के कुल के रामराजा अथवा रामशाह ने गुजरात में आ कर अलीराजपुर में गद्दी स्थापित की।

में लूटपाट करके गुजर करने की जो टेव पड़ गई थी उसे छुड़ा कर मेहनत मजदूरी करके पैसा कमाने की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करने और व्यापारियों के जान-माल को संरक्षण प्रदान करने का भी अद्वितीय श्रेय उन्हीं को प्राप्त है जिससे विशाल समुद्र-तट लूटपाट से मुक्त हो गया और इसके अतिरिक्त अन्य स्थायी लाभ भी हुए।[9] इसके साथ ही, यहां यह भी मानना पड़ेगा कि अपनी महत्वाकांक्षापूर्ण नीति

---

9. अंग्रेजों का एक पत्र—

"दौलत व-अलकाब पनाह शौकत व-इजलाल दरतगाह-जीशान दोस्तों के भरोसेदार ऊंचे खानदान वाले राजा आताभाई वीखतसिंह ! परमेश्वर तुमको सलामत रखे।

आपकी दोस्ती की शोभा के विचार से दोस्ती (प्रकट करने वाले) भाव, मुबारकबादी व दुआ जाहिर करते हैं। कुछ समय हुआ तब ता० 5वीं जिलहद का आपका दोस्ती का खत आया था जिसका जवाब अब से पहले लिखता मगर बहोत से कामों की वजह से देरी हो गई। आपने लिखा था कि बावनगर के कोलियों को इस तरफ से निकाल दिया गया है। सूरत और बंबई मुबारक के व्यापारियों के लिए बन्दर मज़कूर साफ हो गया है, इसके लिए दिल से खुशी (जाहिर करते हैं), अब बन्दर मज़कूर के व्यापार का कारोबार जारी होगा। इन नालायक चोरों पर आप दोस्तदार की फ़तहयाबी से मेरी खुशी बहुत बढ़ी है और बन्दर मज़कूर पर आपके इकबाल की निशानी में राज का कब्जा हुआ इसके लिए इस खुशी के खत के जरिये मुबारकबादी पेश की जा रही है। उम्मीद है कि खुदा का दिया हुआ यह तालुका बढ़ेगा और ताक़तवर दिखाई देगा। खुदा की मदद से हमेशा आप इकबाल की निशानी पर काबिज़ रहें, कि जिससे उस तरफ की तमाम चोरियां बन्द हो जावें और व्यापारियों के जहाजों को जो चोर लूट लेते थे उनसे व्यापारियों को निज़ात हासिल हो। अगर बावनगर से निकाले हुए कोलियों को नवाब हामिदखां आसरा देगा तो हमको और हमारे दोस्त को दिली नाखुशी पैदा होने का पूरा वजूद होगा। खास तौर पर यह कि हम अभी इतने ताक़तवर नहीं हैं कि अपने दोस्तदार की मदद कर सकें। खुदा के फज्ल से उम्मीद है कि नवाब मजकूर आप दोस्तदार के काम के बारे में खयाल खराब नहीं करेगा और आप दोस्तदार को इकबाल की निशानी वाली कम्पनी बहादुर से मदद की दरख्वास्त नहीं करनी पड़ेगी। आप यकीन रखें कि हम हमेशा दिल से आपके मरतबे, दोस्ती और फतह की बढ़ोतरी के ख्वास्तगार हैं। अब दोस्ती व आपसी मेल की बढ़ोतरी की इच्छा के सिवाय क्या लिखूं ? खुशी और ऐश के साथ हमेशा सुख भोगते रहो।

बम्बई, ता० 14 दिसम्बर, सन् 1785 — अंग्रेजी अक्षरों में हस्ताक्षर

के कारण दूसरी बातों में बखतसिंह ने प्रतिष्ठा और न्याय के प्रति अपेक्षाकृत कम ही ध्यान दिया । उसने जितने कदम उठाए सब दमदारी और प्रायः समझदारी से ही उठाए हैं; परन्तु, उसके सभी कार्यों पर स्वार्थ का अत्यधिक प्रभाव रहा है जिसको सिद्ध करने के लिए, सत्ता का विस्तार करने निमित्त अथवा अपनी सफलता की सुनिश्चितता के लिए, उसने बल, छल और युक्ति का खुल कर प्रयोग किया है ।"

इन साधनों के कारण गुजरात, सोरठ और मारवाड़ से भावनगर में माल आने लगा व यहां का माल उन देशों को जाने लगा और व्यापारियों को जो प्रोत्साहन मिला उससे बहुत से धनी लोग यहां आकर बसने को ललचाने लगे तथा पास ही में स्थित घोघा बन्दरगाह अन्य बहुत-सी सुविधायें होते हुए भी, हल्का पड़ गया ।[10] गोहिल ठाकुरों की ऊंची सूझबूझ और उत्तम नीति का उदाहरण देते हुए कर्नल वॉकर ने एक ध्यान देने योग्य बात कही है कि घोघा बन्दर पर, जो उस समय पेशवा सरकार के अधीन था, किनारे से टकराये हुए या टूटे हुए तथा डूबे हुए जहाज वार्षिक आय का स्रोत समझे जाते थे जब कि गोहिलों के अधिकार में जो समुद्र तट था उस पर सर्वत्र उनका संरक्षण होता था तथा व्यापारियों को यथावत् उनका माल लौटा दिया जाता था ।

भाटों की कथा के अनुसार 1792 ई. में बखतसिंह का काठियों के साथ झगड़ा हुआ । वह सेना लेकर चीतल गया तब सब काठी वहां से भाग गये । बखतसिंह वहां से बहुत से घोड़े, ऊंट और गाड़ियां भर-भर कर माल अपने साथ लाया ।[11] फिर उसने कुंडले जाकर अपना झण्डा फहरा दिया ।[12]

---

10. परन्तु अब दशा विपरीत हो गई है; घोघा का व्यापार चालू हो गया और भावनगर का मन्दा पड़ गया है ।

11. चीतल की इस लड़ाई का चित्र सीहोर के दरबारी महल में है । इसी के आधार पर गंजीफा के आकार में चित्र छपवाकर महाराजा भावसिंह ने प्रकाशित किए थे, वे बहुत मनोरंजक हैं ।

12. बखतसिंह ने जो एक के बाद एक ताबड़तोड़ गढ़ आदि जीते उनका वर्णन फार्बस गुजराती सभा के हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रह के अंक 34घ वाले गीत में मिलता है, जो इस प्रकार है—

ठाकुर बखतसिंह जी नुं गीत सपाखरूं

प्रथम लियो गढ़ तलाजो,[1] बंदर सरतन पर,[2] तेम जजमेर[3×] अठ अद्रतामां;
मवा,[4] भाद्रोड शिरमोड़ मरदां परद, शरद जुलापुरी⁻ नदी शामा । 1
(× जंजमेर = जांजमेर; ⁻ जुलापुरी = नालापुरी, करला ग्राम के पास;)

→

बहुत से काठी जूनागढ़ जाकर वहां के नवाब अहमद खान से मिले और उससे शिकायत की कि रावल वखतसिंह जी ने उनका गरास छीन लिया। इस पर नवाब फौज लेकर चढ़ा तो रावल ने चालीस हजार सेना से उसका मुकाबला किया और पाटणा ग्राम के मोर्चे पर नवाब को उसके तोपखाने सहित पीछे हटा दिया तथा राजुल ग्राम पर अधिकार कर लिया। बाद में जेठवा राजपूत जीयाजी ने नवाब और रावल में मेल करा दिया। उन सब ने साथ-साथ कसूंभा पिया[13] परन्तु काठियों के साथ रावल का झगड़ा बारह वर्ष तक चलता रहा।

गांजीया देश वाघेर उनागरा, राजुले तखतंत्र वावु रडीया;
उंडले दो भुजे भीत पर आणीया, छत्रपति कुंडले झंडा चड़ीया। 2
थइ करी चांदगर अने सलड़ी थका, वेहेद इंगलिये डंका वागा;
शहर लाडी करी बावरा सामली, भड़लीया गामरा होई भागा। 3
गढपति रावले गुंद्रगढ़[×], गालीयो, नवड़ गढ़ड़ा घस एकनो रे;
पोहोलि बोटाद भीमडाद तें पाणवी, काठीयारी हरपराको रे। 4
कौरवा जेम जांजेरिया कोपियां, मरद घर अडाडेय खेल माते;
जोध भावाहरो भीम पांडव जेहो, आंवली पीपली करी आते। 5
हेकणीं वाजुये समुद्र मोजां हुवो, हेकणीं वाजुए हसम[0] हाले;
टुंढ भड़ चोकटी अडग कीधो हुवो, तणा सव मालरी जुओ ताले। 6
लाज रख मणहरा केक वालालियण कवि एकी रसण कहे केता;
पाटके वेट पेरंभरो पातसा, अतवल भोगवे देस एता। 7
हाथ वखते घणा भेद वखता हुवा, प्रथी रमपालरो देश वखतो;
शिओरो पाटवी जगोजग सलामत, वखतवत मावाणे तखत वखतो। 8

(× गुंद्रगढ़ = यह काठियों का ग्राम था; अराठम = परगना; 0हसम = सवारी)

13. फार्बस गुजराती सभा के हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रह अंक 34ङ में इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है—

वखतसिंह जी नुं गीत

चोपे आवीया नवाब सेन काठीयां की घरे चाड,
अडे नको गढे कोटे गामड़े अशेश;
चडे जटाधार क्रोध केना जणा इन्द्र चढ़े,
वढे वाजवनां सामा चढे वखतेश। 1
अंवालां रणके धोसां ठणके गरंदा टुक,
शेशरा सलके, वोम झलके शमद्र;
भजाली शक्ति तेक भजाहुं, प्रलके भांण,
नवावां साहमों सके अखेराजनंद। 2

यहां यह उल्लेखनीय है कि उस समय जूनागढ़ शाह अहमद की राजधानी (अहमदाबाद) के अन्तिम मुसलमान शासक कमालउद्दीन अथवा जवांमर्दखाँ बाबी के खानदान वालों के हाथ में था।

असंखा रोहला संघी पठाणा घलुर आया,
घणां अरबाणां घाया बजे त्रासा घाव;
आतातन आता सोत शा महात वरलें आय,
आया भलांकाज बाबी चोंडे खेत आव। 3

देठालां दोवलां दलां तो पाकी सलामी दीधी,
कीध जंडा थंडा ले मोरचाबंधी कीध;
कीधो को सांकडे फेर हेमदे वचार कीध,
दीधनां दोकड़ा आणे रोक मार दीध। 4

नवारां नवाज ठाठ मध्य रात लही नाठा,
थर टोले होले काग टांगा जेम थाय;
नंद मोबतांका भागा एड-वेड़ गणे नाहीं,
जव नाहेडवे आतो केड लीवे जाय। 5

पराठी कीनाडी फोज लाठी महेल गई परी,
अखे काठी कहे नके भागीयां ऊगार;
अधिपति सीहोर को मार मार थको आयो,
शलाचतं त्रांदरका बरदां संभार। 6

एरशी खराई करी फरी पाटणे आया,
काया माया दूर करी धरी क्रोध काम;
ढलेतां चजारां सामी आधा क्रोश पले धरी,
मार हरी हरी करी मांडीयां मकाम। 7

देवतां दईतां जेम आंम-सामा जुवे दलां,
लुंवे कालां गज नेडाह वेलटीयाल;
गहके शबदां पंच तुर मेर त्रंबागलां,
लडवा वीजलां खलां आंकडेलां काल। 8

घके प्रलय कालां नालां वहु चके पडी ढाक,
दोरंगी चेरबां छुटी वहे दीन दीन;
लंगोर वखतवाला जीन तोर होर लागा,
मीयां तीन पहोर मोहमानी भया मीन। 9

उक्त लड़ाई का वर्णन भाटों के गीत में भी सुरक्षित है जिसका भावार्थ इस प्रकार है—"काठियों की सेना साथ लेकर नवाब ने दुरन्त ही चढ़ाई की; किले, महल और गांव में एक भी आदमी नहीं छोड़ा। जब वह क्रोधायमान होकर आया तो वखतेश भी दूसरे इन्द्र के समान उस यवन से युद्ध करने को चढ़ा। नौवतें वजीं, नगाड़े बजे, उनसे पर्वतों के शिखर गूंज उठे, पृथ्वी को धारण करने वाला (शेष) नाग कांप उठा और समुद्र की लहरें आकाश को छूने लगीं। उसके हाथ की बरछी सूर्य-रश्मि के समान चमचमाहट करने लगी, नवाब के सामने तो अखेराज का पुत्र ही चढ़ सकता है, और कोई नहीं। अनगिनती रोहिला, सिन्धी और पठान आये, बहुत से अरब भी नगाड़े बजाते हुए आये। आताभाई अपने भाईयों के साथ उससे युद्ध करने आगे बढ़ा, "बाबी ! तुम बहुत अच्छा आशय लेकर आये हो, घोड़े पर सवार हो कर लड़ाई के मैदान में आगे आओ।" बाद में, मोरचा बांधा, तोपों की सलामी दी और फिर उसको शोक में डुबा दिया। हेमद ने देखा कि यहां तो मुझे पैसे की अपेक्षा घाव ही अधिक मिलेंगे इसलिये राजनौबत बजाए बिना ही वह आधी रात को भाग खड़ा हुआ। काठी भी कौवों की तरह इधर-उधर भागने लगे। मोहब्बत खां का लड़का भगा, वह किस रास्ते भाग रहा है, इसका भी उसे पता नहीं रहा। आतो यवन के पीछे पड़ा। सीहोर का स्वामी आगे बढ़ता हुआ हांक लगा रहा था

करावे वशटी सांमी अरजां उलटी करे,
कुलांकी पलटी रीत उपाडूं कुरान;
दीया मैं राजुला तोय कुंडला चीतल दीया,
जाहो मान तोय प्रभु दही सारी जान। 10

करी परवाना और सारी मोरछाप कीनीं,
पोरवाला घीर माना प्रीछवे प्रवीन;
वंका काटे सखायतां हुकरीया हाका-वाका,
हुवा सोरठ का सूबा तरे शंका हीण। 11

कृपा वाजसुर दाहा जाणी रान भार कशा,
नाथ पेरमरा घेर जीतरा नीशाण;
खरा भांजे वांवीयारा काठीयारा कुजावरा,
हरा भावा तणा अजाजुतरा हालाण। 12

शतं रतनेश भावा अखेराज नीर चाडे,
रंजाडे परजां कोट पाडे दिगा रेश;
मेदीनी मंगल गाया सोव्रन की व्रपा मंडी,
लडी फते पाया घरां आया वखतेश। 13

"मारो, मारो, सलावत खां[14] की आबरू की खबर लो।" वह अपने दिल से दोस्ती के भाव को निकालकर क्रुद्ध हुआ और उसने पाटण आकर डेरा जमा दिया, जो शत्रु की सीमा से एक ही कोस की दूरी पर था। हरि! हरि! कहते हुए उसने अपना डेरा जमाया।

मानों देव और दानव ही लड़ने को तैयार हुए हों, इस तरह काले-काले हाथी और लम्बी-लम्बी अयालों वाले घोड़े आमने-सामने खड़े हुए। पांच प्रकार के वादित्रों[15] का नाद होने लगा, युद्ध के लिए बिजली की तरह चमक वाली तलवारों के झपाके होने लगे, ऐसा लगा मानों संसार का अन्तिम दिन ही आ पहुंचा है, बन्दूकें चलने लगीं, दोहरी पंक्तिबद्ध अरबों की टुकड़ियां "दीन, दीन"[16] पुकारती हुई आगे बढ़ने लगीं, बखतसिंह के शूरवीर सिपाही जैसा वार पड़ा वैसे ही लड़ने लगे। एक ही घड़ी में मियां ने तोबा माँग ली; वह स्वयं ही प्रार्थना करने लगा "मैं कुरान की कसम खा कर कहता हूँ, अब हमला नहीं करूँगा। मैं राजुला, कुंडला और चीतल तुम्हारे हवाले करता हूँ; परवरदिगार ने ही तुमको यह पूरा मुल्क दिया है।" यह कहकर उसने पट्टा लिखवाया और उस पर अपनी मोहर लगा दी। पोरबन्दर के राणा जीवाजी जेठवा ने उसकी हिम्मत बंधाई, और भी जो लोग उसके साथ थे सब आश्चर्य में पड़ गये, सोरठ का सूबेदार बे-आबरू हो गया था। उसके साथ जेतपुर का कूंपावल, बाजसूर काठी और जसदन का दाहा भी था। पीरम के स्वामी से, जिसके महल पर विजय ध्वजा फहरा रही थी, मुकाबला करने की उनकी क्या हिम्मत थी? जब बाबी का ही बल टूट गया तो काठियों की क्या बिसात थी? भावसिंह के अद्भुतकर्मा वंशज और उसके कुंअर ने रत्नेश, भाव और अखेराज की तलवारों के पानी को फिर चमका दिया। सारे देश में उनके गीत गाए गये, आसपास के राजाओं ने उन पर सोना बरसाया और बखतेश विजयी होकर खुशी से घर लौटा।[17]

---

14. नवाब का पूर्वज।

15. शाही प्रतीक पंच महावाद्य—नगाड़ा, शहनाई, झांझ, करनाय और तुरही।

16. मुसलमान लड़ते समय ईश्वर को पुकारते हुए 'दीन-दीन' कहते हैं।

17. जूनागढ़ के नवाब और बखतसिंह में जब सन्धि हो गई तो उन्होंने कसूंभा पीने का समारोह किया। उस समय नवाब को किस तरह नमना पड़ा, इसका एक रसीला लोकगीत फार्ब्स गुजराती सभा के हस्तलिखित संग्रह में सं० 34च पर प्राप्त है, वह उद्धृत करते हैं—

(झगड़ा निबट जाने पर कसूंभा पीने के लिए ठाकुर ने नवाब को अपने लश्कर में बुलाया, उस समय का गीत)

मले पाखरां चंचले दले जंगा टोप झलमले,
साखले मुंगले आता ऊपरां सामंद;
साबले ऊजले आयो जामवा ओहोणो शुबो,
हेंदले पेंदले लडे पांगलो हामंद। 1

1803 ई० के अक्तूबर मास के आरम्भ में मल्हारराव होल्कर फिर गड़बड़ी करने लगा; वह गोहिलवाड़ की सीमा के पास साबर कूंडला में बावाजी आपाजी के घुड़सवारों की टुकड़ी से भिड़ गया, जो उस समय काठियावाड़ में मुल्कगीरी करने निकला था। इस भिड़न्त में मल्हारराव के आदमियों की हार हो गई और उसका लश्कर लुट गया, तब वह भावनगर भाग गया और वहां उसने बख्तसिंह जी गोहिल की शरण ग्रहण की। परन्तु, बखतसिंह का विचार किसी भी तरह उसका पक्ष लेने का नहीं हुआ इसलिए उसे नाव में बैठकर द्वारका अथवा भुज चले जाने मात्र की सुविधा दे दी। मल्हारराव अधिक दूर नहीं जा पाया था कि दो अंग्रेजी जहाजों ने उसे देख लिया और उसके वाहन पर दो बार गोलियां चलाईं इसलिए वह फिर किनारे पर लौट आया और भावनगर के तट पर उतरा

सांमले आपाज ऊठ वाद वाप बखतेश,
आदरो सताव खागां नोतरो अमाप;
हाथ मुंछे नोखो आप चक्रावो अवाव लोहे,
नशीवें आपरें आयो प्रोहोण नवाप। 2

खेतर चट्ट लीआ लारां, धुआधारां, तोपखानां,
मेलि आंतर कलारां पेसारां पसंद;
धधकारे पाटी अंग चोधारां चोधारां धारां,
मांमले अखा रा नंद वरासा समंद्र। 3

बाण कोकबाण उडे सरधार झलेवीया,
माथे गोली कली सार, हो-होकार मार;
कही जोशे लखा जं वार वार नावं पार,
अहो मजादार करे पीसाणां अपार। 4

कटारां कडवां हाथ, भुझमलां कलकला,
शुबासेन कलमलां हीलाले सत्राथ;
अघ्रायां मुगलां घ्रायां गली के नवलां आयां,
नीतरां की भली शोभा पेरंभ का नाथ। 5

तीरांशा कत सेत से लाडू गोली अशी भात,
लागा खशी पशी भरे धतरतां लल;
अले असे देनदार पाणी तसां तणे आहे,
भरे लोघडसे थान मशी जुं मुगल। 6

लोंदरां वधारे लो से अपसे कतारां लारां,
पडां चावे पान वीडां पावठां अपार;
कवि कहे बार वार पांय राजे जै-जैकार,
हाथ पगे कीधी जुंवेश लाखां हजार। 7

जेठवा नमावुं झाला, हाला तणीं जाशे जाऊं,
दबावुं बाघेला पाऊं तले कोक दन;
जीवतो जो जूने जाऊं आताको न चाऊं जामे,
सांभले प्रोहोणो नावुं अलाको सोगन। 8

परन्तु रावल ने फिर उसको शरण देना स्वीकार नहीं किया इसलिए परिणाम से भयभीत होकर अपने झण्डे, निशान, हाथी और घोड़े वहीं छोड़ कर वह अपने पुत्र सहित भागा और शत्रुंजय अथवा पालीताना की पवित्र पहाड़ियों में पहुंचकर दम लिया। केवल एक ही नौकर के साथ वे कुछ दिन वहां पर रहे और किसी तरह भूख प्यास निकालते रहे परन्तु आसपास के निवासियों ने उन्हें खोज कर उनके छिपने का स्थान बावाजी को बता दिया। गायकवाड़ के सेनापति ने तीन कोतल[1] घोड़ों सहित एक सौ घुड़सवारों को उन्हें लाने के लिए भेजा। वे तीनों भूख प्यास से प्रायः अधमरे हो गए थे और निराश हो चुके थे इसलिए घुड़सवारों के पहुंचने पर उन्होंने कोई अड़चन नहीं की। जब इस प्रकार वे गायकवाड़ की छावनी के पास थोड़ी दूर तक आ पहुंचे तो उन्हें लाने के लिए बाबाजी के भेजे हुए म्याने (पालकियां, डोले) मिले। कड़ी के बुद्धिमान, महत्वाकांक्षी, हठी और अभागे जागीरदार की, अन्त में, यह दशा गुजरात में हुई। अगले मई के महीने में उसके पुत्र खंडेराव के साथ उसको ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया गया और उनकी आज्ञा से उसे बम्बई के किले में भेज दिया गया जहां वह अपने अन्तिम समय तक कैद रहा।

1804 ई० के आरम्भ में ही बड़ोदा राज्य के मुल्कगीरी कर की वाजिब रकम का फैसला मंजूर कराने के लिए एक ब्रिटिश वकील को भावनगर के रावल के पास भेजा गया। गायकवाड़ सरकार ने यह कदम कर्नल वॉकर के अनुरोध पर उठाया था और आरम्भ में तो कुछ समय तक बखतसिंह ने भी इस बात को अनुकूलता से सुना। बाद में, मुख्यतः अपने मन्त्रियों की सलाह से, कुछ समय तक वह इस प्रश्न को टालता रहा और अन्त में, उसने इस प्रस्ताव को पूर्णतया अस्वीकृत कर दिया। अनुकूल फल निकलने की आशा में बावाजी कुछ समय तो रावल की सीमा पर ठहरा रहा परन्तु अब मजबूर होकर अगस्त मास में उसे आगे बढ़ना पड़ा; नतीजा यह हुआ कि लड़ाई चालू हो गई। गायकवाड़ का सेनापति सीहोर की ओर आगे बढ़ा और उसके पिण्डारियों ने कुछ ग्रामवासियों को परेशान किया तथा उनके कुछ मवेशी उठा ले गए। घोघा परगने की धरती रावल और ब्रिटिश में इस तरह बंटी हुई और मिलीजुली थी कि यदि एक को नुकसान पहुंचाया जाय तो दूसरे की हानि अपने-आप हो जाती थी इसलिए, कर्नल वॉकर ने सोचा कि बखतसिंह ने समझा था कि शायद बावाजी उसे परेशान नहीं करेगा। ब्रिटिश रेजीडेण्ट लिखता है, "मैंने यह आवश्यक समझा है कि उसे अच्छी तरह समझा दूं कि वह इस विषय में गाफिल न रहे; गायकवाड़ सरकार का वाजिब कर अदा न करने और मांग का विरोध करने के फलस्वरूप परगने में कम्पनी सरकार के हिस्से का कोई नुकसान होगा तो रावल उसके लिए जवाबदार होगा। मेरे इस सन्देश का अभी कोई उत्तर तो नहीं मिला है परन्तु लगता है कि इसका कुछ अच्छा ही असर पड़ेगा क्योंकि मुझे पता चला है

18. आगे चलने वाले घोड़े कोतल कहलाते हैं।

कि राजा अपने वर्तमान सलाहकारों से अप्रसन्न हो गया है और उसने उनको खोटी सलाह देने के अपराध में निकाल देने की धमकी भी दी है।" अन्त में, अक्तूबर मास में गोहिल रावल ने मरहठों के पराक्रम और उससे भी अधिक ब्रिटिश की धमकी से डर कर चालू दरों के अनुसार तीन वर्ष का कर बावाजी को देना कबूल कर लिया। गायकवाड़ की फौजों के सामने सीहोर का सफल संरक्षण करने के विषय में भाटों ने इस प्रकार वर्णन किया है—'बड़ोदा के बलवान् और यशस्वी आना बा के नगाड़े की चोट से समस्त पृथ्वी गूंज उठी। शत्रुओं से युद्ध करके उसने उनकी सीमाओं को भग्न कर दिया। कड़ी और बड़ोदा के स्वामियों में विरोध उत्पन्न हो गया। बावा की सेना ने फहराते हुए झण्डे लेकर कड़ी पर चढ़ाई की, उस समय आकाश और वायुमण्डल रज से भर गया। बावाजी कड़ी पर अंग्रेजी फौज भी चढ़ा लाया। असंख्य योद्धाओं की गर्जना हुई। दो चार महीनों तक उन्होंने कड़ी पर गोलाबारी की तब अन्त में मल्हारराव कड़ी छोड़ कर भाग गया। बावा ने दुर्जय कड़ी पर अधिकार कर लिया। कोई भी उसका सामना नहीं कर सका। जब कड़ी जैसे किले को उसने फतह कर लिया तो सभी उसको सलाम करने आए।

"पाटड़ी के देसाई किसी के आगे नहीं झुकते थे इसलिए अब सेना उनकी तरफ बढ़ी। उनसे युद्ध करके उन्होंने लाखों रुपये वसूल किए; सड़क पर भी कोई वस्तु पड़ी हो तो किसी की उसे उठा लेने की हिम्मत नहीं होती थी, बावा की ऐसी धाक जमी हुई थी। जैसी हालत उसने कड़ी की बनाई वैसी ही पाटड़ी की हुई; उसने मेवासियों के कितने ही किलों को बरबाद कर दिया; जटवाड़ और लताड़ पर भी कर कायम कर दिया। जहां भी यह सूबा जाता था वहां ऐसी दशा होती थी मानों लुटेरों की जमात आ गई हो। अपनी सेना तैयार करके वह झालावाड़ में युद्ध करने को आया। पहले उसने अठारह सौ गांवों के स्वामी ध्रांगध्रा[19] के राजा पर कर कायम किया। वढ़वाण में आराम से दण्ड वसूल किया; वांकानेर, लीमड़ी और सायला पर भी दण्ड किया; उसने जहां जो कुछ मुंह से कहा वही

19.

ध्रांगध्रा
|
जसवन्त सिंह (द्वितीय)
|
रायसिंह जी
|
अमरसिंह जी
|
रणमलसिंह जी (1843-1869)
|
मानसिंह जी (1869-1900)
|
अजीतसिंह जी (1900-1911)
|
घनश्यामसिंह जी (1911-?)

वसूल किया। सूवा ने समस्त झालावाड़ को परास्त करके दण्ड ग्रहण किया; मोरवी और मालिया के स्वामियों से दण्ड लिया और कभी न झुकने वाले जाम[20]

20. जामकी भायात ध्रोलवाला पर भी लश्कर गया था। ध्रोलवाला की वंशावली इस प्रकार है—

ध्रोल
जाम लाखोजी (कच्छ)

- जाम रावलजी (1539-1562 ई.) नवानगर की गद्दी स्थापित की
- 1. हरधोल जी
  - 2. जसाजी
    - 3. खामणिओजी
      - 4. हरधोल जी द्वितीय
        - 5. मोड़जी
      - 6. पचाण जी
        - 7. कलोजी
          - 8. सांगोजी
          - 9. जूणोजी
            - 10. खेतोजी
              - 11. कलोजी (2 रा)
              - 12. वाघजी
                - 13. जयसिंहजी
                  - 14. जूणोजी (2रा)
                    - 15. नाथोजी
                      - 20. दोलतसिंहजी
              - 16. मोडजी
                - 17. भूपतसिंहजी
                  - 18. जयसिंहजी (2रा)
                    - 19. हरिसिंहजी
                      - 20. दोलतसिंहजी

ध्रोल के अधिकार में 400 वर्गमील जमीन, 61 गांव, लगभग 22000 की आबादी और सवालाख रुपये की वार्षिक आमदनी थी। इसमें से गायकवाड़ और जूनागढ़ को कुल मिलाकर 10,231 रुपये कर के देते थे। ठाकुर साहब को 9 तोपों की सलामी थी। - (यह सन् 1927 की बात है)

को भी नहीं छोड़ा; चार हजार ठाकुरों से सूबा ने दण्ड लिया। हालार पर उसने अधिकार कर लिया और बन्दूकों से गोलियां बरसाकर जूनागढ़ के नवाब से नजराना वसूल किया। काठियों पर गोलाबारी करके उनके देश को निर्बल कर दिया। पोर के धनी, माना जेठवा और चूडासमा से भी उसने दण्ड वसूल किया; कोई भी उसका सामना नहीं कर सका। समस्त सोरठ से दण्ड लेकर वह सीहोर की ओर बढ़ा; वह इतनी बड़ी सेना लेकर चला कि पृथ्वी कांप उठी। सीहोर से पांच कोस पर आम्बला में डेरा जमाया। उसने कहा कि 'आतो ने बहुत-सा देश जीत लिया है, उसी अनुपात से मुझे धन मिलना चाहिए।' तब दोनों ओर से गोलियां बरसने लगीं, तोपें और जमूरे गाज उठे; मरहठे थक गए, उनके शरीरों से खून के पनाले बह चले और वे हिम्मत हार गए। बहुत से मारे गए, बहुतों के सिर चकनाचूर हो गए और बहुत से अन्धे हो गए। वखता के योद्धाओं ने बावा की फौज को इस तरह लूटा मानों जंजीरें तुड़ा कर शेर टूट पड़े हों। सारा रणक्षेत्र रुण्ड-मुण्डों से भर गया और मरहठे जान बचाकर चारों दिशाओं में भागे।"

"बावा पर यह आपत्ति संवत् 1860 (1804 ई०) में पड़ी। पांच मास तक उसको बचने का कोई उपाय नहीं सूझा; सूबा नष्ट भ्रष्ट हो गया था। कर उगाहना तो वह भूल ही गया, उसे तो किसी तरह बच कर निकल भागने का ही विचार आ रहा था। उसने अपने डेरे में बैठ कर मुंह छुपा लिया। जब उसने सब रकम की भरपाई कर दी तभी उसको लौटने की इजाजत मिल सकी। भाव के पौत्र ने जैसा कहा वैसा ही उसे कबूल करना पड़ा। वह दण्ड वसूल करने आया था परन्तु उसको तो लेने के देने पड़ गए क्योंकि वह केवल ढाई लाख ले जा रहा था जिसके लिए उसने पांच लाख खो दिए थे।"[21]

---

21. इस प्रसंग का एक रसमय गीत फार्बस गुजराती सभा के हस्तलिखित संग्रह में सं० 34 छ. पर सुरक्षित है, जो इस प्रकार है—

—कड़ी ग्राम पर बावाजी का लश्कर आया तब उससे लड़ाई का गीत—

"गाजे सावघी प्रथमी चला बाजे जोस्र वागलां,
बलाक्रमी वराजे वडोदे अनां वाह;
मलाजे दीखीयां तणी पड़ी भाजे वधी मीण,
गाडी खंभ कड़ी राजे मलारा अथाह। 1.

पड़ी आंटी फड़ी साथे आवती वडोदापति,
फौजां बावा तणी चढी नीशाणा झटक;
जमी हूऊ पड़ी खेह गाडी असमान जाती,
कड़ी माथे लायो बावो विलाती कटक। 2

जब कर्नल वॉकर काठियावाड़ में आया तब तक भावनगर के रावल ने महुआ और तलाजा के बन्दरगाहों और पूर्वलिखित परगनों सहित लगभग सम्पूर्ण वालाक तथा सावर कूण्डला जिले व अन्य छोटे-मोटे स्थानों पर अच्छी तरह कब्जा

हलके अतागा सेनशूर बीरां बाजे हाक,
मास दोनु चार लागा तोपु तणा मार;
न टके मलारा पाग थ जागां कागां मोर नोर,
मेली कड़ी पड़ी भागा ऊपड़े मलार । 3

जितीयो अनम्र कड़ी चडी खंभ बावे जुह,
साम कु न लड़ी शके करे के सलाम;
कड़ी जशा कोट बावे चड़ी चोट हाथ कीधा,
कीधा पाटड़ी केसरे फोजां का मकाम । 4

अनमी देशाई हुता पाटडी के पीठ आदु,
लड़ी लड़ी जमे ताकी लाखु मोढे लीध;
पड़ी को उठावे नाही असी साख आवी पड़ी,
कड़ी रीत जैसी ऐसी पाटडीए कीध । 5

कोट मेवासी का पाडे व खंडे उजाडे कीधा,
लीधी जतवाड़ दंडे साबधी लताड़;
धाड धाड थी श्रो शूबो गढे कोटे पड़ी धाह,
चढे वाकु चढे सेन आया झालावाड । 6

ध्रांगधरा दंडे पेलां अढारसो तणा धणी,
नशां बढवाण दंडे, दंडे वांकानेर;
लींबड़ी शायला दंडे मोय भागी जमे लीध,
झालावाड़ दंडी शूबे कीधी जेर जेर । 7

दंडे मोरबी को साम, मालीया सहित दंडे,
अनमी जाम को ठाम दंडे सो अबाब;
हजारा चीचारां दंडे वालीयो हालार होले,
नशां पार गोले दंडे, जूना को नबाब । 8

काठीओं का देश दंडे, खाधा पेस पेस कीधा,
प्रथम फु रेस दीधा दंडे सारा पोर;
सामा, हाला, झाला, माणा, जेठवा न मंडी शक्या,
साबधी सोरठ दंडी नोंधाणा शीओर । 9

जमा लिया था ।[22] प्रजा में अशान्ति होने के कारण उसकी मालगुजारी वसूल होना कठिन हो गया था और ऐसा अनुमान किया जाता था कि उस पर बहुत बड़ा कर्जा हो गया था क्योंकि काठियों को दबाए रखने के लिए उसे अपनी सेना बढ़ाने की आवश्यकता हर समय महसूस होती थी । उसकी सेना में पांच सौ अरब, दो हजार पांच सौ सिंधी पैदल तथा लगभग पांच सौ नियमित घुड़सवार थे । इसके अतिरिक्त वह गोहिल शाखा के अपने मायातों[23] के गांवों में से भी तीन हजार राजपूत अश्वा-

हलबले पृथ्वी पीठ अशा, सेन आया हली,
पांच कोशे पाली कीधा आंवले पड़ाव;
देश घणां खाये आतो तेना जुया मांगू दाम,
आय महुवा तेण तोपों का अड़ाव । 10
हडेडे अपार नालां, जंजाल्या कोडे एम,
धडेडे बन्दूकां असी जशी अंद्रवार;
बडेडे कडेडे तां तो सावधां मरेठा बेठा,
आवता दडेडे पुर रगतां अपार । 11
कटकां का गांठ छूटा, के कथ्या आवट कूटा,
के मरेठा सीस फूटा अगुटा क़रूर;
वखत का जुटा जोध लूटा सेन बाबा वाला,
जाण के संकले सिंह वछूटा जरूर । 12
दडे मरेठां का तुंड धडेडे करी दीधा,
जुजुवा भगांण पड़ा, दो दो वाटे जाय;
नेक सेन गाढा अड़े के क ग्याव मोहा नाठा,
माठा दीह बाबा वाला हुआ साठा मांय । 13
पांच मास जावा नायो सूबो थयो हुलाश पूरो,
जामे तणी आशा छंडे जावा दे तो जाय;
पाछो जावे केणी पाय लोंठा रो लकड़ों पेठो,
मोंढो वास करे बेठो बावो डेरा मांय । 14
जावा आली दोज तारें फारकती दीधी जारें,
भावा हरा तणी जीमें दीधी सीधी भाख;
रेश देवा आव्यो तां तो शामो पोते पाम्यो रेश,
लाख अढी कांम्यो तां तो वांम्यो पांच लाख । 15

22. महुवा और तलाजा के लिए देखिए—बम्बई गजेटियर, भा० 8, पृ० 536, 660 ।

23. मायात, मायाद या म्यात का अर्थ है भाई-बन्धुओं का संघ । देखिए—टॉडकृत राजस्थान का इतिहास- 1920 ई० का संस्करण; भा० 1, पृ. 154, 202; भा० 2, पृ० 961

रोही एकत्रित कर सकता था तथा सैनिक अभियानों में तो नहीं परन्तु, लूटपाट के काम में मदद देने वाले दो हज़ार बुनकरों को जमा करने की स्थिति में भी था। पिछले दिनों, उसने घोलका के परमार कसबाती भावा मियां के एक सौ घुड़सवार रखे थे। इसके बदले में उसने उन्हीं के पूर्वजों के अधिकार में राणपुर परगने का जो बोटाद नामक गांव था वह उनको दे दिया। यह गांव काठियों के मुख्य स्थान जसदन के सामने ही सीमा पर स्थित था। घोघा[24] शहर मुगलों का बन्दरगाह था इसलिए वह खम्भात के सूबेदार के अधिकार में था। इसको 'बार्ह' कहते थे जो प्रायः 'बन्दरगाह' का ही पर्यायवाजी शब्द है परन्तु उसमें कुछ सीमावर्ती भू-भाग भी सम्मिलित माना जाता था। जब गायकवाड़ और पेशवा में गुजरात का बंटवारा हुआ तो 'घोघा बार्ह' तो पेशवा के हिस्से में आया और बाकी बचे हुए गोहिलवाड़ की मुल्कगीरी वसूल करने का हक गायकवाड़ को मिला। अन्ततोगत्वा यह सब ब्रिटिश सरकार के हाथ में आ गया।

गोहिलवंशीय राजपूतों के अधिकार में कुल मिलाकर आठ सौ गांव थे जिनमें से छः सौ पचास रावल बखतसिंह के अधीन थे। इन ठाकुरों ने प्रायः दुर्गम्य स्थानों में अपने 'रहठाण'[25] कायम किये थे; कुछ लोगों ने पत्थरों से निर्मित बड़े-बड़े किले बनवा लिए थे, परन्तु उन पर उतनी तोपें नहीं रख पाये थे जितनी उनकी सुरक्षा के लिए आवश्यक थीं। रक्षा के दूसरे साधन भी पर्याप्त नहीं थे। इस वंश की छोटी शाखाओं में मुख्य वला, लाठी और पालीताना[26] की हैं। वला की शाखा ने

---

24. घोघा, अहमदाबाद ज़िले में है; देखिए 'बम्बई गजेटियर' भा० 4; पृ० 339

25. राज्य-स्थान।

26. पालीताना

सेजकजी

राणोजी	1. शाहजी (पालीताना)	सारंगजी (लाठी)

2. सरजणजी, 3. अर्जुन, 4. नोंघणजी, 5. भारोजी, 6. बनोजी, 7. शिवोजी, 8. हदोजी, 9. खांदोजी, 10. नोंघणजी (द्वितीय) 11. अर्जुनजी (2रा). 12 खांदोजी (2रा), 13. शिवोजी (2रा), 14. सुरतानजी, 15. खांदोजी (3रा), 16. पृथ्वीराज जी, →

शीलादित्य के प्राचीन वला में अपनी राजधानी कायम की। इसका संस्थापक भावनगर बसाने वाले रावल भावसिंह का द्वितीय पुत्र वीसा भाई था। उसके पौत्र मेघराज वा मघाभाई के अधिकार में अभी बत्तीस ग्राम हैं। पालीताना की शाखा शाहजी से चालू हुई जो सेजकजी का छोटा कुंअर था। उसे गारियाधार का गरास प्राप्त हुआ था। उसके अधिकार में बयालीस गांव हैं परन्तु उनमें से आधे उजाड़ पड़े हैं। कुछ वर्षों पहले पालीताना के ऊनड़जी (या ऊमरजी) को गायकवाड़ सरकार का आश्रय मांगने की आवश्यकता आ पड़ी, उस समय उसका देश बिलकुल परवशता की दशा में आ गया था। उसके कुछ गांव तो गिरवी पड़े थे और बाकी उन शत्रुओं ने ले लिये थे जिनसे उसकी लड़ाई हो गई थी। उसकी मूल राजधानी गारियाधार में जब मरहठों का थाना आ गया तब उस तालुके में कुछ शान्ति हुई। प्रथम गोहिल राजा का एक छोटा राजकुमार सारंग जी था, उसी के वंश में लाठी का सूरसिंह हुआ। उसके अधिकार में उसके मूल गरास के पांच गांव रहे। दामाजी गायकवाड़ के समय में वहां का ठाकुर लाखोजी था; उसने अपनी पुत्री का विवाह दामाजी से कर दिया था इसीलिए इस शाखा का पूरा विनाश होते-होते बच गया। इस सम्बन्ध के कारण लाठी के गोहिलों को बड़ोदा सरकार की

17. नोघणजी (3रा), 18. सुरतानजी (2रा),

|

19. ऊनडजी (1766–1820 ई.)

|

20. खांदोजी (4था) (1820–1840 ई.)

|

21. नोघणजी (4था) (1840–1860 ई.)

|

22. प्रतापसिंह जी (1860–1860 ई.)

|

23. सूरसिंह जी (1860–1880 ई.)

|

24. मानसिंह जी | सामतसिंह जी

पालीताना के अधिकार में 305 वर्गमील भूमि, 100 ग्राम, पचास हजार की आबादी और लगभग पांच लाख रुपयों की वार्षिक आय थी। इसमें से गायकवाड़ और जूनागढ़ को रु. 10,364 देते थे। ठाकुर साहब को 9 तोपों की सलामी थी। (सन् 1927 ई. में यह हालत थी; स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर यह रियासत पहले सौराष्ट्र, फिर गुजरात में विलीन हो गई है)

→

हिमायत और मदद प्राप्त हुई। इनको मुल्कगीरी की रकम माफ कर दी गई परन्तु गायकवाड़ का प्रत्यक्ष सम्मान करने के लिए ये प्रतिवर्ष एक घोड़ा भेंट करते थे। गोहिल पुत्री के दहेज में (खानगी में) छवड़ा परगना दिया गया था जो बाद में मरहठा वर के नाम पर दाम-नगर प्रसिद्ध हुआ।

वला

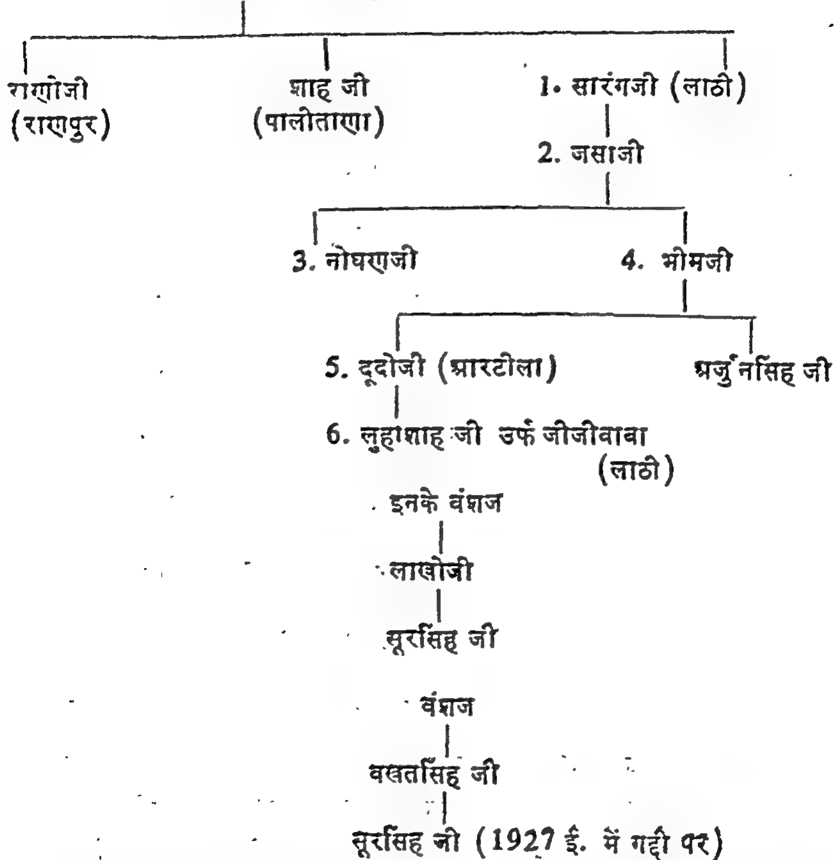
19. भावसिंह जी, भावनगर (1703–1764 ई.)

- 20. अखैराज (दूसरा) भावनगर
- 1. वीसाजी (वला) (1764–1774 ई.)
  - 2. नथुभाई (1774–1798 ई.)
  - 3. मेघाभाई[×] (1798–1814 ई.)
  - 4. हरभूमजी (1814–1838 ई.)
  - 5. दौलतसिंह जी (1838–1840 ई.)
  - 6. मेघाभाई (1840–1853 ई.)
  - 7. पृथिराजजी (1853–1860 ई.)
  - 8. मेघराजजी (1860–1875 ई.)
  - 9. बखतसिंह जी 1875 ई. में गद्दी पर बैठे

× इस मेघाभाई के दो भाई और थे—एक पाताभाई जिसको दरेड़ आदि तीन गांव मिले थे और दूसरे अदाभाई को कानपुर, रंगपुर और पींपल ये तीन गांव मिले। अदाभाई के दीपसिंह जी और फिर गुमानसिंह जी हुए। गुमानसिंह जी पुत्र मानसिंह जी (1927 ई. में) कानपुर के ठाकुर थे।

वला के अधिकार में 140 वर्ग मील भूमि, 41 ग्राम और लगभग 70 हजार की आबादी तथा एक लाख पैंसठ हजार की वार्षिक आय थी। इसमें से गायकवाड़ और जूनागढ़ को 9,202 रु. वार्षिक देते थे। (सन् 1927 ई.)

अब तक जिन तालुकों के विषय में लिखा गया है उनके अतिरिक्त भी बहुत से अन्य राजपूत तालुके काठियावाड़ में कर्नल वॉकर के प्रबन्ध में आ गये उनमें मुख्य रूप से कच्छ के जाड़ेजा[27] राजपूतों की शाखा है। परन्तु, उनके विषय में हमें



लाठी के अधीन 48 वर्ग मील जमीन, 8 गांव, सात हजार की बस्ती और सत्तर हजार की आमदनी थी जिसमें से गायकवाड़ और जूनागढ़ को 2,007रु. वार्षिक देते थे।

27. जाड़ेजा राजपूतों में कच्छ के 'महाराव' मुख्य हैं। उनकी भायात भी बहुत बड़ी है। काठियावाड़ में हालार और मच्छुकांठा जाड़ेजों का ही था। काठियावाड़ में जाड़ेजों के राज्य और ठिकाने इस प्रकार थे—
1. नवानगर (जामनगर), 2. मोरबी, 3. ध्रोल, 4. राजकोट, 5. गोंडल,
→

मूल-साहित्य उपलब्ध नहीं हुआ है और हमारे लेख से उनका कोई सम्बन्ध भी नहीं है इसलिए हमने उनके विषय में कुछ नहीं लिखा है।

---

6. वीरपुर, 7. कोटड़ा (सांगाणी), 8. मालिया, 9. मेंगणी, 10. गवरीदड, 11. पाल, 12. धरड़ा, 13. जालिया (देवाणी), 14. भाडवा, 15. राजपुरा, 16. कोठारिया, 17. शायर, 18. लोधीका, 19. वड़ाली, 20. खीरसरा, 21. सीसांग चांडली, 22. वीरवाव, 23. काकसीआली, 24. मोवा, 25. कोटड़ा (नायाणी), 26. द्राफा, 27. सातोदड़ बावड़ी और 28. मूली लाडेरी।

इनके सिवाय पालनपुर एजेन्सी का सांतलपुर भी जाड़ेजों का ही था। इन लोगों के अधिकार में 440 वर्गमील जमीन, 33 ग्राम, अठारह हजार मनुष्यों की वस्ती और पैंतीस हजार की वार्षिक आमदनी थी।

प्रकरण आठवां

बहुचरा जी ; चुंवाल[1]

आरासुरी (अम्बा) माता की अपेक्षा श्री बहुचरा देवी बहुत आधुनिक हैं, परन्तु फिर भी उसकी महिमा में कोई कमी नहीं है; जैसे दांता के परमारों का अम्बा माता से अविच्छेद्य सम्बन्ध है उसी प्रकार चुंवाल राजपूतों और बहुचरा जी का सम्बन्ध भी शाश्वत है। एक जनश्रुति है कि कुछ चारण स्त्रियां सलखनपुर[2] के पास किसी गांव में जा रही थीं; तब कुछ कोलियों ने हमला करके उनको लूट

1. चुंवालों को जहांग्रिया भी कहते हैं। ये चुंवाल इसलिए कहलाते हैं कि इनका सम्बन्ध चौवालीस (44) गांवों वाले भू-खण्ड से है जो अहमदाबाद जिले में वीरमगांव उपजिले के उत्तर-पूर्व में स्थित है। ये लोग प्रायः अहमदाबाद और काठियावाड़ जिलों में पाये जाते हैं। ये जंगली और घूमती-फिरती जाति के लोग हैं जो किसी समय उत्तर गुजरात के लिए भय का कारण बने हुये थे। चुंवालिया ठाकुर या जमींदार कोलियों की मकवाणा शाखा से सम्बद्ध हैं और अपने को झाला राजपूत बतलाते हैं; ऊँचे कुलों में विवाह सम्बन्धों के कारण ये प्रायः तालबदों की तरह सुन्दर और उज्ज्वल वर्ण के होते हैं। परन्तु, अधिकतर चुंवालों का शरीर-गठन और उनके लक्षण भीलों जैसे होते हैं जिनसे सामाजिक स्थिति और सूझबूझ में ये कुछ ही ऊँचे हैं।........पहले चुंवाल कोलियों की एक सुसंगठित लुटारू-टोली थी। अर्द्ध-राजपूत नायकों अथवा 'ठाकरड़ों' के नेतृत्व में ये लोग गांवों में रहते थे, जिनके चारों ओर कांटों की बाड़ लगी रहती थी और जिले में सभी जगह से अपनी लाग-बाग वसूल करते रहते थे। यदि कहीं पर इनकारी हो जाती तो उस गांव पर रात में धावा कर देते और लूट के माल को नियमानुसार आपस में बांट लेते। मरहठों के वशीभूत ये कभी नहीं रहे इसलिए ब्रिटिश शासन के आरम्भकाल अर्थात् 1819 और 1825 ई० में इन्होंने कई बार विद्रोह किया। जब इन्होंने दुबारा सिर उठाया तो इनके घेरे और बाड़े हटा दिये गए और संगठित दस्युओं के रूप में इनकी शक्ति नष्ट कर दी गई।

(देखिए—'चुंवालिया'—बम्बई गजेटियर, जिल्द 9, भा. 1. पृ. 239)

2. 'सलखनपुर साची मा बहूचरी'—वल्लभ भट्ट।

लिया। उन्हीं में से एक स्त्री ने, जिसका नाम बहुचरा था, एक बालक भृत्य से तलवार छीनकर अपने दोनों स्तन काट डाले और वह तुरन्त ही मर गई। बूत और बलाल नाम की उसकी बहनों ने भी इसी प्रकार अपघात कर लिया और बहुचरा की भांति देवी संज्ञा को प्राप्त हुईं। श्री बहुचरा जी की स्थापना चुंवाल में हुई, बूत माता की प्रतिष्ठा कोट के निकट अरणेज (अरजण) में तथा बलाल देवी की सीहोर[3] से पन्द्रह मील की दूरी पर वाकल कूं में हुई।

जिस स्थान पर बहुचराजी का निधन हुआ वहां शंकु के आकार की एक पत्थर की 'खांभी' (स्तम्भ) खड़ी कर दी गई है। बाद में वहां पर एक छोटा-सा 'देवरा' (देवालय) बना दिया गया जो अब तक मौजूद है। आगे चलकर एक बड़ा मन्दिर बनाया गया जो पहले वाले के सामने ही इतना नजदीक है कि उसका द्वार ही प्रायः बन्द हो गया है। पहला देवालय तो सलख राजा का बनवाया हुआ बताया जाता है, जो प्रत्यक्ष ही कोई कल्पित नाम मालूम होता है और दूसरा किसी मरहठा फड़नवीस[4] द्वारा निर्मापित है। इन देवालयों के पास ही, परन्तु दूसरी तरफ, एक और बड़ा मन्दिर है, जिसको 1783 ई० में दामाजी के छोटे पुत्र और फतहसिंह

---

3. बहुचरा माता भी अम्बा भवानी के समान उत्तर-कालीन हिन्दू देवता है जिसका सर्वधर्म–समन्वयी रूप में एक चारण स्त्री में आविर्भाव हुआ, जिसने त्रागा या अपघात कर लिया था। चारण महिलाओं को बड़े सम्मान के साथ 'माता' कहकर सम्बोधित किया जाता है। 'त्रागा' करने वाली चारण महिला का प्रेत बहुत भयावह होता है। 'काठियावाड़ की विगत मुर्दुमशुमारी (1921) के अनुसार कछेला चारणों में, जो पिछले पन्द्रह वर्षों में पंचमहाल जिले के पावागढ़ के पास हालोल में बस गये हैं, नौ लाख माताएँ अर्थात् कुमारिकाएँ थीं। इसका कारण यह था कि पावागढ़ के शिखर पर निवास करने वाली प्रसिद्ध कालिका माता नेसड़ा जाति की चारण थी जो काठियावाड़ से हालोल आकर बस गई थी। ('त्रागा' के लिए देखिए—'रासमाला' हि. अ. 9 (उ.); 185–7 और यूल का हाब्सन जाब्सन, दि. संस्करण, पृ. 937)

4. फडनीस—पु. 1 एक सरकारी अधिकारी; वरिष्ठ हिशेबनीस; मुख्य दफ्तरदार। पूर्वीच्या राजवटींत दफ्तरें इ. ठेवणें; सर्व खात्यांचे हिशेब तपासणें, देणग्या देणें, हुकूम सोडणें इ. कामें यास करावीं लागत। हल्लीं 'फायनॅन्स मेंबर' ला म्हणतात। याला प्रांतांतील सर्व खात्यांचे हिशेब तपासून जमाखर्चाचा तालेबंद तयार करणें, जमा, आणि खर्चयांचा मेल घालणें हीं कामें असतात। 2 मामलेदार कचेरींतील वरिष्ठ कारकून; हेड कारकून फडनिशीसी-स्त्री 1 फडनिसाचें काम। 2 फडनिसाचा अधिकार, हुद्दा, दर्जा।
—महाराष्ट्र शब्दकोश, पृ. 2156।

के छोटे भाई मानाजीराव गायकवाड़ ने बनवाया था। इस इमारत के सामने एक अग्निकुण्ड या हवनकुण्ड बना हुआ है जिसके आगे एक 'चाचर' है जिसमें पशुवलि दी जाती है। देवालय के चारों ओर यात्रियों के ठहरने के लिए घर बने हुए हैं और साथ ही कुछ हारबन्ध (पंक्तिबद्ध) छोटी दूकानें भी हैं जिनमें पूजा-सामग्री व परचूरण सामान मिलता है। एक कोने पर दो-मंजिली अष्टकोण 'दीपमाला' है जिसके ऊपर खुली हुई गुमटी बनी हुई है। दोनों ही ठोस खण्डों में दीपक रखने के लिए आले बने हुए हैं जो त्योहार के दिन दीपों से जगमगा उठते हैं। देवालय और उससे सम्बद्ध छोटी इमारतों के चारों ओर एक गोलाकार परकोटा है जिसमें जगह-जगह बन्दूकें चलाने के मोखे रखे गये हैं और चारों कोनों पर सुरक्षार्थ चार गोल बुर्जें बनी हुई हैं। कोट के दरवाजों की संख्या तीन है। मुख्य द्वार एक आयताकार बुर्ज में आ गया है जिसके ऊपर के हिस्से में एक कक्ष बना हुआ है जहाँ नौबत और अन्य वादित्र रखे रहते हैं। बुर्ज के ऊपर की छत से चारों ओर एक सपाट खुला हुआ प्रदेश दृष्टिगत होता है जिसमें इतस्ततः पेड़ों के झुरमुट में आये हुए गांव जड़े हुए से प्रतीत होते हैं। इनमें चन्दूर, पंचासर और बनोद, जो अणहिलवाड़ा के प्रथम राजा की कथा का स्मरण कराते हैं; वाघेल, जो इस वंश की अन्तिम शाखा की क्रीड़ा-स्थली रहा है और कर्णसागर, जो उनके वैभव के मध्याह्न-काल का राज-खण्डहर है, यहां से ठीक-ठीक तरह से लक्ष्य में आ जाते हैं। सलखनपुर तो समीप ही है और इससे भी नजदीक एक ढाणी है जो माता के नाम पर 'वेचर' कहलाती है। कोट के चारों ओर बबूल और अन्य थोड़े पत्तों वाले पेड़ों की बाड़-सी लगी हुई है। परकोटे के बाहर ही एक छोटा वर्गाकार तालाब है जिसको 'मानसरोवर' कहते हैं। इसके पानी से कई रोगों की चिकित्सा की चमत्कारपूर्ण कथाएँ प्रसिद्ध है। पास ही में, कुछ और बड़े परन्तु अल्प-प्रसिद्ध तालाब हैं।

अहमदाबाद में वल्लभ भट्ट नामक मेवाड़ा ब्राह्मण हुआ है। उसने 1744 ई. में बहुचराजी के बहुत-से गरबा-गीतों की रचना की जिनका संकलित रूप 'बहुचराजी पुराण' बन जाता है। कहते हैं कि मुख्यतः इसी के कारण बहुचराजी की महिमा बहुत प्रसिद्धि में आई। वह बहुचराजी का दुर्गा रूप में गुणगान करता है, परन्तु दुर्गा का यह नाम अन्यत्र प्राप्त नहीं है। गुजरात में कई जगह श्री बहुचराजी के मन्दिर बने हुये हैं, परन्तु किसी में भी मूर्ति स्थापित नहीं है। पूजा के लिए एक चौकोर पटड़ी,[5] जिस पर चमकीले धातु के टुकड़े चिपके रहते हैं, उगते हुए सूर्य की ओर देखते हुए एक ताक में रखी रहती है। नवरात्र अथवा ऐसे ही अन्य त्योहारों पर कोली व अन्य लोग अपने बच्चों व सगे-सम्बन्धियों के मृत्यु-भय-निवारण के लिए श्री बहुचराजी के आगे होम-हवनादि की सामान्य पूजा सामग्री के अतिरिक्त बकरे या पाड़े की पशु बलि चढ़ाते हैं। यह बलि बड़े देवालय के सामने खुले स्थान

---

5. इस पटड़ी को गुजरात में 'आंगी' कहते हैं।

में बने हुए 'चाचर' पर दी जाती है। दूसरे अवसरों पर राजपूत, कोली एवं अन्य जाति के लोग दारू और मांस की बलि खुले-आम श्री बहुचराजी को चढ़ाते हैं परन्तु ब्राह्मण और बनिए, जो अपने को शक्ति का उपासक और वाममार्गी कहते हैं, ऐसी बलि रात के समय छिपे रूप में अर्पित करते हैं। माता को अर्पण करने के उपरान्त ही इस नैवेद्य को आराधक ग्रहण करते हैं। ब्राह्मण और बनिए माता के पूजास्थान वाले आले में जीवित कूकड़ों या मुर्गों को भी चढ़ाते हैं। इनकी संख्या इतनी बढ़ गई है कि ये मन्दिर के चारों ओर घूमते ही रहते हैं। इन कूकड़ों में से एक की कहानी इस प्रकार है कि कोई हिम्मतवाला मुसलमान उसको पकाकर खा गया परन्तु वह उसका पेट फाड़ कर जीवित बाहर निकल आया।

सोरठिया दूहा

"तलियां तेला ताय, कूकड़िया भोजन किया
म्लेच्छांना घट मांय, तें बोलाव्या बेचरा।'

इसी के आधार पर गुजरात में एक कहावत प्रचलित हो गई हैं; जब कोई आदमी किसी का वाजिब देना नहीं देता है तो लेन-दार कहता है 'यह धन तेरे लिए बहुचराजी का कूकड़ा होकर रहेगा।" लंगड़े-लूले, अंधे और दूसरे अपंग तथा सन्तान एवं अन्य अभिलाषाओं वाले लोग बहुचराजी की मनौती मानते हैं; वे लोग वहां जाकर मन्दिर के बाहर मानसरोवर के किनारे उपवास करते हुए तब तक बैठे रहते हैं जब तक कि उनकी अभिलाषा के विषय में माता का वरदान प्राप्त नहीं हो जाता। इसके बाद वे उठकर अपने घर चले जाते हैं। जिनको बहुचराजी की कृपा से पुत्र प्राप्त होता है वे उसका नाम 'बेचर' रखते हैं। जैन-धर्म मानने वाले भी बहुचराजी को मानते हैं।

इस माता के मुख्य पुजारी ब्राह्मण होते हैं जो सेवापूजा करते हैं, परन्तु कुछ अन्य सेवक व गायक आदि मुसलमान भी होते हैं। देवालय में जो भेंट, चढ़ावा आदि आता है वह सब कमालिया लोग लेते हैं जिनमें स्त्री, पुरुष, बूढ़े बच्चे आदि सब मिला कर कोई एक सौ प्राणी हैं; ये लोग अपने को माता से उत्पन्न हुआ मानते हैं। यद्यपि ये सब बहुचरा माता को पूजते हैं और उनका त्रिशूल लिए घूमते हैं, परन्तु मुसलमान धर्म का पालन करते हैं। इसका कारण यह बताते हैं कि अलाउद्दीन ने उनको जबरदस्ती मुसलमान बना दिया था। केवल हल्की-फुल्की और कम क़ीमती भेंट ही कमालियों को मिलती है और जो चीजें भारी तथा कीमती होती हैं वे मन्दिर के भोगराग निमित्त गायकवाड़ के अधिकारियों के अधिकार में रहती हैं। इस पर भी कमालियों को जो कुछ हिस्सा मिलता है, उस पर पास ही के कालड़ी गांव के राजपूत जमींदार भी अपना दावा जाहिर करते हैं। कुछ वर्षों पूर्व, कोई चालीस राजपूत तीनों दरवाजों से बहुचराजी के मन्दिर में घुस आए और

उन्होंने वहां जितने कमालिया मिले उनको मौत के घाट उतार दिया । हत्यारों के उसी समय भाग जाने के बाद दस मृतकों को बहुचराजी के मन्दिर के बाहर ही दफना दिया गया । कमालियों से भी उतरती जाति के कुछ पावैया[6] भी श्री बहुचराजी की सेवा में रहते हैं । ये लोग हिजड़े होते हैं और इनके विषय में जो बात कही जाती है वह यदि सच है तो, ये अप्राकृतिक व्यभिचार कराते हैं । ये लोग अन्य वस्त्र तो स्त्रियों जैसे पहनते हैं परन्तु सिर पर पुरुषों की सी पगड़ी बांधते हैं । इनकी संख्या लगभग चार सौ है जिनमें से आधे तो हलवद के पास टीकर ग्राम में रहते हैं और बाकी लोग गांवों में घूमते रहते हैं तथा अन्य हिन्दू या मुसलमान भिखारियों की तरह लोगों को भय दिखाकर या गिड़गिड़ा कर भीख मांगते हैं । प्रायः कहा जाता है कि कुछ पावैयों ने बहुत धन इकट्ठा कर लिया है ।

कडी प्रान्त सर्व संग्रह में बहुचराजी विषयक निम्न सूचना पृष्ठ 456 एवं 457 में और अंकित है ।

बहुचराजी की यात्रा हिन्दू धर्म की महायात्राओं में गिनी जाती है । गायकवाड़ सरकार ने यात्रियों की सुविधा के लिये रेल पहुंचा दी है और बहुचराजी स्थान का एक स्टेशन भी है । दामाजी गायकवाड़ के छोटे कुमार मानाजी राव का कोई रोग माता की मनौती से मिट गया था, इसलिये उन्होंने नया देवालय तथा कोट के बाहर मानसरोवर बनवाया मन्दिर के पूजा, नैवेद्य एवं अन्य खर्चों के लिए बेचर, संखलपुर, और डोडीवाड़ा नामक तीन गांव धर्मदाय के रूप में अर्पण किये । देवालय के पास ही कोट से लगे हुए मकान की दीवार पर "श्रीमन्त मानाजी राव ने

---

6. पावैया हिजड़ों के विषय में देखिए—बंबई गजेटियर, जि० 7, पृ० 613 रपोट मरदुमशुमारी राज मारवाड़—तीसरा हिस्सा पेज 385

फातड़ा और पवैया

मारवाड़ की कौमों का हाल—यह जो मशहूर है कि गुजरात में हिजड़े को पवैया कहते है सो गलत है क्योंकि पवैये हिजड़े नहीं होते उनके साथ रहकर नाचते गाते हैं और उनकी लाग बाग उगाहते हैं, वे हिन्दू भी होते हैं, मुसलमान भी और घरवारी भी । पवैये पोशाक तो मरदों की सी पहनते हैं मगर पगड़ी नहीं बांधते उनकी बोलचाल सब हिजड़ों की सी होती है । कुछ पवैये पीरानपट्ट में बेछरा माता जी के पुजारी भी हैं वे हिजड़ों का साथ नहीं करते । हिजड़ों को गुजरात में फातड़ा कहते हैं जो नामर्द आदमी उनके हाथ लगता है पहिले उसको भी कम यानी खस्सी करते हैं और फिर अपने में मिलाते हैं । मारवाड़ में भी जो कोई शख्स अपने पुरुषाकार को काट डालता है उसको भीकमचंदी करना कहते हैं । नाजिर गुजरात में सिवाय जामनगर के और किसी रियासत में नहीं सुने जाते ।

यह देवालय संवत् 1839 के वैशाख वदि 10 रविवार को बंधाया" यह लेख लगा हुआ है। इस देवालय में पत्थर की उत्तम कारीगरी का काम है और बनावट प्राचीन ढंग की है। इसकी लम्बाई 50 फुट और चौड़ाई 30 फुट है तथा इस पर दो गुमटियां और शिखर हैं। दो सभामंडप हैं जिनमें से बाहर वाले की अपेक्षा अन्दर वाला बड़ा है। एक ऊंचे चबूतरे पर बने हुए सुन्दर आले में माताजी का बालयंत्र रखा हुआ है जो पूजा की मुख्य वस्तु है। आले के अग्रभाग में माता जी की चित्रयुक्त आंगी जड़ी हुई है जिससे भीतर का यंत्र ढंक गया है। इस आले में रखने के लिये माताजी की चित्रमयी आंगी ही लोग चढ़ावे में चढ़ाते हैं। रात्रि को शृंगार के समय सोने और चांदी की आंगियां सजाई जाती हैं। आंगी पर कुक्कुटवाहिनी माता की आकृति बनाई जाती है। पश्चिमी दरवाजे पर मानसरोवर नामक कुंड है। इस सरोवर के विषय में एक दन्तकथा प्रचलित है। पहले वहां एक छोटी-सी तलाई थी। सोलंखी वंश की दो कुंवारियों में से एक की माता ने अपनी कुंवरी को कुंवर बताकर किसी राजकुमारी से ब्याह दिया। जब कुंवरी बड़ी हुई और उसे भेद ज्ञात हुआ तो उसने मरने का निश्चय किया। इतने ही में इस तलाई के दूसरे किनारे पर उसने पानी में स्नान करने के बाद एक कुत्ती को कुत्ता बन जाते देखा। बाद में एक घोड़ी भी घोड़ा बन गई। यह देख कर वह स्वयं इसमें कूद पड़ी और वह भी पुरुष बन गई। इसके बाद उसने इस कुण्ड को बड़ा बनवा दिया। आगे चलकर मानाजी राव गायकवाड़ ने इसको पक्का और अधिक बड़ा बनवाया।

इस स्थान पर प्रत्येक पूर्णिमा को मेला लगता है। सबसे बड़ा मेला चैत्र की पूर्णिमा को लगता है। उस समय गुजरात और काठियावाड़ के दूर-दूर के गांवों से सभी जातियों के श्रद्धालु यात्री यहां आते हैं। अब कुछ नयी-नयी धर्मशालाएं भी बन गई हैं। माताजी के आगे एक बगीचा लगा हुआ है जिसके सुन्दर पुष्प उनको चढ़ाए जाते हैं।

बहुचराजी के पास ही कालड़ी नामक एक बड़ा गांव है। यहां गरासिया राजपूतों की बस्ती है। इन गरासियों के कारण ही श्री बहुचरा माता जी की बहुत प्रसिद्धि हुई। माता जी के चढ़ावे में से इन गरासियों को रुपये में दस आना भाग मिलता था। हाल ही में पाटण के इनामदार अमरसिंह विक्रम सिंह बारहठ के कर्जे-पेटे इन लोगों ने इस आमदनी का बेचान कर दिया है।

बहुचराजी के मन्दिर से कुछ ही मील की दूरी पर देतरोज गांव है—जो चुंवाल का मध्य भाग या हृदय कहलाता है। वहां देवी का एक और मन्दिर है जिसके लिए लोगों का कहना है कि वही मूल देवस्थान है। वह आसपास में बसे हुये कोली ठाकरड़ों की कुलदेवी है; अभी पिछले कुछ समय तक देतरोज में नवरात्र के पहले दिन प्रतिवर्ष मेला लगता था और वहां एकत्रित ठाकरड़े माता को तेरह पाड़ों का भोग वेदी पर अर्पित करते थे। जंगली ठाकरड़े उस समय दारू पीकर

नशे में चूर हो जाते थे और आपस में झगड़ा भी करते थे जिसके नतीजे में खूब खूनखच्चर होता था। इसीलिए बाद में माता का मेला देतरोज में बन्द कर दिया गया परन्तु अब भी वे ठाकरड़े निश्चित दिन देतरोज के कांकड़ में अलग-अलग आते हैं और प्रत्येक ही बहुचराजी को एक भैंसे की बलि चढ़ाता है।

चुंवाल के भाटों का कहना है कि सोलंकी राजवंश के प्रधान का सम्बन्ध देतरोज के कुल वालों के साथ हुआ था, परन्तु कब हुआ था इसका पता नहीं है। उसी के वंशज कोलियों में मिल गये और उन्ही में से एक कानजी के अधिकार में, जो रात[7] या खवास[8] कहलाता था, "चौवालीस" गांव थे; इसीलिए 'चुंवाल' नाम प्रसिद्ध हुआ।[9]

---

7. संभवत: यह 'रावत' शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ योद्धा होता है।
8. शुद्ध क्षत्रिय द्वारा किसी रखैल स्त्री से उत्पन्न सन्तान खवास, खवासवाल या खवासीण कहलाती है।
9. ये राजपूत सरदार, मूल जातियों से निकली हुई शाखाओं के मुखिया के रूप में, स्काटलैण्ड की हाइलैण्ड शाखा के नायकों के समानान्तर है। "यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब कभी हाइलैण्ड शाखा के उच्च घरानों के मूल की खोज की गई तो वे बहुधा ट्यूटॉनिक जाति के ही निकले। मैंकडोनल्ड, मैक्लीग्राड और मैकिन्टाश के मुखिया नारवेजियन रक्त के थे। फ्रेजर, गारडन, कैम्पबेल, क्यूमिन, और अन्य अनेक घरानों के मूल पुरुष भी नारमन थे। ऐसा लगता है कि कैल्टिक लोगों को-जो अनुयायी के रूप में बहुत साहसिक, वीर और सहनशील थे—कतिपय पूर्वी जातियों जैसे, अच्छे संगठक और नियामक नेताओं की आवश्यकता थी। कितने ही उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं कि कुछ विदेशी परिवारों ने कैल्टिक वंशनाम ही ग्रहण कर लिये और ये उन शाखाओं के नाम थे जिनके वे नायक बन गए थे। इसके अतिरिक्त फ्रेजर एवं गारडन कुलों में कुछ अन्य छोटी छोटी जातियां मिल गईं और उनमें कितने ही ऐसे फुटकर लोग भी शामिल हो गए जिनके तरह तरह के भोंडे कैल्टिक नाम या अवटंक थे; ऐसे लोगों की जमातों ने अपने मुखियाओं के नाम ग्रहण कर लिए। यही कारण है कि हम गारडन या क्यूमिन अवटंकधारी बहुत से नारमनों को भी विशुद्ध अर्स भाषा बोलते हुए देखते हैं। परन्तु, भले ही नायक ने जाति का नाम ग्रहण कर लिया हो या जाति ने नायक का नाम अपनाया हो, फल यही हुआ कि नायकों की उच्च सभ्यता पर पुराने जातीय रीति रिवाजों और विशेषताओं का अप्रतिहत प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा और उनके परिवारों ने धीरे धीरे बोल-चाल और रहन-सहन के वे ही तरीके अपना लिए जो उनके द्वारा प्रशासित लोगों के थे। आयरलैण्ड में भी ऐसा ही हुआ, जहां →

कहते हैं कि एक बार जामनगर का झार गढ़वी नामक चारण काशी यात्रा के लिए गया था; लौटती बार वह देतरोज में कानजी रात के घर ठहरा। वहां

"भ्रष्ट अंग्रेजों" ने, जो पीढ़ी दर पीढ़ी देशी कैल्टिक आयरिश लोगों के साथ रहे थे, वही रीति रिवाज और वेशभूषा अपना ली, जो उन लोगों की थी जिनको उन्हें सभ्य बनाने के लिए भेजा गया था। इसी कारण इंगलैण्ड की अंग्रेजी सरकार इन पर लगातार गहरी फटकार देती रही और पार्लियामेण्ट ने इन पर दण्डात्मक कोप प्रकट किया।"

यह वृत्तान्त लार्ड लोवाट कृत "बर्टन्स लाइफ ऑफ साइमन" नामक पुस्तक से उद्धृत किया गया है। (भारत में विभिन्न राजपूत और अन्य जातियों के अवटंकों का मूल अनुसन्धान करके इनका तुलनात्मक अध्ययन करना एक मनोरंजक विषय होगा। हि. अ.)

गुजरात के कोली ठाकरड़ों की सूची इस प्रकार है:—चुंवाल में कुकुवाव, भंकोड़ा, छनियार और डेकावाड़ा के सोलंकी; कटोसरण, जिजूवाड़ा और पनार के मकवाणा; साबरमती नदी के किनारे घांटी और बाघपुर के राठौड़; चरोतर में घोड़ासर के डाभी; महीकांठा में ऊमलियारा के चौहान; काकरेज के वघेला। इनमें से प्रत्येक जाति ने जब पहले पहल कोलियों से सम्बन्ध किया तो वह तुरन्त मूल राजपूत घरानों से विच्छिन्न हो गई और उन लोगों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपने से निम्न स्तर के कोलियों के रीति रिवाज और रंगढंग अपना लें; यद्यपि उनमें उज्जवल हिन्दू वर्णों के समान कुछ फेरफार भी कर लेते थे। (जब मेर लोग गुजरात में बस गए तब से और चौदहवीं शताब्दी में दुर्भाग्यवश राजपूतों पर मुसलमानी जूआ आ जाने से इन योद्धा जातियों के उच्च एवं मध्य वर्ग के लोग आपस में अधिक नजदीक आ गए। उस समय बहुत से राजपूतों ने कोलियों के यहां शरण ली और उन्हीं में बेटी-व्यवहार कर लिया। उनके वंशज अब तक अपने को राजपूत मानते हैं और उन्हीं वंशों का नाम धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त, संभवतः मूल में एकता होने के कारण, गुजरात और काठियावाड़ के कुछ भागों में तालवड़ा कोलियों की लड़कियों और राजपूतों के लड़कों की आपस में शादी हो जाती है। इस प्रकार कोलियों और राजपूतों के संबंध कोलियों और कणबियों तथा राजपूतों और कणबियों के सम्बन्धों की अपेक्षा, अधिक निकट हैं और यह भी स्पष्ट है कि राजपूतों और कोलियों में वर्गभेद कुल जाति की अपेक्षा पद और मर्यादा पर अधिक आधारित है।
—बम्बई गजेटियर, गुजरात की आबादी; भा. 9, 1; पृ. 238-9.
इस विषय में अधिक जानकारी के लिए 'काठियावाड़ गजेटियर' पृ. 139-142 भी देखना चाहिए।

उसकी अच्छी आवभगत हुई और एक घोड़ा भी उसको बख्शीश में दिया गया। घर लौट कर चारण ने जाम के सामने कानजी रात की बहुत प्रशंसा की और कहा कि जाम का दसोंधी चारण होने के कारण ही उसका इतना स्वागत हुआ। इस पर प्रसन्न होकर जाम ने कानजी के लिए शिरोपाव भेजा। उस समय देतरोज का गोपी नामक पटेल बहुत प्रभावशाली था। कानजी रात के इस सम्मान से उसे बड़ी ईर्ष्या हुई और उसने उसको तुरन्त गांव छोड़ देने की आज्ञा दी। कानजी वहां से निकल गया और देतरोज से दो कोस की दूरी पर जांगरापुर नामक गांव में रहने लगा। बाद में, जब श्राद्धपक्ष आया तो कानजी ने अपने पिता का श्राद्ध करने के लिए दूध लाने को अपने खवास[10] को देतरोज भेजा। खवास ने घर-घर से दूध इकट्ठा किया और अन्त में गोपी पटेल के घर जाकर भी दूध देने को कहा। पटेल का पारा चढ़ गया और उसने अपने नौकरों को कह कर वह भांडा तुड़वा दिया जिसमें खवास ने दूध इकट्ठा किया था। इस पर, अपने काम में असफल होकर वह खवास रोता-रोता कानजी के पास पहुंचा। रात को पटेल की करतूत से चोट तो बहुत पहुंची, परन्तु वह उस समय गम खींच गया। उन्हीं दिनों एक और चारण कानजी के यहां आकर ठहरा और उसकी प्रशंसा में गीत कह कर उसने एक पामरी (रेशमी चादर) की याचना की। यह कानजी की शक्ति से बाहर की बात थी इसलिए उसने यह दोहा कहा—

कौन पाप से अवतरे, बड़े बाप के पूत।
मांगण मांगे पामरी, घर में मिलै न सूत॥

अब, कानजी ने अपने मन में निश्चय किया कि देतरोज जाकर अपना मस्तक माता के भोग में चढ़ा दे। ऐसा विचार करके वह सो गया, तब माता ने (स्वप्न में) आकर कहा, "तू मत घबरा, नवरात्र के पहले दिन (अष्टमी को) देतरोज आना। गांव के बाहर एक पाड़ा मिलेगा, उसी की बलि चढ़ा देना। इसके बाद पटेल का घर लूट लेना, निश्चित रह, तेरी जीत होगी। इस स्वप्न के प्रमाण में मैं तुझे पामरी देती हूं जिसे तू याचक को दे देना।" ऐसा कहकर माता अन्तर्ध्यान हो गई। कानजी जग पड़ा और उसने एक पामरी अपने बगल में देखी। प्रातःकाल होते ही वह रेशमी चादर उसने चारण को दे दी। जब अष्टमी का दिन आया तो उसने अपने साथियों को एकत्रित किया जो संख्या में दो सौ थे; वे सब हथियारों से लैस होकर घोड़ों पर चढ़े और देतरोज की ओर बढ़े। गांव के

10 अंग्रेज़ी में Torch bearer शब्द लिखा है, जिसका अर्थ मशाल लेकर चलने वाला होता है। गांवों में नाई या खवास ही यह काम करते थे। मालिक के लिए दूध या अन्य सामग्री आदि एकत्रित करना भी इन्हीं का काम था। गुजराती अनुवादक ने हज्जाम लिखा है, जिसका अर्थ भी हजामत बनाने वाला या नाई होता है। हि. अ.

दरवाजे पर ही उन्हें एक मस्त पाड़ा मिला जो पटेल का था। उन्होंने उस पाड़े का भोग माता को चढ़ाया और उसका रक्त माता पर छिड़का। उन दिनों, देतरोज के बाहर ही एक किले में बादशाह का थाना पड़ा हुआ था। कानजी ने रात में अपने एक सौ साथियों को तो थाने पर निगाह रखने को छोड़ दिया और शेष सौ साथियों को लेकर गोपी पटेल के घर गया। वहां जाकर उसने पटेल को कहा, 'मुजरा करो।' गोपी ने इन्कार किया तो कानजी ने उसके छः पुत्रों सहित उसका वध कर दिया। सातवें पुत्र को उसने छोड़ दिया। देतरोज का पटेल कालिदास उसी का वंशज था।

पटेल के मारे जाने की फरियाद दिल्ली पहुँची तो बादशाह ने कानजी का दमन करने के लिए अजीम खां को भेजा। उस समय देतरोज के आसपास बहुत विशाल जंगल था जो 'झांगरा का वन' कहलाता था। इस जंगल के विषय में इस प्रकार बात प्रचलित है—"जब दाराशाह अपने भाई से हार कर भागा तो वह देतरोज आ गया, तब कानजी ने उसे शरण देना स्वीकार किया।[11] दारा ने पूछा 'किला कहां है, जिसमें तुम मेरी रक्षा करोगे ?' तब कानजी ने कहा, "यह जंगल किले से भी अधिक दुर्गम्य है।" दारा ने उत्तर दिया, "जंगल तो बादशाह के ऊँट चर जावेंगे और उनकी लकड़ियां बादशाह के घोड़ों की मेखें बनाने के काम आ जायेंगी, परन्तु, शाबाश, तुम्हारे अन्दर इतनी हिम्मत तो है।" ऐसा कह कर दाराशाह सिन्ध की ओर आगे बढ़ गया। अब, अजीम खां आया और उसने जंगल साफ करवा दिया। तब कानजी कटोसण भाग गया जहां उसका सम्बन्धी जसवन्तसिंह रहता था। उन दोनों ने मिलकर अजीम खां का मुकाबला किया, परन्तु अन्त में वे जिंजूवाड़ा की ओर भागने के लिए बाध्य हो गये। वहां जेहोजी मकवाणा ने उनको रखा। बाद में, उन सभी को काकरेज परगने के थरा गांव में भाग जाना पड़ा। उस समय वहां पर कोली ठाकुर कूँपोजी का राज्य था; वह भी उनमें मिल गया और वे सब कुरजा पहाड़ी पर चले गये जहां बारह वर्ष तक बाहरवाट की तरह रहे। अन्त में, चंदुर ग्राम के करमशी बनिये ने, जो अजीम खां का माल-मन्त्री था, बादशाह से उनका मेल करा दिया और उनके परगने भी वापस दिला दिये। इस पर ठाकरड़ों ने करमशी से प्रतिज्ञा की कि उनके कुल का कोई भी व्यक्ति चंदुर के पास घोड़े नहीं डँकावेगा और न वहां के निवासियों को सतावेगा।

---

11. 'दाराशिकोह जब औरंगजेब से हारकर भागा तो कानजी कोली उसको गुजरात पार करके कच्छ के रण तक ले गया।'—सरकार कृत 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब', 2, पृ. 194। सिन्ध जाने से पहले दाराशिकोह भुज में गया, जहां राव ने उसको बड़े सम्मान से रखा। वह जिस बाड़ी में ठहरा था वह आज तक 'दारा बाड़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। (गु. अ.)

गीत

सुणे थांह[12] गोपीतणी कचेरी साहरी, चवे[13] फरियाद, को कान चूको[14] ।
मरद उमराव गुजरात ले मोकलो, 'झांगरो' कान रो करे झूंकोप[15] ।।
मान सनमान अजीम खां मेलियो, करवा काज धर सूत[16] कांठा[17] ।
कान, जशवंत ने झंझेरी[18] का'ढिया, नरपति जेशिया सोत न्हाठा ।।
कमो सनमान दीवान आजीम कियो, मेहेप[19] कैताक कर जोड़ मलिया ।
धड़क[20] आजिम तणी नाश थरा धणी, चार करजा सरे भूप चड़िया ।।
ऊतर्‌या करजे थी वन्य हां आगमण[21], कांहे बो[22] वात मोहे थी कथवी ।
जशवंत, कान कुंभराज, जोशियो राखिया वाड़ ऊनाड़ रथवी[23] ।।

इस घटना के वाद कानजी का देतरोज पर निष्कण्टक अधिकार रहा और उसकी सत्ता एवं कीर्ति बढ़ती रही । यह भी कहा जाता है कि वादशाह[24] ने उसको नौवत, चोवदार और आफतावगीरी (सूरजमुखी) के राजचिह्न प्रदान किये थे ।

कानजी के वाद रामसिंह जी, उदेभाणजी और नारायणजी गद्दी पर वैठे । अंतिम ठाकुर नारायणदास का चवूतरा अव भी चुंवाल में भंकोड़ा ग्राम में मौजूद है और उस पर लगे हुये लेख में लिखा है, "रात श्री नाराणजी की छतरी उनके भाई श्री हरीसिंहजी और कुंअर श्री कानाजी ने सन् 1720 ई० में वनवाई ।"

ऐसा लगता है कि इस छोटे कानाजी ने अपने इसी नाम वाले पूर्वज के समान कीर्ति अर्जित की ।

दूहा

काना तरकस कानरो, तें वांध्यो ज जुवाण[25] ।
वीजो खोज न ऊपड़े, देत - रोज दैवाण[26] ।।

कानजी रात की तरह यह भी मुसलमानों के साथ युद्धरत रहा ।

---

12. फरियाद; 13. कहे; 14. चुकारा करे, पकड़े;
15. लड़ाई; 16. सिंधु; 17. महीकांठा;
18. मार भगाया; 19. महीप, राजा; 20. धाक; 21. हिम्मत;
22. वहुत; 23. चंदुरवाला करमशी अथवा कमा का उपनाम ।
24. गुजराती अनुवाद में अकवर लिखा है जो ठीक नहीं है; परन्तु अंग्रेजी मूल में पादशाह ही लिखा है ।
25. जवान; 26. देव ।

गीत

× दणी करंती वफोर सोर गई साह आगे दोड़ी,
भणी वात सुणी साची श्रवणे सभाण;
"आगरे कहातो ज के भागरो कान रो आगे",
"कान रो भांगरो दूजो हुओ दूजो कान" । 1 ।

जंजालां लहे भडां त्रंवालां घरावे जोर,
गुंडाला वंधोसे काला नाढाणी सताव;
"पेंगालां काकशा धोखा" सुणो शाह के प्रजा,
"नेजाला धजाला सोता मारिया नवाव" । 2 ।

मारका हसम मले कारका जोरड़ा मंडे,
घुमाड़े त्रवड़ी घटा काढे सत्रां घाण;
गवाड़े सिंधुड़ा राग, नमाडे त्रवंका गढां,
भजोडे वावरी गादी हरो अदेभाण । 3 ।

ए आंकी शाहसु सदा घरेणो कान रो आगे,
धरे शाह तणी सरे मटे नहि धाह;
"वाह-वाह" हुइओ तो जाम राव आगे वातां,
शाह रा रसाला पाड़े कानो पादशाह । 4 ।

× इस गीत का भावार्थ इस प्रकार है—

दुनिया शोर मचाती हुई दौड़कर वादशाह के पास गई और सच्ची बात कही : वादशाह ने सभा में (दरवार में) सुना "पहले जो आगरे में लुटेरा कानेरा सुना जाता था वही अब दूसरा कान रा पैदा हो गया है । 1 ।

वह जंजालों और योद्धाओं को साथ लेकर जोर से नौवत वजाता है और वह नाढाजी का पुत्र काले शुंडाल हाथियों को तुरन्त वांधता है । प्रजा वादशाह से कहती है, 'सुनो, उसने नेजा और निशान वाले नवावों को ही मार दिया, पैदल सिपाही उसके सामने क्या चीज हैं ?' । 2 ।

वह वड़े जोर से सज्जित होकर धावे करता है और शत्रुओं को पार पहुंचा देता है; वह त्रेवडी (तीन तरह की या तिगुनी) फौज शत्रुओं का कचूमर निकालने को रखता है; वह युद्ध का सिंधु राग गवाता है और किलों को तोड़ देता है; वह उदेभाण का पौत्र अपने पिता की गद्दी को सुशोभित करता है । 3 ।

कान सदा ही शाह के साथ लड़ाई करता है; शाह की प्रजा की धड़कन (भीति) मिटती नहीं है । जाम के सामने वातें हुई कि "वाह-वाह", काना पादशाही रिसाले को नष्ट कर देता है । 4 ।

भाट जिस नायक का वर्णन करता है उसमें शूरवीरता के साथ-साथ उदारता का गुण भी अवश्य होता है; कानजी की उदारता का वर्णन निम्न पद्य में है—

(0) इन्द्र वुठे पख ग्राठ, मास बार तुं भड़ मंडे;
ते करे सरस केदार, तुं वेदुग्रां दरिद्र विहंडे।
ए गाजे ग्रणी ऊपर, गाजतो तुं घमसांण;
ए वुठे वन धान, तुं तो वुठे केकाण।
देतरोज राण मोजंद जल, दन-दन शबद दाखिये।
कोनाणी तुं नाढास तन, इन्द्र समोवड़ ग्राखिये॥

ऐसा ज्ञात होता है कि कानजी के अधिकार में चुंवाल का चौथाई भाग ही था क्योंकि यह परगना चार तालुकों में बँट गया था। यह विभाजन कब हुग्रा, यह तो पता नहीं, परन्तु वे तालुके कोकवाव, मंगोड़ा, छनियार ग्रौर डेकावाड़ा थे। कानजी ने अपना तालुका जीवनकाल में ही पुत्रों को बाँट दिया था। सब से बड़े नथूभाई को रामपुरा, कानपुर ग्रौर कांज नामक गांव मिले; दूसरे पुत्र दादो को दशन्नाणं ग्रौर नारायणपुरा मिले; सब से छोटे भूपतसिंह को कोन्तीग्रो तथा घाटो-शाणा गांव दिये गये। तालुके के शेष गांव कानाजी ने अपने पास रखे जो मंकोड़ा, कांग्रोड़ी (न्नी), चूनीनूपुरा (चूंडानीनुं परुं), दांगढवा, बालशासन, ऐंदरा ग्रौर कदवाहण थे।

जब कानाजी की मृत्यु हुई तो भूपतसिंह की अवस्था बारह वर्ष की ही थी। उसके बड़े भाईयों ने उसे निकाल दिया ग्रौर वह अपने एक दूर के सम्बन्धी छनियार के ठाकरड़े के पास चला गया। भूपतसिंह के पास एक बकरा था जिसको वह बहुत प्यार करता था। एक दिन उस बकरे में ग्रौर छनियार ठाकरड़े के बकरे में लड़ाई हुई तो भूपत वाला मार खाकर भाग गया। तब भूपत बहुत नाराज हुग्रा ग्रौर यह कह कर कि 'लानत है तुझ को, तूने मेरी ग्राबरू खराब कर दी' उस बकरे का सिर काट दिया। यह देखकर छनियार का ठाकरड़ा घबराया ग्रौर सोचा कि कभी इसी तरह गुस्से में ग्राकर यह मेरे बाल-बच्चों को भी नुकसान पहुंचायेगा। ग्रतः उसने भूपत को वहां से कहीं भेज देने का विचार किया। तब भूपतसिंह कोडतिया गांव में

---

(0) इन्द्र तो ग्राठ पखवाड़े (4 मास) ही वर्षा करता है परन्तु तू तो बारह मास ही बरसता रहता है; इन्द्र केदार को सरस करता है ग्रौर तू विद्वानों के दरिद्र का नाश करता है (उन्हें प्रसन्न करता है); इन्द्र पृथ्वी पर गर्जना करता है, तू घमासान युद्ध में गाजता है; इन्द्र वन-धान्य बरसाता है, तू घोड़ों की वर्षा करता है; हे देतरोज के राणा! दान देने के लिए जल छोड़ते हुए प्रतिदिन तुम्हारा यश गाया जाता है; हे नाढाजी के पुत्र काना! तुम्हारे समान इन्द्र को कैसे कहा जाय?

जाकर रहने लगा जो उसके पिता ने जागीर में दिया था। पनार का ठाकुर कूंपोजी मकवाणा था। उसके कामदार पुथू ने सलाह दी कि कूंपोजी अपनी पुत्री का सम्बन्ध भूपतसिंह से कर दे। कूंपोजी देश में प्रसिद्ध ठाकुर था इसलिए उसने कामदार से कहा कि भूपतसिंह के पास कोई जमीन-जायदाद तो है नहीं, तब यह सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? कामदार ने कहा, 'यदि आप मदद करेंगे तो वह अपना गरास वापस ले लेगा।' निदान, उस जवान ठाकरड़े के साथ कूंपोजी ने अपनी कन्या ब्याह दी और दो हजार कोलियों को साथ लेकर उसके भाई दादो एवं उसके पुत्र बनेसिंह को दशलाणा में मार डाला। यह देखकर सबसे बड़ा भाई नथूभाई डर के मारे भाग गया। पहले वह कटोसण में रहा फिर घांटी चला गया। तब भूपतसिंह ने अपने पिता और भाइयों के सब गांवों पर कब्जा कर लिया और भंकोड़ा में गद्दी कायम करके रहने लगा।

भंकोड़ा में गुसांइयों का एक मठ था जिसमें से एक अतीत[27] भूपतसिंह की माता के रावले में आता जाता था। इस पर बनिये कामदारों ने सलाह करके भूपतसिंह से कहा कि अतीत के रावले में आने जाने से उसकी बदनामी होती है। भूपतसिंह को इस बात पर बहुत क्रोध आया और उसने तलवार से उसी समय अपनी मां का काम तमाम कर दिया। अतीत भाग गया और कभी वापस नहीं आया; परन्तु उसका चेला मठ का स्वामी हो गया।

उस समय पनार के मकवाणा कूंपोजी के 'मेलीकरों' अथवा लुटेरों ने एक ओर वढवाण और लीमड़ी तक, दूसरी ओर अहमदाबाद तक सारे देश पर हल्ला बोला रखा था। साणंद का राजा प्रतिवर्ष दीवाली पर कूंपोजी को एक घोड़ा देता था और इसी के बदले उसके इलाके में लूट-पाट न करने का ठहराव था। इसी तरह और भी बहुत से गांवों से दाब-धौंस देकर कूंपोजी कुछ-न-कुछ वसूल करता रहता था। मांडल का जेठा पटेल मरहठों का बहुत कृपापात्र था। जब पेशवा की फौज भोमियों और तालुकेदारों से मुल्कगीरी वसूल करने आती तो वह उसके साथ जाता था। एक बार हलवद के राजा की तरफ पेशवा का दो लाख रुपया बकाया था। जेठा पटेल इस रकम की वसूली का इन्तजाम करने गया। उस समय कुंअर की नाबालिगी में बाई[28] ही राज्य का प्रबन्ध करती थी। उसने जेठा पटेल से कहा कि उस समय उसके पास देने को रकम बिलकुल नहीं थी क्योंकि वढवाण के ठाकुर ने थोड़े ही दिनों पहले उसके इलाके को उजाड़ दिया था और उसको एक पल भी चैन नहीं लेने दिया था। जेठा पटेल ने धमकी दी कि यदि उसके द्वारा मांगी हुई रकम

27. अंग्रेजी मूल में 'वाणिया' लिखा है, जो भूल है। 'अतीत' शैव सन्यासी होते हैं–देखिए–रासमाला भा० 1

28. जीजाबा, जसवंतसिंहजी की माता–काठियावाड़ गजेटियर; पृ० 429

नहीं दी जायगी तो वह गांवों में आग लगाकर जबरदस्ती वसूली कर लेगा। यह कह कर वह चला गया। कूंपोजी वाई का धर्म-भाई था इसलिए उसने उसे बुलाकर कहा कि जब तक जेठा पटेल न मारा जायेगा, उसे शान्ति नहीं मिलेगी। उसी समय जेठा पनार के एक गांव छरियालू में भी पेशवा की एवज तोरण वंधाने आया। कूंपोजी को उससे लड़ाई करने का यह अच्छा अवसर मिल गया और उसने पटेल को तलवार के घाट पार उतार दिया—यह ऐसा काम हुआ कि जिससे तमाम भोमियों को राहत मिली।

इस घटना के वाद कूंपोजी ने एक सौ पचास वख्तरवंद सवार साथ लेकर अहमदावाद के पास 'ओड कमोद' नामक गांव पर धावा किया। वह वहां से मवेशी ले गया। इस गांव में मरहठों का साठ आदमियों का थाना रहता था; वे युद्ध करने आये परन्तु कूंपोजी ने लड़कर उनमें से वीस आदमी मार डाले और उनको पीछे हटा दिया; उसके केवल चार आदमी मरे। परन्तु, पास ही सरखेज का दूसरा थाना था; वहां से एक वनिया कामदार सिर्फ छः सवार और दो धौंसे साथ लेकर आया और अचानक कोलियों पर टूट पड़ा; उस समय वे एक स्थान पर विश्राम कर रहे थे। 'मेलीकरों' ने जव धौंसे की आवाज सुनी तो समझा कि कोई वड़ा सरदार वहुत-सी फौज लेकर चढ़ आया है इसलिए भाग खड़े हुए। कूंपोजी ठाकरड़ा भी घोड़ा दौड़ा कर भगा परन्तु उस पर पीछे से भाले का वार हुआ और वह ढेर हो गया। मरहठे उसकी लाश ले गए और उसके पुत्र शान्ताजी को तव तक नहीं लौटाई जव तक कि उसने यह प्रतिज्ञा न करली कि वह भविष्य में उनके गांवों पर हमला नहीं करेगा। शव प्राप्त करके शान्ताजी ने पनार में उसका दाह-संस्कार किया और 'ओड-कमोद' में एक पालिया वनवा दिया।

अव भूपतसिंह की वात फिर चालू करते हैं। कड़ी से मल्हारराव गायकवाड़ ने भूपतसिंह को कहलाया, "कांत्रोडी', कोइतियां और घटेशणा—ये तीन गांव गायकवाड़ के हैं; इन्हें वापस करो।" परन्तु भूपतसिंह ने इनकार कर दिया और यह झगड़ा कुछ वर्षों तक चलता रहा। एक वार, पाटण का एक व्यापारी रेशम का माल गाड़ियों में भर कर ले जा रहा था। छनियार के ठाकरड़ा के कुछ आदमी गाड़ियों की रक्षा के लिए साथ थे। भूपतसिंह ने दशलाणा और झंकोड़ा के वीच में माल पकड़ लिया। वाद में, चौदह हजार रुपये दण्ड ले कर व्यापारी को माल ले जाने दिया। उसके इस व्यवहार के कारण छनियार वालों से वैर वंध गया और दोनों ही ओर के कई आदमी मारे गए; एक वार स्वयं भूपतसिंह भी वन्दूक की गोली लगने से घायल हो गया था, परन्तु वाद में ठीक हो गया। इसके वाद कड़ी से मल्हार राव का छोटा भाई हनुमन्त राव मरहठा सेना लेकर झंकोड़ा आया और भूपतसिंह को कहलाया कि 'ठाकरड़ा ने माथे पर पानी डाला है[29] इसलिए पगड़ी वंधाने का दस्तूर

29. रोगनिवृत्ति के वाद आरोग्य स्नान।

करने आया हूं ।' तब भूपतसिंह ने कहा, "मुझे तुम्हारी पगड़ी नहीं चाहिए, मैं मरहठों को अपने गांव में नहीं घुसने दूंगा।" अब, हनुमन्त राव ने अपना पड़ाव पड़ोस के गांव में डाला और कड़ी को सन्देश भेज दिया कि भूपतसिंह को छल कपट से नहीं पकड़ा जा सकता। तब मल्हारराव ने बांहधर (आश्वासन) देकर भूपतसिंह को कड़ी बुलवाया। वहां पहुंचने पर उसने फिर तीनों गांवों की मांग सामने रखी जिसको भूपतसिंह ने अस्वीकार कर दिया। वह फसल काटने का समय था और खेतों में अनाज पकने लगा था। भूपतसिंह ने उन सब को बरबाद करके गांव छोड़ दिया और अपने बाल बच्चों को वीरमगाम में रख कर बाहरबाट हो गया। उसके पास निजी तीन सौ घोड़े थे और उसके साथियों ने मिलकर यह संख्या दो हजार तक पहुंचा दी। उसने गायकवाड़ के गांवों को लूटना शुरू कर दिया।[30]

भूपतसिंह के पूर्वज कानजी रात को बादशाह ने नौबत, चोबदार और आफतावगीरी (सूरजमुखी) के राजचिह्न प्रदान किए थे; वह इन सब को अपने पास रखता था। जब मंकोड़ा छोड़ कर भूपत चला गया तो मल्हारराव ने आकर उसकी कोटड़ी को तोपों से उड़ाने का उपक्रम किया; तब एक चारण ने उसका उपहास करते हुए कहा, "भूपतसिंह लड़ता है तो कौन सी अचरज की बात है? अब तो उसके घर की एक एक ईंट युद्ध पर उतर आई है।" जब मल्हारराव ने यह बात सुनी तो वह लज्जित होकर लौट गया। भूपतसिंह बहुत दिनों तक मरहठों के लिए त्रास का कारण बना रहा।

दूहा

मंकोड़ूं ने कड़ी लड़े, जाणे सतारा जाम।
भडवा[31] चाल्यो भूपतो, रावण माथे राम ॥
कानाणी[32] कुल खो तणा, भोज भरणाहार।[33]
भड़ थई डाकण भूपता, तूं वाली तरवार ॥[34]
महिला जे मराठा तणी, केम सजे सिणगार।
भड़तो ऊभो भूपतो, माथे मोटो मार ॥[35]

---

30. भूपतसिंह ने मरहठों को सताया जिसका यह दोहा प्रसिद्ध है :—
देतराना दनीया मांग्र, दखणी करतां कांम;
वली ने काठये पोल, भालानी अणीये भूपता।
31. लड़ने को। मंकोड़ा और कड़ी में लड़ाई हुई; इस बात को सतारा और जाम ने सुना।
32. काना का वंशज। 33. मांस खाने वाले। 34. हे भूपत! तेरी तलवार सब को खानेवाली डाकिन हो गई। 35. मरहठों की स्त्रियां गहने नहीं पहनतीं क्योंकि सिर पर योद्धा भूपत खड़ा है।

रावे राफ[36] नं जाणियो, धर्यो वरांसे पाग ।
भड़ अजरायल[37] भूपतो, जग वैयो जड़ नाग ।।[38]
कड़ी ऊखेली का डशे,[39] करशे कौल करीर ।[40]
घर भोगवशे भूपतो, मरशे राव मल्हार ।।
काला कांई डंवर करे,[41] ठाला[42] तुरक डाय ।
भल ते कीधा भूपता, चोखंड चाकरडाय ।[43]

जब कड़ी में मल्हार राव की स्त्री ने पुत्र को जन्म दिया तो उसकी एक दासी बाजार में सोंठ लेने गई। प्रसव के बाद पुनः शक्ति प्राप्ति के लिए स्त्रियां सोंठ का प्रयोग करती हैं। वह दासी पंसारी को लगातार कहती रही 'तुम्हारी दूकान में जो सब से बढ़िया सोंठ हो, वह देना।' तब दूकानदार ने कहा 'अच्छी सोंठ तो सब भूपतसिंह की माता ने खाई है, अब तो छूंछे रह गए हैं।' दासी ने घर जाकर मल्हार राव को सब बात बताई तो वह बहुत नाराज हुआ और उसने पंसारी की दूकान लुटवा ली। जब भूपतसिंह ने यह बात सुनी तो उसने बनिये का नुकसान पूरा कर दिया। इस तरह, मल्हारराव और भूपतसिंह में कई बरसों तक चलती रही। अन्त में, जब मल्हारराव की अंग्रेजों और बड़ोदा राज्य से लड़ाई हुई तो उसने भूपतसिंह को जिजूवाड़ा से अपनी मदद के लिए बुलाया और जब मल्हारराव कैद हो गया तो भूपत ने ही उसके परिवार को संरक्षण दिया।

इस ठाकुर के विषय में नीचे लिखी और भी बातें प्रचलित हैं—

जूनागढ़ के नवाब ने धांधरपुर के गोदड़ काठी पर आक्रमण कर दिया। उसने हलवद के राजा से सहायता मांगी, परन्तु वह तो नवाब से डरता था इसलिए इनकार कर गया। इस पर गोदड़ काठी ने भूपतसिंह को बुलाया; उसने धांधलपुर जाकर अच्छी तरह उसका रक्षण किया।[44]

मेथाण का गरासिया हलवद के राजा का छुटभाई था। राजा ने उसका गरास दबा लिया; ऐसे अवसरों पर दूसरे ठाकुर अपनी लड़कियां मुसलमानों को देकर सहायता मांगते थे परन्तु मेथाण के झाला ने भूपतसिंह को लड़की दी। तब हलवद का राजा भूपतसिंह से डर गया और उसने तुरन्त ही दबाई हुई भूमि को छोड़ दिया।

---

36. राफड़ा=बिल, सांप का बिल। 37. अजेय। 38. महासर्प। 39. उखाड़ डालेगा। 40. सन्धि करने को बाध्य करेगा। 41. नासमझी करते हैं। 42. व्यर्थ। 43. नौकर, दास।

44. फार्बस गुजराती सभा की हस्तलिखित प्रति सं० 46-1-57 में इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है—

खरो खेड खवंडां तणी भेल माती खरी लाख लाखां दलां मेल लाडो;
जेरर राज्य थी भीरन हुई जदी, आवीयो भूपतो तदे आडो। 1? →

भूपतसिंह प्रत्येक द्वादशी के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराता था; उसने अपने गांव में गरीबों के लिए सदाव्रत भी खोल रखा था। वह निर्धनों को कभी नहीं लूटता था। वह तो राजाओं से ही लोहा लेता था। 1814 ई. में उसका देहान्त हो गया। चुंवाल के सोलंकी-कोलियों के पड़ोस में ही मकवाणा कोली हैं, जिनके अधिकार में जुंजूवाड़ा, कटोसण और पनार के गरास हैं। केसर मकवाणा का कुंअर हरपाल; झाला शाखा का मूल-पुरुष था। उसके अतिरिक्त केसर के दो पुत्र और थे, विजैपाल और शांता जी। मुसलमानों के साथ लड़ाई में विजैपाल घायल होकर कैद हो गया; बाद में, वह मौलेसलाम[45] हुआ। उसके वंशज मही कांठा में मांडुवा के जमींदार हैं।

खेध खरा शाणरा, वेध नाता खरा, धरा पर धपधपे गैंण ध्रूजो;
भीर गोदड़ तणी ताणवा महाभड़, डमर कर आवीयो कान-दूजो। 2.
हेमरां डूंगरां नरां चालतां हशम, वशम गत सींधुवा राग वागे;
झीकतो आभसर टेक दे झीलिओ, खेलीयो प्रजारां बीच खागे। 3.
अलंगारो वेडीयो नाढहर ऊकरो, दले दई पाण घमशाण दाखे;
भांहरां धरावे घर भूपतो राव काठां तणी धरा राखे। 4.

45. गुजरात के सुल्तान महमूद बेगड़ा (1459 से 1511 ई.) ने बहुत से हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया था, जिनमें राजपूत भी शामिल थे। इस प्रकार परिवर्तित मुसलमान मौलेसलाम कहलाते थे जिसका अर्थ इस्लाम का मौला या मालिक होता है। जब काफिरों को इस्लाम में परिवर्तित कर लिया जाता था तो उन्हें मौला कहने का रिवाज था। आमोद और केरवाड़ा के मौले-सलाम ठाकुर अपने को यादव राजपूतों के वंशज बताते हैं। 1921 ई. की जनगणना में भड़ौंच और राजपीपला उपजिलों में इन मौले-सलामों की संख्या 4666 थी; जिनमें 2357 पुरुष और 2309 स्त्रियां थीं।

ये लोग सुन्नी होते हैं, गुजराती बोलते हैं, और हिन्दू विधान इन पर लागू होता है। परन्तु बाद में पढ़े लिखे लोगों ने उर्दू जबान और मुसलमानी कानून को अपना लिया है। इनमें से कुछ लोग छोटी-छोटी दाढ़ियाँ भी रखते हैं। घर में ये लोग लुंगी पहनते हैं और जब बाहर निकलते हैं तब साफा या फेंटा बांध लेते हैं और राजपूतों की तरह कमरबन्द बांधते हैं या कंधों पर दुपट्टा रखते हैं। इनकी स्त्रियां राजपूत अथवा गरासिया जाति की स्त्रियों की तरह सल्ला, अंगिया और घाघरा पहनती हैं। ये परदा नहीं रखतीं।

मौलेसलाम अन्य मुसलमानों के साथ ही दस्तरखान पर खाना खा लेते हैं और कभी-कभी मांस भक्षण भी करते हैं, परन्तु सामान्यत: वे हिन्दुओं की तरह शाकाहारी ही होते हैं। मौलेसलाम अपनी लड़कियों का विवाह शेखों, सैयदों, मुगलों या बांचियों में करते हैं, परन्तु नीचे दर्जे के मुसलमानों में विवाह करने

इनका प्रवर्तक लालमियां है जिसके विषय में ईडर के राव वीरमदेव का चरित लिखते समय उल्लेख किया गया है। शांता जी ने अपने बाहुबल से सांथल पर अधिकार कर लिया। महमूद बेगडा के समय में वहां उसका वंशज कानोजी राज्य करता था। कानोजी ने एक भील सरदार की लड़की से विवाह कर लिया इसलिए वह जाति-च्युत हो गया; परन्तु वह सुलतान की सेवा बड़ी तत्परता से करता था इसलिए महमूद ने उसको चौरासी गांवों की कटोसण की जागीर दे दी थी। कानोजी की तेरहवीं पीढ़ी में नाराणजी कटोसण का ठाकुर हुआ; उसी के समय से इस कुटुम्ब के वृत्तान्त और भाग्य का गहराई से अनुसंधान किया जा सकता है और उसी से गुजरात के हिन्दुओं में भाई-वंट करके जमीन का वंटवारा-दर-वटवारा करने के क्या परिणाम हुए, इसका भी अच्छी तरह पता चल जाता है। परन्तु, इस विषय में प्रवेश करने का हमारा विचार नहीं है क्योंकि यह भू-राजस्व के अध्येताओं के लिए तो काम का विषय हो सकता है, सामान्य पाठकों के लिए रुचिकर नहीं होगा। मंकोड़ा वालों का बखान करने के लिए भाटों को जितनी सामग्री मिली उस परिमाण में तो कटोसण के मकवाणों का कीर्तिगान करने को मसाला नहीं मिला, फिर भी नाराणजी के पौत्र अजबोजी और अगरोजी के नाम, अपने ढंग से, कीर्ति-रहित नहीं हैं। यहां, उपसंहार में, उन्हीं से सम्बद्ध कुछ गीतों के चुने हुए अंशों का सारांश देते हैं।

नीचे कटोसण के अजबोजी मकवाणा के दरबार का चित्र प्रस्तुत किया जाता है :—*

"दरबार में नौबतें गड़गड़ाती थीं; जमीन पर छिड़काव होता था; बहुत से ठाकुर हाथ जोड़ते हुए शरण मांगने आते थे; वे अपनी फरियादें करते थे; कानोजी के वंशज के आगे छत्तीस तरह के बाजे बजते थे मानों इन्द्र के सामने बज रहे हों;

का नियम नहीं है। किसी मौले-सलाम ठाकुर को राजपूत कन्या भी व्याह दी जाती है, परन्तु अन्य मुसलमान अपनी ही जाति में विवाह करते हैं अथवा अन्य गरीब मुसलमान परिवारों में से लड़की ले लेते हैं। ये काजियों और मौलवियों को तो मानते ही हैं, परन्तु अपने परम्परागत कुलगुरु ब्राह्मण का भी मान करते हैं, भाटों और चारणों को दान देते हैं। इनमें से जो धनाढ्य होते हैं, वे भाटों और चारणों को अपने आमोद के समय में कवितायें सुनाने के लिये रखते हैं। दूसरे लोग विवाहादि अवसरों पर इनका सम्मान करते हैं। वंश-परम्परागत तालुकेदारों और जमींदारों के अतिरिक्त अधिकतर मौलेसलाम कृषक, दूकानदार, व्यापारी अथवा व्यवसायी होते हैं।

(गजेटियर ऑफ इण्डिया, गुजरात स्टेट, भडौंच डिस्ट्रिक्ट, 1961, पृष्ठ 189)

* फार्बस गुजराती सभा का ह० लि० ग्रन्थ 'अजब-वरद-शृंगार' चारण विक्रमशी रचित; सं० 48–2 ख. के आधार पर

विद्वान् वेद-पाठ करते थे; अतिथियों को शक्कर, वकरे का और सूअर का मांस परोसा जाता था; अफीम और केसर का नित्य वितरण होता था; अजवो के आगे नर्तकियां नृत्य करती थीं; वह सदा रागरंग में ही मस्त रहता था; शहनाई की जोड़ी वजती थी; हाथियों की तरह झूमते हुये गायक गाते थे; धन का व्यय करने में वह राजा वलि के समान था; उसके रसोवड़े में नित्य ही दूध-पाक, खीर और अमृत जैसे स्वादिष्ट भोजन वनते थे; उसके भवन पर धर्म की ध्वजा फहराती थी; ऐसा चुंवाल का धणी था, वादशाह भी जिसकी आन मानता था। जसा के पुत्र ! मकवाणा ! हिन्दुओं और मर्यादा के रक्षक ? सूर्य के समान तेरा उदय हुआ है।'' उसका भाई उगरेश भी कम प्रसिद्ध नहीं था। वे दोनों भाई लोगों को दशरथ के पुत्रों का स्मरण कराते थे।

भाट ने वर्णन किया है कि अजवोजी जगद्विजयी था; उसने साहू की सेना, दखिनियों की सेना और दिल्ली की सेना को समान रूप से परास्त किया था; परन्तु, वह अपनी इच्छानुसार स्वार्थ-साधन में भी नहीं चूकता था। उसने गांव-गांव में अपना गरास कायम कर लिया था; हमलों से उसे नित्य ही कीर्ति प्राप्त होती थी। विशरोडिया, पनारा, भरतोलिया और वहुत से अर्द्ध-भग्न गांवपति उसके अमीर थे। कपड़े लत्ते पहनने और पोशाक सजाने में भी वह कम नहीं था। भाट ने मुख्य रूप से लिखा है कि वह 'जरी और रेशम की पोशाक' पहनता था।

अजवोजी ने और भी अधिक सम्मानपूर्ण कीर्ति तो तव अर्जित की जव 1813 ई. के भंयकर दुष्काल में उसने अपने अन्न के कोठारों को गरीवों के लिए खोल दिया; इस दुष्काल का स्मरण एक अविस्मरणीय शोक गीत की छाया के समान है जो कवि के अत्यन्त हर्षोन्मादपूर्ण काव्य को भी धूमिल कर देता है—

"पृथ्वी पर आपत्ति छा गई थी, राजा विना भोजन रहे, राव-राणों के पास एक दाना भी देने को नहीं था, पति और पत्नी एक दूसरे को छोड़ गये, माता-पिता सन्तानों को छोड़ चले, सव धर्मकर्म भूल गये, धर्मदाय (सदाव्रत) वन्द हो गये, जलाशय सूख गए और वादलों से एक वूंद भी पानी नहीं गिरा। ऐसे समय में जव गांव-गांव से ऐसी सूचनाएं आ रही थीं, सारा देश भिखारी वन गया था उस समय कनोजी के वंशज ने अपना झण्डा फहराया; उसने अपने कोठार खोल दिए जव कि और राजा परदेशियों को अपने गांव में घुसने ही नहीं देते थे, अजवोजी उनका स्वागत करता था। यद्यपि स्वर्ग का इन्द्र कोपायमान था परन्तु यह पृथ्वी का इन्द्र तो प्रसन्न था; उसने देश में से दुष्काल को निकाल वाहर करने की प्राणपण से चेष्टा की।"

मुसलमानों के साथ हुए युद्ध का वर्णन इस प्रकार है :—

"उस समय कड़ी में आंवो खां और लेंवो नामक दो तुर्क राज्य करते थे; वे वहुत वड़े अत्याचारी थे। जव उन्होंने अजवो और अगरो की कीर्ति सुनी तो अपनी मातहती कवूल करने व खिराज देने के लिए कटोसरण पत्र लिखा। अजवो तो

इस सन्देश को सुन कर आगबबूला हो गया। अगरो ने किसी तरह उसको रोका और दूत को नहीं मारने दिया। उन्होंने तुरन्त ही मदनशाह के पुत्र, अपने दीवान, दीपचन्द को बुलाया और तुर्कों के नाम क्रोध उत्पन्न करने वाला उत्तर लिखवाया जिसमें उनको केसर के पराक्रमों और कीरंतीगढ़ (कीर्तिगढ़) के अधिपतियों के शौर्य की याद दिलाई। लम्बी-लम्बी दाढ़ीवाले मुसलमान घमण्ड में भरकर इकट्ठे हुए और उन्होंने डांगरवाड़ा में अपना पड़ाव डाला। जब यह खबर कटोसण पहुंची तो अजबो ने अपने भायातों को बुलाया; उनमें अभग तलवार का धनी तेजल, मेघराज, जगतो और सूरजसिंह थे। अगरो ने मूंछों पर हाथ फेरते हुए उनको सब बात समझाई तो उन भाइयों ने भ्रातृत्व निभाने की सौगन्ध खाई। विक्रमशी कवि ने उच्च स्वर में कहा, "वाह, वाह! मैं तुम्हारी हिम्मत देखकर प्रसन्न हो गया।" उसने उनके पूर्वजों के गीत गा कर उनको उत्साहित किया; उसने सांथल के शान्ता जी और हरखा सवाई तथा कानो के गीत कहे। बहुत से कोली एकत्रित हो गये; वे अपने कन्धों पर भाथे लटका-लटका कर आए, धनुष की टंकार गूंज उठी; कुछ घोड़ों पर सवार होकर आए, कुछ पैदल आए और बहुत से रात को हमला करने वाले आए। जोरा और जस्सा जकाणा के आदमियों को लेकर आए; अगरजा का हेमू, मरतोली का मानूं और बहुत से लोग आए।" इसके आगे कवि ने अपनी भाट-परम्परा के अनुसार युद्ध का वर्णन किया है जिसका विस्तार करने की यहां आवश्यकता नहीं है—यथा—"शेषनाग कांपने लगा, हिन्दू मुसलमानों से भिड़े मानों पहाड़ से पहाड़ टकरा गया; रक्त की नदी बह चली; शिवजी सदा ही ऐसे अवसरों पर अपने वीर, भूत, वेताल, राक्षसों के साथ प्रकट होते हैं; सूर्य का रथ ठहर गया, उसने अपने घोड़ों की लगाम खींच ली, अप्सराएं और हूरें हिन्दुओं और मुसलमानों का वरण करके स्वर्ग एवं जन्नत में ले जाने को आईं। आंबो और लेंबो, जो युद्ध से पलायन करने वाले नहीं थे, खड्गधारी क्षत्रियों से भिड़ गए।"

यह तो हुआ सामान्य वर्णन, अब विशेष इस प्रकार है :—

"जब अगरेश ने अजबो को उत्साहित किया तो उसने रात-दिन युद्ध करने व शत्रु पर बाघ के समान टूट पडने का निश्चय किया। उसने एक डेरे से दूसरे डेरे तक खाइयां खुदवा दीं; धन, जवाहरात, शस्त्रास्त्र और कपड़े आदि सब छीन ले गया। उसने शत्रु को दो तरह से मारा; उनके पास खाने को कुछ नहीं रहा और बहुत थोड़े आदमी और घोड़े ही बच पाए। जब यह दशा हो गई तो वरसोड़ा का ठाकुर बीच बचाव करने आया। तब मुसलमानों ने थोड़ी तसल्ली की सांस ली। उसने किसी तरह मामला निपटा कर झगड़ा शान्त करा दिया।

विशेष टिप्पणी

दी बाम्बे गजेटियर, वॉल्यूम 7; पृ. 611-614 में बहुचराजी सम्बन्धी वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—

वर्तमान मन्दिर से पूर्व में 3 मील की दूरी पर कालड़ी गांव के कुछ गड़रिये बालक जानवर चरा रहे थे। खेल-खेल में ही उन्होंने देवी का आला बना लिया। घर से कुछ चावल लाकर वहीं पकाये और उन्होंने तथाकथित देवी को भोग लगाया। फिर उन्होंने एक मोटे से पाड़े को पकड़ा और बरखारिया पेड़ की टहनी से उसका गला घोंट दिया। पाड़े का सिर अलग जा गिरा और इस प्रकार देवी ने उस बलिदान को ग्रहण कर लिया।

उसी समय एक राजा अपनी सेना सहित उधर से निकला। उसने जब इस चमत्कारपूर्ण घटना को सुना तो उसने देवी से अपना चावलों का पात्र पूर्ण कर देने की प्रार्थना की जिससे वह अपनी सेना को भोजन करा सके। तुरन्त ही, राजा के हाथ का पात्र अमोघ हो गया। सेना को भोजन करा देने के बाद भी वह खाली नहीं हुआ। इसी तरह के अनेक चमत्कार बहुचराजी के मन्दिर के बारे में सुने जाते हैं।

मन्दिर में अनेक जातियों के लोग सेवा करते हैं जिनमें ब्राह्मण भी हैं। इन सब को गायकवाड़ सरकार नियुक्त करती है और मन्दिर के कोष से उनको वेतन मिलता है। माता की निज-सेवा के लिए छः औदीच्य या श्रीमाली ब्राह्मण रखे जाते हैं जो 492 रु. वार्षिक वेतन पाते हैं। अन्य 21 लोगों में, नौ नक्कारचियों को 765 रु., एक छड़ीदार और एक मशालची को 126 रु., छः कहारों को 180 रु. और चार भिश्तियों को 150 रु. दिया जाता है।

बहुत सवेरे ही नहा-धोकर मुख्य पुजारी निज-मन्दिर में प्रवेश करता है और दूध, दही, घृत, शक्कर तथा मधु मिश्रित पञ्चामृत से प्रतिमाओं को स्नान करा कर रामझारे के ठण्डे जल से शुद्धि-स्नान कराता है। इस अभिषेक के समय ब्राह्मण वेद-मन्त्रों का उच्चार करते रहते हैं। तदनन्तर प्रतिमा और आँगी को कुंकुम तथा पुष्प अर्पित करके धूप और कपूर जलाए जाते हैं और चाँदी के पात्रों में दीपक रात-दिन जलते रहते हैं। सात बजे आटा, घृत और शक्कर से बने हुए शीरे का बाल-भोग चढ़ाया जाता है और घण्टा झालर बजाते हुए सहगान के साथ आरती करके प्रातः कालीन पूजा सम्पन्न कर दी जाती है। दस बजे दूध-बूरे का भोग लगता है जिसमें से कुछ तो प्रतिमा पर छिड़क देते हैं और शेष को पुजारी लोग काम में ले लेते हैं। पहले जब राजपूत, कमालिया और अन्य गैर-ब्राह्मण लोग पूजा करते थे तो नित्य

मदिरा और मांस चढ़ता था। संवत् 1915 (1859 ई.) में गायकवाड़ ने उन अन्याई पुजारियों को हटा कर एक नारायणराव माधव नामक दाक्षिणात्य ब्राह्मण को प्रबन्धक और ब्राह्मणों को पुजारी नियुक्त किया। दोपहर में दुर्गा-सप्तशती का पाठ होता है, प्रतिमा को पुनः स्नान करा कर चावल, दाल, शाक-सब्जी और आटे-शक्कर-घृत के लड्डुओं का भोग लगता है। इसको महानैवेद्य कहते हैं। दर्शनार्थी भी इसी प्रकार का प्रसाद चढ़ाते हैं। बड़ी विचित्र बात है कि यह प्रसाद छः दिन तक कमालिया ले जाते है और दस दिन तक राजपूत लेते हैं। सन्ध्या समय फिर पूजन होता है और उस समय का प्रसाद भी कमालिया और राजपूत अपनी-अपनी पारी के अनुसार ग्रहण करते हैं।

मन्दिर से सम्बद्ध कमालियों, कालड़ी के सोलंकी राजपूतों और पवैयों या हिजड़ों के बारे में भी जान लेना चाहिये। कमालिया कहते हैं, भण्डासुर नामक प्रबल दैत्य इस जंगल में रहता था और सरस्वती नदी के किनारे बसे हुये ब्राह्मणों तथा सन्तों को दुःख देता था। उन्होंने देवी से प्रार्थना की और उसने कमालियों को उत्पन्न किया। कालड़ी के सोलंकी राजपूत अपने को अणहिलपुर पाटन के राजवंश से निकले बताते हैं। कहते हैं कि एक बार पाटण के चावड़ा और कालड़ी के सोलंकी राजाओं ने अपनी सन्तानों का वैवाहिक सम्बन्ध करने का निश्चय किया। दुर्भाग्य से दोनों ही राजाओं के कन्या उत्पन्न हुई। परन्तु, कालड़ी के राजा ने झूठमूठ अपनी लड़की को लड़का बता कर चावड़ा की लड़की से विवाह करा लिया। अब, बड़ी कठिनाई पैदा हुई और लड़का बनी हुई लड़की पाटन से भाग निकली। वह थोड़ी देर देवी के जंगल में रुकी। संयोग से उसकी कुतिया और घोड़ी बारी-बारी से तालाब के पानी में कूद पड़ीं और वे कुत्ता और घोड़ा बन गईं। यह देख कर वह लड़की भी सरोवर में उतरी और राजकुमार के रूप में बदल गई। तब से ही कालड़ी के सोलंकी देवी के उपासक बन गए।

कुछ लोगों का कहना है कि कमालिया मुसलमान हैं। एक बार खूनी अल्लाउद्दीन का कोई सिपाही देवी के मन्दिर का मुर्गा पका कर खा गया परन्तु वह उसके पेट में से बेचर ! बेचर ! चिल्लाने लगा। अल्लाउद्दीन बहुत परेशान हुआ और उसने सोलंकी राजपूतों को बुलाकर देवी से प्रार्थना करने को कहा। उन्होंने इस शर्त पर प्रार्थना करना स्वीकार किया कि मुर्गा मारने वाले सिपाही को मन्दिर में ही झाड़ू-बुहारी का काम करने को छोड़ दिया जाय। इस आदमी का नाम कमाल था। उसने अहमदाबाद की एक मुसलमान स्त्री से विवाह कर लिया और वही कमालियों का पूर्वज हुआ। ये लोग अब तक मुसलमानी रीति-रिवाजों को मानते हैं और मृतकों को दफन करते हैं। कुछ भी हो, सोलंकी राजपूत और कमालिया दोनों ही देवी के पूरे चढ़ावे का दावा करते हैं और यह झगड़ा लगातार चलता ही रहा। और कोई उपाय न देख कर महाराजा सयाजीराव ने अग्नि परीक्षा करके विवाद निपटाने का

निश्चय किया। उन्होंने दोनों ही पक्षों को लोहे की गरम सलाख लेकर पांच कदम चलने को कहा। कमालिया इसमें खरे उतरे और राजपूत पीछे हट गए। यद्यपि परिणाम स्पष्ट था परन्तु संवत् 1907 (1851 ई.) में राजपूतों ने कमालियों पर मन्दिर में ही हमला करके उनमें से दस को मार दिया। इस पर महाराजा खंडेराव ने नया फैसला किया कि चढ़ावे में से दस आना हिस्सा राजपूत लें और छः आना कमालिया लें। इस निर्णय में महाराजा मल्हारराव ने कुछ बाधा अवश्य डाली थी फिर भी यह इसी तरह चला आता है परन्तु कमालिया तो असन्तोष प्रकट करते हुए कुछ न कुछ आन्दोलन करते ही रहते हैं।

भेंट स्वरूप प्राप्त होने वाले नकदी, कपड़ा, गहने और मूल्यवान वस्तुओं के लिए यह नियम है कि पचास रुपये से अधिक मूल्य की चीजें तो देवी के लिए सुरक्षित रखी जाती हैं और बाकी गोलख में जमा करा दी जाती हैं। इस गोलख (कोष) में से साधु-सन्तों और ब्राह्मणों को भोजन-सामग्री दी जाती है जिसकी चिट्ठी पर कमालिया, सोलंकी और गायकवाड़ के अधिकारियों की सही होती है। गोलख की वार्षिक आय लगभग पाँच हजार रुपये होती है जिसमें से 3000 तो धर्मार्थ या सदाव्रत में खर्च होते हैं और 2000 देवी के काम आते हैं।

पवैया या हिजड़े प्राकृतिक रूप से नपुंसक होने के कारण चुने जाते हैं परन्तु उनको बहुत थोड़ा हिस्सा मिलता है। विशेष अवसरों पर वे यात्रियों से हल्का-सा शुल्क वसूल करते हैं। पिछले दिनों गायकवाड़ सरकार ने इस कार्य में बड़ा व्यवधान उत्पन्न कर दिया था जिससे इन लोगों को तो दुःख हुआ परन्तु मानव समाज का बहुत उपकार हुआ।

प्रति मास की पूर्णिमा को माता का उत्सव होता है। उस दिन बेचराजी के भक्त आस-पास के गांवों से यहां नियमित रूप से आते हैं। वे मानसरोवर में स्नान करते हैं और देवी के प्रसाद चढ़ाते हैं। आश्विन और चैत्र की पूर्णिमा को और दोनों नवरात्रों में विशेष उत्सव होता है। इन अवसरों पर गरीब लोग कागज या भोडल की तथा राजपूत सरदार चाँदी की आँगियाँ प्रसाद के साथ विशेष रूप से भेंट करते हैं। सस्ती आँगियाँ प्रसाद के साथ भक्तों में वितरित कर दी जाती हैं। कभी-कभी लोग मनौतियाँ भी मानते हैं और अभीष्ट सिद्ध होने पर आँगी ले जा कर अपने बनवाये हुए मन्दिर में पधराते हैं।

आश्विन शुक्ला और चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन मन्दिर के सामने वेदी पर बलिदान होता है। वहां अग्नि प्रज्वलित करके भोजन-सामग्री और घृत से होम-हवन किया जाता है और शतचण्डी का पाठ होता है। समाप्ति पर आश्विन बदी 14 को भैंसे की बलि दी जाती है। ब्राह्मणों एवं अन्य लोगों की भावनाओं को ठेस न लगे इसलिए यह बलिकर्म रात्रि के समय चुपचाप सम्पन्न होता है। कमालिया मन्दिर के सामने एक पत्थर पर भैंसे को लाते हैं; इस स्थान को 'चाचर' कहते हैं। कुंकुम और

पुष्पों से उस पशु का पूजन किया जाता है, उसकी पीठ पर श्वेत वस्त्र डालते हैं और गले में पुष्पमाला पहनाते हैं। फिर देवी के पास जलते हुए दीपकों में से एक को लाकर चाचर पर रखते हैं। इसके बाद भैंसे को खुला छोड़ देते हैं; यदि वह दीपक को सूंघ लेता है तो माना जाता है कि देवी ने उसे स्वीकार कर लिया है अतः मन्दिर के गांव का कोली एक ही वार में उसका झटका कर देता है। एक फूल को उसके रक्त में भिगोकर देवी के चढ़ाया जाता है और अन्य लोग उस रक्त से अपने ललाट पर तिलक लगाते हैं। यह रक्त शक्ति और सौभाग्य देने वाला माना जाता है और ब्राह्मण भी इसमें कपड़ा भिगोकर अपने घर में रखते हैं जिससे प्राकृतिक विपत्तियों और गम्भीर बीमारियों से उनकी रक्षा होने की मान्यता है। यदि भैंसा दीपक को नहीं सूंघता है तो उसका कान काट लेते हैं और पुष्प को रक्त में भिगो कर उस पशु को छोड़ देते हैं। यात्री भी बकरों और भैंसों की बलि चढ़ाने की मनौतियाँ मनाते हैं परन्तु ब्राह्मणों का प्रभाव प्रबल होने के कारण उक्त एक पशु के अतिरिक्त अन्य पशुओं का बलिदान किले की चारदीवारी में नहीं होता। जब यात्री बलि चढ़ाते हैं तो देवी के दीपक वाली परीक्षा अवश्य होती है।

यात्री अकेले भी आते हैं परन्तु गुजरात के दूरस्थ भागों और काठियावाड़ से आने वाले संघों में ही आते हैं। वास्तव में, अभी कुछ समय पूर्व तक देश में फैली हुई असुरक्षा की भावना के कारण ही संघों में यात्रा करना आवश्यक भी था। बड़े-बड़े संघ आश्विन और चैत्र की पूर्णिमा से पहले ही किराये की अथवा घरू गाड़ियों में पहुंच जाते हैं परन्तु मनौती वाले पदयात्रा ही करते हैं। संघों के मुखिया संघवी कहलाते हैं। वे अनुभवी और सड़कों तथा मार्गों के पूरे जानकार होते हैं। उन्हें यह भी ज्ञान होता है कि किस ऋतु में यात्रा करना चाहिए और कहां-कहां से संघ की रक्षा के लिए कोलिओं को किराये पर साथ लेना चाहिए।

प्रकरण नवां

महीकांठा

गुजरात का वह मुल्की और फौजी खण्ड, जिसको मरहठे महीकांठा कहते थे, मही नदी के कांठा या किनारे के ऊपरी भाग तक ही सीमित नहीं था, जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है, अपितु इसका विस्तार नदी के उत्तर में पोसीना, अम्बाजी और बनास तक था; सच्ची बात तो यह है कि इसमें मूल गुजरात का वह सभी भाग शामिल था जिसमें गायकवाड़ की मुल्कगीरी वसूल करने के लिए सेना का सन्निवेश आवश्यक था। देश के प्राकृतिक गठन के बारे में हमने इस पुस्तक के आरम्भ में ही वर्णन किया है;* इस प्रान्त के विभिन्न भाग विभिन्न सत्ताधारियों के हाथों में आ गए इसका कारण भी इसकी प्राकृतिक बनावट ही रही है। प्रायः सम्पूर्ण सपाट प्रदेश तो मरहठा राज्य की सत्ता के अधीन हो गया था फिर भी, चुंआल के जंगलों में और दक्षिण में ठेठ बड़ोदा तक मही के कांठा में स्वतंत्र जातियों के लोगों को संरक्षण मिलता था और मोंधा, नापार, धोलका तथा अन्य सुसम्पन्न परगनों के गांवों में, जिनमें राजपूत जमींदारों, मुख्यतः वाघेलों, के गरास भी शामिल थे, मुल्कगीरी करने के लिए वार्षिक सेना अभियान आवश्यक था। जैसे-जैसे नदी की छोटी-छोटी शाखाएं बंटती थीं वैसे ही उनके किनारों पर जंगलों और नालों में स्वतन्त्र जातियां भरती जाती थीं और जैसे ही इन छोटी नदियों की संख्या बढ़ी, जंगल घने और विस्तृत होते गये वैसे ही स्वतंत्र इलाकों का भी विस्तार होता गया और इनमें आजादों का समुदाय अधिक सुदृढ़ रूप में मिलने लगा यहां तक कि ये बस्तियां उत्तरपूर्व के पहाड़ी भाग में ईडर और लूणावाड़ा की रियासतों तक जा पहुंचीं, जो अब तक अधीन नहीं हुई थीं।

महीकांठा की आबादी में बहुत से कणबी, बनिये और ऐसी ही दूसरी गरीब जातियां भी शामिल थीं परन्तु शस्त्र धारण करने वाली जातियों में, जिनमें प्रान्त का अधिकार निहित था, राजपूत, कोली और मुसलमान ही थे। इनमें कोलियों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत अधिक थी परन्तु बहुधा वे राजपूतों की सत्ता के अधीन थे। राजपूत भी दो तरह के थे—एक तो मारवाड़ी, जो ईडर के राजवंश के साथ जोधपुर से चले आए थे; दूसरे, पुराने रावों के साथी जिनको अन्त में पोल से खदेड़ कर निकाल दिया गया था। इनमें से पहले राजपूत तो वेशभूषा और रंगढंग में मारवाड़ के राजपूतों जैसे ही थे परन्तु एकान्तता या विच्छिन्नता के कारण उनमें जंगलीपन

* देखिए—रासमाला, हि॰ अ॰, भाग 1 (पू.);पृ.

अधिक आ गया था। ये लोग शूरवीर कहलाते थे परन्तु साथ ही मूर्ख, आलसी एवं अव्यवस्थित भी थे और अफीम या अन्य नशीली चीजों के आदी हो गए थे। रहवर और दूसरी जातियों के लोग, जो अब तक राव सोनिगजी की सन्तान के प्रति वफादार थे, मारवाड़ियों की अपेक्षा अधिक सभ्य, ईमानदार और शांत माने जाते थे परन्तु उनमें फुर्ती और युद्धप्रियता की कमी थी। ढाल, तलवार, बन्दूक और भाले सभी राजपूत रखते थे। वे अपनी रक्षा के लिए प्रायः चमड़े या जंजीरों के बने हुए बख्तर पहनते थे और घोड़ों पर भी पाखर डालते थे, कभी-कभी, परन्तु बहुत कम धनुष बाण भी साथ रखते थे। उनकी युद्ध-योजना केवल अपने गांवों की रक्षा करने के लिए ही होती थी; बहुत कम अवसरों पर ही, जब वे अपने गांव की रक्षा करने में असफल होते तो, वे जंगल में भाग कर चले जाते थे परन्तु कोलियों की तरह छुप-छुप कर युद्ध करना उनकी आदत में बिलकुल नहीं था। पहले लिख चुके हैं कि महीकाठां में कोलियों अथवा भीलों की ही आबादी बहुत अधिक है (यद्यपि कोली भीलों के साथ इस समाजतीयता को पसंद नहीं करेंगे परन्तु यहां उस भेद पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है)। अन्य लोगों की अपेक्षा वे कद में बहुत छोटे होते हैं और उनकी आंखों में चंचलता एवं शैतानी का भाव दिखाई देता है। वे कभी बांधते हैं तो बहुत छोटी पगड़ी बांधते हैं, वैसे उनका शिरोवेष्टन एक कपड़ा ही होता है, जिसको वे चाहे जैसे कनपटियों पर लपेट लेते हैं; कपड़े बहुत कम परन्तु मोटे पहनते हैं; वे तरकश और कुम्पटा (बांस के धनुष) के बिना कभी नहीं निकलते और उनका यह धनुष किसी भी खतरे की सूचना मिलते ही या अजनबी को देखते ही तन जाता है। यहां के लोग बहुत तेज, चंचल और मेहनती कह कर इनका परिचय देते हैं; भूख, प्यास, थकान और अनिद्रा के विषय में असाधारण सहिष्णु, चौकस, साहसी, भेदिया, युक्ति ढूंढने में कुशल, तथा रात को धावा करने, छापा मारने और धोखा देने में ये लोग आश्चर्यकारक मति-गति के धनी गिने जाते हैं। इनके हथियार और कुछ आदतें ऐसी हैं जिनके कारण ये खुले युद्ध में नहीं टिक सकते।[1] जब इन पर आक्रमण होता है तो ये दब जाते हैं परन्तु नियमित कवायद

---

1. स्काटलैण्ड के मैदानी जमींदारों का पहाड़ी जातियों (हाई-लैण्डर्स) के बारे में भी ऐसा ही विचार है। 'बॉनी जॉन सैटन' नामक कविता में कुछ ऐसे ही पद्य हैं—

'पहाड़ी (हाईलैण्डर) लोग तलवार और ढाल की व्यवस्था करने में तो चतुर हैं परन्तु रणक्षेत्र में ठहरने के मामले में वे बिल्कुल नंगे हैं। (अपने खुले शरीर पर वार सहन नहीं कर सकते)

पहाड़ी लोग तलवार और बन्दूक सम्हालने में तो बहुत चतुर हैं परन्तु तोपों की गूंज बर्दाश्त करने के मामले में बहुत नंगे (कच्चे) हैं। →

सीखे हुए ब्रिटिश सिपाहियों के पड़ाव पर भी हमला करने में इन्होंने असाधारण शूर-वीरता का परिचय दिया है। ये स्वभाव से स्वच्छन्द और पक्के लुटेरे होते हैं परन्तु यदि इन पर विश्वास कर लिया जाय तो पूरे विश्वस्त और नमकहलाल साबित होते हैं, विश्वासघाती ये कभी नहीं होते, शराब बहुत पीते हैं और पीने के बाद बहुत झगड़ा करते हैं। लूट खसोट करने में इनको आनन्द आता है और जब देश में सर्वत्र गड़बड़ी फैलती है तो इससे बढ़कर इनको और कुछ अच्छा नहीं लगता। कोलियों की संख्या इतनी अधिक है कि यदि इनमें संगठित होने की योग्यता होती तो ये बहुत प्रबल हो जाते; यद्यपि इनमें एक दूसरे के प्रति दृढ़ भ्रातृभाव होता है परन्तु इन्होंने अपने को एक संगठित जाति के रूप में कभी नहीं माना और न कभी किसी बाहरी शत्रु का मिल कर सामना ही किया। नियमित व्यवसाय इन्हें पसन्द नहीं है।

ईडर रियासत की आमदनी, अहमदनगर और मोडासा के अधीनस्थ इलाकों को मिला कर, चार लाख रुपये सालाना की मानी जाती है। रावों के समय में ईडर राज्य का विस्तार बहुत था परन्तु बाद में खेराला और परांतीज के परगने तो अहमदाबाद के सुलतानों ने जीत लिए और कुछ दूसरे इलाके मेवाड़ के राणाओं और डूंगरपुर के रावलों ने अपने-अपने राज्यों में मिला लिए। स्वयं ईडर के महाराजा की आमदनी एक या डेढ़ लाख रुपये से अधिक नहीं थी, बाकी राजस्व आठ राजपूत सरदारों में बंटा हुआ था, जो पटायत या पटावत कहलाते थे; वे राज्य की सैनिक सेवाएं करते थे तथा नाममात्र को कुछ नकदी खिराज भी जमा कराते थे। ये उन बीस या तीस राजपूत या कोली ठाकुरों के अतिरिक्त थे जिनके पास रावों के समय से फौजी नौकरी के सिलसिले में जमीनें चली आती थीं और अब वे महाराजा को वार्षिक कर देते थे। समस्त ईडर राज्य गायकवाड़ को कर देता था; यह कर पहले तो महाराजा और उनके पटायतों से वसूल किया जाता और कदाचित् कमी रह जाती तो प्रजा पर अतिरिक्त कर लगाकर आंकड़ा पूरा कर लिया जाता था। महा-राजा की निजी सेवा में तो केवल पचास घुड़सवार और डेढ़ सौ पैदल माने जाते थे परन्तु आवश्यकता पड़ने पर किराए के सिपाहियों द्वारा यह संख्या बढ़ा ली जाती थी और ऐसे सिपाहियों की टोलियों की कोई कमी नहीं थी। पटावतों की फौज में कुल एक हजार की संख्या थी, जिसमें घुड़सवार और पैदल दोनों शामिल थे और इनके अतिरिक्त छः सौ अन्य सैनिक ठाकुर भी थे।

अहमदनगर, मोडासा और बायड़ के ठाकुर ईडर के महाराजा के भाईबन्धु हैं और इनके ठिकाने ईडर में ही माने जाते थे, परन्तु वास्तव में वे बिलकुल स्वतंत्र थे।

क्योंकि ग्रीष्म की रात्रि में तोप की गड़गड़ाहट हवा में बादलों की गर्जना के समान होती है, पहाड़ी पोशाक पहनने वाला एक भी ऐसा हाइलैण्डर नहीं है जो इस तोप की गूंज को सह सके।'

खास तौर से अहमदनगर का तालुकेदार तो अपने ईडर वाले भाइयों का कट्टर दुश्मन था और बाद में तो उनकी यह शत्रुता बहुत बढ़ गई थी क्योंकि जब मोडासा का तालुकेदार निःस्संतान मर गया तो ईडर के महाराजा ने उस तालुके को वापस अपने राज्य में मिला लेने का हक जाहिर किया और अहमदनगरवाले ने कहा कि वही उसका असली हकदार था और उसका दूसरा कुंअर ही वहां पर गोद बैठेगा।

ईडर के आठ पटायत (एक को छोड़कर, जो चौहान है) राठौड़ हैं और उनके घराने जोधा, चांपावत, कूंपावत या ऐसे ही अन्य नामों से प्रसिद्ध हैं, जो उन कुलों के मूलपुरुषों के नामों पर पड़े हैं—जैसे जोधपुर बसाने वाला जोधा, उनका भाई चांपा और भतीजा कूंपा तथा अन्य मारवाड़ के राजवंश के लोग। उनकी श्रेणियां बहुत सोच-समझकर पाबन्दी के साथ तय कर दी गई थीं और प्रत्येक को जो सम्मान प्राप्त था वह भी स्पष्ट रूप में नियमित कर दिया गया था। ऊंदणी के कूंपावत का दर्जा सर्वोपरि था; चांदी की छड़ी लेकर चोबदार उसके आगे चलता था और उसकी सवारी के आगे नौबत बजती थी; वह पालकी में बैठकर राजसी चंवर डुलवाने का भी अधिकारी था। उसकी जागीर महाराजा की ओर से वसूल होने वाले सभी करों से मुक्त थी और वह जब आता और जाता तो महाराजा गद्दी पर खड़े होकर उससे गले मिलते थे। दरबार में उसकी बैठक महाराजा के दाहिनी ओर पहले नम्बर पर थी। उसके सब से बड़े और महत्वपूर्ण दो विशेषाधिकार थे—जो यूरोपीय पाठकों को तो अजीब ही मालूम होंगे—कि वह अपने पैर में एक भारी सोने का कड़ा पहनता था और महाराजा के साथ बैठकर सुनहरी हुक्के से धूम्रपान करता था। मूंडेटी का चौहान, बहुत बड़ी जागीर होने पर भी, सब से हल्की पदवी का पटायत था। उसको केवल इतनी ही प्रतिष्ठा प्राप्त थी कि महाराजा उसको ताजीम देते थे (उठ कर मिलते थे) और उसके आगे नौबत बजती थी।

प्रथम श्रेणी के उमरावों से दूसरे दर्जे का आदर बारहठजी को प्राप्त था जिनकी बैठक महाराजा की गद्दी के सामने थी और आते व जाते समय महाराजा उन्हें अभ्युत्थान का सम्मान देते थे।

अन्य भी बहुत से लश्करी जमींदार थे जिनको जिलों में बड़े पटायतों की ओर से जमीनें मिली हुई थीं; वे 'जिलायत' कहलाते थे। उनमें से कितनों ही को आते समय की ताजीम मिली हुई थी, परन्तु जाते समय की नहीं। उनमें से प्रत्येक के पास अधिक से अधिक दस घुड़सवार रहते थे, जो अपने जिले के पटायत के साथ सवारी में चलते थे।

रियासत के राजस्व-सम्बन्धी मामले सम्हालने वाला अधिकारी 'कारभारी' या दीवान कहलाता था। वह प्रायः वैश्य जाति का होता था। दूसरे कामकाज सरदारों में से किसी एक के अधीन होते थे, जो 'प्रधान' कहलाता था और उसको निरन्तर

महाराजा के हुजूर में हाजिर रहना पड़ता था। पटायतों सम्बन्धी कोई भी काम प्रधान की सम्मति के बिना महाराजा अकेले नहीं कर सकते थे। यदि किसी पटायत को बुलाने के परवाने पर महाराजा के ही हस्ताक्षर होते और नीचे प्रधान की सही न होती तो वह मान्य नहीं होता था और, इतना ही नहीं, उसे शंकास्पद भी माना जाता था।

पश्चिम की ओर खुला होने पर भी ईडरवाड़ा प्रायः सुरक्षित था। इस ओर बहुत से पहाड़, नदियां और जंगल हैं। जमीन उपजाऊ है और अनगिनती आमों के वृक्ष यह प्रमाणित करते हैं कि कभी यहां पर काश्त होती थी; परन्तु अब अधिकांश भाग में जंगल छाया हुआ है।

महीकांठा परगने में लूणावाड़ा की राजपूत रियासत थी परन्तु दुर्भाग्य से उसके कोई अभिलेख हमें उपलब्ध नहीं हुए। इसमें दांता के अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे ठाकुरों की जागीरें आ गई हैं (जिनमें से प्रत्येक के पास पन्द्रह सौ से तीन हजार तक योद्धा रहते थे और आस-पास के बड़े-बड़े किलों में उनका सन्निवेश था)। इनमें से जो बड़े-बड़े हैं वे चार या पांच जत्थों में बांटे जा सकते हैं। आंबलियारा, लोहार और निरमाली के कोली ठाकुर तथा मांडुवा, पुनादरा और कराल के मकवाणा जमींदारों के पास वात्रक नदी के निकट कोई पन्द्रह वर्गमील क्षेत्रफल वाली भूमि थी। दूसरे जत्थे में कोलियों के नौ गांव आते हैं जो बीजापुर परगने में साबरमती के किनारे पर स्थित हैं। इस जत्थे से लगती हुई ही दक्षिण में वरसोड़ा, माणसा और पेथापुर की राजपूत जागीरें थीं। बनास के पास ही काकरेज के आठ हजार और चुंवाल के पांच हजार धनुपधारियों का प्रान्त सुदृढ़ और बलवान नहीं माना जाता था; बाद में उन्होंने पड़ोस के लोगों को सताना भी बन्द कर दिया था।

मेवासियों अर्थात् उपद्रवी जातियों को दबा कर रखने के लिए मुसलमान बादशाहों द्वारा बनवाये हुए बहुत से बड़े-बड़े किलों के खण्डहर अब तक भी प्रान्त के ऐसे भागों में पड़े देखे जाते हैं जहां बहुत कम लोगों का आना जाना होता है। जब मुस्लिम शक्ति पूरी बढ़ोतरी पर थी उस समय भी ये प्रयत्न बहुत प्रभावशील हुए हों, ऐसा नहीं लगता और मुगल साम्राज्य के पतन के समय में तो यहां से लश्कर उठा ही लिए गये थे तथा यह भाग यहां के उपद्रवी निवासियों के हाथों में खुला छोड़ दिया गया था। मरहठों के आगमन के बाद दशा बदल गई; उन्होंने न तो किले बनवाये और न सीधा शासन ही कायम करने का प्रयत्न किया वरन् वे तो अपने रिवाज के अनुसार कर वसूल करने के लिए तंग करने वाले धावे करते रहे और जैसे-जैसे मौका मिला, कर की रकम बढ़ाते रहे।

मरहठों की मुलकगीरी करने वाली सेना[2] वर्षा ऋतु में तो जहां उपयुक्त

---

2. देखिए—बाम्बे गजेटियर, भा. 7 (बड़ोदा), प्रकरण 7.

समझती वहां महीकांठा में ठहरी रहती और बाकी आठ महीनों तक लगातार इधर-उधर घूमती रहती। जब कोई तालुकेदार तलब की हुई कर की रकम नहीं देता तो एक घुड़सवार, जो मोसल कहलाता था, उसके यहां भेज दिया जाता और वह, रकम चुकाने तक, प्रतिदिन के हिसाब से एक नियत अतिरिक्त रकम वसूल करने का हकदार होता था। जब यह उपाय भी सफल न होता तो सेना उस तालुके में बढ़ जाती और यदि इन अनचाहे और बेकाबू मेहमानों द्वारा पैदा की गई दिक्कतों से भी वह तालुकेदार रास्ते पर न आता तो उसकी फसल काट ली जाती, पेड़ बरबाद कर दिये जाते और जमीन उजाड़ दी जाती थी। ऐसी कार्यवाहियां प्रायः तभी होती थीं जब कर की रकम बढ़ा कर मांगी जाती थी, परन्तु बहुत से गांव वाले इसी को इज्जत की बात समझते थे कि जब तक चढ़ाई न हो तब तक खिराज अदा न करना। यदि वे लोग कर न देने का हठ करते, लूटपाट करते या ऐसी बातों को उकसाते तो गायकवाड़ का अधिकारी उनके साथ खुली दुश्मनी पर उतर आता था। वह प्रायः मेवासियों के गांवों पर अचानक छापा मारता और उनके ठाकुर व औरतों को पकड़ ले जाने का प्रयत्न करता। यदि वह सफल हो जाता तो मेवासी आत्म-समर्पण कर देते और यदि उसका वश न चलता तो वह गांवों में आग लगवा देता; वहां के निवासी यदि कोली होते तो जंगलों में जाकर छुप जाते और उसको तंग करने लगते। कोलियों के सुदृढ़ गांव नदी के उस पार बहुत दूर तक खुले होते थे और दूसरे मुकामों पर उनके रक्षा-उपायों का अभिप्राय यही होता था कि वे नालों और खड्डों में सुभीते के साथ जा कर छुप सकें। कोलियों को इस प्रकार लड़ाई करने व छुपने की जो सुविधाएँ मिली हुई थीं उनसे उनका तो हौसला बढ़ा हुआ रहता ही था, उधर पहाड़ी चोटियों पर कृत्रिम रास्तों के कारण आक्रमणकारियों की हिम्मत भी पस्त रहती थी। ऐसे मौकों पर प्रायः कोली अपने धनुष और बन्दूकों के सहारे गायकवाड़ की सेना को बहुत समय तक रोके रख सकते थे। परन्तु, कदाचित् उन्हें खदेड़ दिया जाता तो वे तितर-बितर हो जाते थे और किसी लम्बे मार्ग से चल कर जल्दी ही किसी ऐसे स्थान पर इकट्ठे हो जाते जहां शत्रु के लिए पहुंचना कठिन होता था। वे कभी-कभी रात के समय छावनी पर छापा मारते; ऐसे आक्रमणों की आकस्मिकता अस्त-व्यस्त और अप्रशिक्षित विरोधी सैनिकों में भय उत्पन्न कर देती थी; परन्तु, जहां तक बन पड़ता, वे शत्रु से सीधी मुठभेड़ को टालते ही रहते थे और उन गांवों में लूटपाट मचा कर उनको तंग करते रहते थे जिनके वे हिमायती बने हुए थे। इसी बीच में गायकवाड़ के अधिकारी उनकी खबर मंगवाते और कोलियों तथा उनके परिवारों को पकड़ मंगाने की कोशिशें करते। वे शत्रु को रसद मिलने के सभी साधनों में भी रुकावटें डालते थे और उनकी सहायता करने वालों को दण्ड देते थे। यदि यह प्रतिरोध सफल हो जाता तो कोली लोग बहुत समय तक महुड़ा के फूलों अथवा अन्य खाने योग्य वनस्पति पर ही गुजारा करके रह जाते थे, परन्तु धीरे-धीरे उनके साथी गांवों में लौट आते इसलिए उनका जत्था हल्का पड़ जाता और केवल थोड़े से

अत्यन्त विश्वासी साथी ही ठाकुर के पास जंगल में रह जाते थे। इस प्रकार वे बहुत समय तक मरहठों के हमलों से बचते रहते या उनकी उपेक्षा करते रहते और अन्त में किसी समझौते अथवा आत्म-समर्पण के द्वारा अपने गांवों में वापस लौट जाते थे। ऐसे भी बहुत से उदाहरण मिलते हैं कि कोलियों के साथ झगड़े में कई बार गायकवाड़ को नुकसान उठाना पड़ा।

आंबलियारा गांव केवल एक ओर से ही वन की पट्टी और सूखी झाड़ियों से रक्षित था परन्तु फिर भी सात हजार आदमियों के घेरे के विरुद्ध छः मास तक डटा रहा। अन्त में, छापा मार कर गांव ले लिया गया परन्तु कुछ कोली बाद में सम्हल कर एकत्रित हो गये और आक्रमणकारी घबरा कर भाग गये तथा अपनी बन्दूकें व चार मुख्य अधिकारियों को भी खेत में ही छोड़ गए। दूसरे मौके पर लोहार के लगभग एक हजार मनुष्य गायकवाड़ की दस हजार सेना को अपने पीछे वात्रक नदी के पेटे में लम्बे और गहरे भागों में ले गये और वहां दूसरे किनारे पर कुछ लोगों ने उनका सामना करने का-सा अभिनय किया तथा पीछे से गोलाबारी शुरू कर दी गई। तब वह पूरी सेना भाग खड़ी हुई और उसका मुखिया बाबाजी आपाजी भी बड़ी कठिनाई से अपने तेज घोड़े के कारण उस संकट में से बच कर निकल सका।

जब राजपूतों के साथ ऐसा प्रसंग आता तो वे हमेशा अपने गांवों की रक्षा करते। साबरमती के किनारे गहरे और विशाल नालों के पास करोड़ नामक गांव है; उस पर गायकवाड़ की फौजों ने बहुत-से हमले किये परन्तु हर बार उनको घेरा उठाकर पीछे हटना पड़ा। राजपूत लोग कभी-कभी, परन्तु बहुत कम, 'परभारी' (किराये के) अन्य जातीय सिपाहियों को भी नियुक्त कर लेते थे और कोलियों को तो प्रायः आमन्त्रित करते ही थे, परन्तु कोली कभी किसी अन्य जाति से सहायता नहीं माँगते थे।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में मरहठों की शक्ति महीकांठा में अपनी चरम-सीमा पर पहुंच चुकी थी; उस समय शिवराम गार्दी,[3] जिसके विषय में पहले लिखा

---

3. शिवराम गार्दी दामाजी गायकवाड़ का अधिकारी था; उसने 1793–94 में मुल्कगीरी का काम शुरू किया था और अधिक से अधिक रकम वसूल करने की तरकीबों में माहिर हो गया था। बढ़ी हुई रकमों को वसूल करने में वह बहुत सख्ती बरतता था। वह कड़ी के जागीरदार मल्हारराव की सेना में 700 हिन्दुस्तानी सिपाहियों का सरदार था। यह वही मल्हारराव था, जिसने गोविन्दराव गायकवाड़ की मृत्यु (1800 ई०) के बाद बड़ोदा में अशान्ति उत्पन्न कर दी थी और जिसका मेजर वॉकर ने 1802 ई. में दमन किया।
—बाम्बे गजेटियर, जि. 7 (बड़ोदा), पृ. 204–5, 317 और प्रकरण 4.

जा चुका है, प्रशिक्षित सैनिकों का आदेशक था और इस प्रान्त का वन्दोवस्त करने के लिए तैनात किया गया था। फतहसिंह की मृत्यु के उपरान्त गायकवाड़ सरकार में गड़बड़ी फैल गई और शिवराम की सफलताओं का प्रभाव वहुत कुछ नष्ट हो गया परन्तु 1804 ई० के लगभग रावजी आपाजी के चचेरे भाई रघुनाथ महीपतराव (काकाजी) ने पूर्ण व्यवस्था का पुनः संस्थापन किया और तव से, यद्यपि कहीं-कहीं गायकवाड़ सेना को पराभव का सामना करना पड़ा फिर भी उसके मार्ग में सामान्यतया कहीं भी रोक पैदा नहीं हुई। ब्रिटिश सरकार ने पहले पहल 1813 ई० से महीकांठा के मामले में दखलअन्दाजी शुरू की थी; उस समय मेजर वैलेन्टाइन ने कर्नल वॉकर द्वारा योग्यता पूर्वक निर्धारित रीति का ही अनुसरण किया और गायकवाड़ सरकार की तरफ से इस प्रान्त के सभी कर-दाता ठाकुरों के साथ ठहराव कायम किये। परन्तु, न जाने कोई भूल कैसे हो गई कि ये अनुवन्ध न तो वाद मे अमल में आये और न इन्हें कभी रद्द ही किया गया। इसके वाद ही, महीकांठा परगना गायकवाड़ सरकार के एक अफसर वच्चा जमादार के हवाले कर दिया गया। वह वड़ी भारी फौज रखता था और वड़ी लगन के साथ मरहठा सत्ता का निर्वाह करता था। उसने ठाकुरों से वसूल होने वाले खिराज की आमदनी को वहुत वढ़ा दिया था और खुला विद्रोह करने वालों को पूर्णतया दण्डित करता था; परन्तु, वह लूटपाट को रोकने में असफल रहा। कोलियों द्वारा ब्रिटिश जिलों में जो धावे किये जाते थे उनकी खुली शिकायतें निरन्तर गला फाड़-फाड़ कर की जाने लगीं। 1818 ई० में जमादार की सेना का अधिकतम भाग अन्य प्रदेशों में सहायतार्थ भेजने के लिए वुला लिया गया और वाद में सम्पूर्ण मरहठा सेना को वहां से हटा लेने के कारण महीकांठा प्रान्त अपनी पूर्व अव्यवस्थित स्थिति को प्राप्त हो गया। तीन वर्ष वाद, तत्कालीन वम्बई सरकार के कर्णधार (गवर्नर) मिस्टर एल्फिन्स्टन ने महीकांठा का दौरा किया और उसी के निर्देश से इस प्रान्त में ब्रिटिश एजेन्सी कायम की गई जिससे वड़ोदा सरकार का खिराज शान्तिपूर्वक वसूल किया जा सके और प्रान्त में व्यवस्था की स्थापना हो सके।[4]



4. वाम्बे गजेटियर, भा. 5, परिशिष्ट 'ए', पृ. 443 पर मिस्टर एल्फिन्स्टन की महीकांठा पर टिप्पणी पढ़िये।

प्रकरण दसवाँ

ईडर के महाराजा
आनन्दसिंह-शिवसिंह-भवानीसिंह एवं गम्भीरसिंह

जोधपुर के राजा अजीतसिंह के विषय में ईडर के भाटों का कहना है कि वह बहुत विख्यात हो गया था। उसने (दिल्ली में) सात शाहजादों को तख्त पर बैठाया और वापस उतार दिया। अन्त में, उसने मोहम्मद शाह[1] को तख्तनशीन किया। सात दिन तक दिल्ली में अजीतसिंह की दुहाई फिरी और पांच बड़े-बड़े राजा उसकी शरण में आ गए- वे जयपुर, जैसलमेर, बहावलपुर, सिरोही और सीकर के राजा थे। बादशाह की तख्तनशीनी के बाद अजीतसिंह तीन वर्ष दिल्ली रहा और फिर कुंअर अभयसिंह को पांच हजार घुड़सवारों सहित शाही सेवा में छोड़ कर स्वयं जोधपुर चला गया।

एक दिन बादशाह अभयसिंह को यमुना में नौकाविहार के लिए अपने साथ ले गया। नाव मझधार में पहुंची तो बादशाह ने हुक्म दिया कि कुंअर को उठा कर नदी में फेंक दिया जाय। अभयसिंह ने इसका कारण पूछा तो बादशाह ने कहा, 'अपने भाई बखतसिंह को लिखो कि वह अपने पिता का वध कर दे।" तब अभयसिंह ने भण्डारी रघुनाथ से बखतसिंह के नाम पत्र लिखवाया कि 'यदि तुम अजीतसिंह को तुरन्त मार डालोगे तो तुमको नागौर दे दिया जाएगा।' जब यह पत्र बखतसिंह के पास पहुंचा तो उसने आधीरात में अपने पिता का काम तमाम कर दिया।[2] रानियां सती

1. फ़रुखशियर के बाद मोहम्मद शाह सन् 1719 में गद्दी पर बैठा था। उससे पहले कई कठपुतली बादशाह तख्त पर बैठे जिनमें से कुछ ने तो कुछ सप्ताह ही राज्य किया।
2. इस कथा को बिस्तार से पढ़ने के लिए टॉडकृत 'राजस्थान' (1920 ई० संस्करण) भा. 2; पृ० 1028, देखना चाहिए।
   महाराजा अजीतसिंह का स्वर्गवास आषाढ़ कृष्णा 13, संवत् 1780 को हुआ था। -टॉडकृत 'राजस्थान', पृ० 1029
   मिस्टर विलियम इरबिन ने अपनी 'लेटर मुगल्स' नामक पुस्तक में मुसलमान इतिहासकार मुहम्मद हादी कामवर खां लिखित 'तज़किरात उस्सलातीन-ए-

→

होने को तैयार हुई; वे अपने साथ अभयसिंह के छोटे भाइयों- आनन्दसिंह, रायसिंह और किशोरसिंह को भी ले गईं कि जिससे, जोधपुर के रिवाज के अनुसार उनकी आंखें न निकाल ली जावें। जोधपुर के राजाओं का दाहस्थान मंडोवर में था। जब रानियां वहां पहुंची तो उन्होने कुंअरों को सरदारों के हवाले कर दिया। रायसिंह और आनन्द-सिंह तो चौहान रानी के पुत्र थे और किशोरसिंह भटियानी रानी का। चौहान सरदार मानसिंह और देवीदास तथा मानसिंह के कुंअर जोदावरसिंह ने इन राजकुमारों को सम्हाला। इन चौहानों के पास रोहीचा की जागीर का एक लाख का पट्टा था जिसको छोड़कर और राजकुमारों को साथ लेकर वे जोधपुर से पूर्व में पन्द्रह कोस पर चांदेला नामक गांव में चले गए। मारवाड़ मे वडौद का ठाकुर मोहकमसिंह दस हजार रुपये का पटावत था। वखतसिंह ने उसको आज्ञा दी की वह राजकुमारों और चौहानों का पीछा करके उनका वध कर दे या उन्हें जिन्दा पकड़ लाए। इस आज्ञा का पालन करने के लिए वह आठ सौ घुड़सवार साथ लेकर चान्देला रवाना हुआ। उसका आगमन सुनकर वे तीनों सरदार कमर कस कर वैठ गए और मन्त्रणा करने लगे; वारह सौ सवार उनकी रक्षा के लिए चारों ओर खड़े थे। मोहकमसिंह उनके डेरे पर जाकर घोड़े पर से उतरा और उसने कुंअरों को मांगा। मानसिंह ने कहा "मुझे इन कुंअरों को सतियों ने सौंपा है, उसी तरह अब मैं मोहकमसिंह! तुम्हें सौंपता हूँ।" यह कहते हुए उसने एक कटार भी प्रस्तुत कर दी और फिर कहा "लो, यदि तुम इन्हें मारना ही चाहते हो तो अभी मार डालो।" यह सुनकर मोहकमसिंह ने कहा "ठाकुर, तुमने खूब किया, तुमने तो मुझे भी अपने साथ मिला लिया। अब तो, जो गति तुम्हारी होगी वही मेरी भी होगी, चलो।" इसके वाद ये चारों सरदार मारवाड़ में अड़ावला पर्वत में चले गए और वागी हो गए। उन्होंने अपने परिवारों को वीकानेर के देशनोक नामक चारणों के गांव में करणीमाता की शरण में छोड़ दिया- यह माता शरणागतों की रक्षा करने में वहुत समर्थ है।[3]

इस घटना से पहले ही मुणाला के पटायत चांपावत सवाई सिंह, मानसिंह और जीवणदास का महाराजा अजीतसिंह से झगड़ा हो गया था, इसलिए उनका सत्तर हजार का पट्टा जव्त कर लिया गया था। वे लोग भी वहां से निकल कर वागी हो कर अड़ावला में चले गये थे; उनके परिवार के लोग भी करणी माता की शरण में ही रहते थे। उन्ही दिनों उन्होंने वादशाह के खजाने को लूट लिया जो अजमेर से

चगताई', के आधार पर लिखा है कि वखतसिंह द्वारा अजीतसिंह का वध इसलिए हुआ कि दिल्ली से लौटकर अजीतसिंह अपने मध्यम पुत्र वखतसिंह की स्त्री से प्रेम करने लगा था। - देखिए 'लेटरमुगलस' - प्रकरण-7, भाग29; पृष्ठ 114-117-अनु०

3. कच्छ में माता की तूंबड़ी नामक गांव है; वहां कोई अपराधी जाता है तो अभय हो जाता है; ऐसी मान्यता अव तक चली आती है। गु० अ०

दिल्ली ले जाया जा रहा था। जब राजकुमार अड़ावला पहुँचे तो चांपावतों ने वह खज़ाना अपनी सेवा सहित उनको समर्पित कर दिया। कुंअर आनन्दसिंह ने उनकी बात मान ली और मोहकमसिंह जोधा, मानसिंह चौहान और प्रतापसिंह चांपावत, इन तीनों से प्रतिज्ञा की कि उनकी स्वामिभक्ति के उपलक्ष में राज्य प्राप्त होने पर पट्टा प्रदान किया जावेगा। तदनन्तर कुंअर और उनके साथी मारवाड़ पर छापे मारने लगे और यह कहावत तो अब तक प्रचलित है कि मानसिंह चौहान ने मरूभूमि को इस तरह मथ डाला जैसे देवताओं ने समुद्र-मन्थन किया था- 'मरू धरा मथी दधि जेम माने'।

जब अभयसिंह ने बादशाह के डर से बखतसिंह को अपने पिता का वध करने को पत्र लिख दिया तो बादशाह नें उसको नौ मोहरों वाला पट्टा करके ईडर का परगना बख्श दिया। अभयसिंह का कुलपुरोहित जग्गूजी वह पट्टा लेकर दिल्ली से जोधपुर जा रहा था, तभी बागियों ने उसे पकड़ लिया और अड़ावला ले गए। तब उस ब्राह्मण ने उनको ईडर का पट्टा अभयसिंह के नाम बख्शीश हो जाने का हाल कहा और शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की कि यदि वे उसे दिल्ली चले जाने देंगे तो वह पट्टा वापस आकर उनको दे देगा। उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उसने अभयसिंह के पास जाकर कहा कि उसके भाई मारवाड़ को लूटकर बरबाद कर रहे थे इसलिए जोधपुर के बाईस परगनों में से एक की एवज ईडर का पट्टा उनको दे दिया जाए। अभयसिंह ने पट्टा उसको दे दिया और वह अड़ावला लौट गया।

उस समय, संवत् 1785 (1729 ई.)[4] में ऊदावत लालसिंह, जो बोरसद के नवाब के यहां तीन सौ सवारों के साथ नौकरी देता था, छुट्टी में मारवाड़ जा

---

4. मेजर माइल्स उस समय महीकांठा का राजनीतिक अधिकारी था। उसकी 21 सितम्बर, 1821 ई. की टिप्पणी का कुछ अंश इस प्रकार है—

संवत् 1785 में जोधपुर के राजा के भाई आनन्दसिंह और रायसिंह ने वाण और पालनपुर के कुछ घुड़सवारों और गड़वाड़ा के कोलियों को साथ लेकर ईडर पर अधिकार कर लिया। इसके लिए उन्हें अधिक कठिनाई भी नहीं भोगनी पड़ी। कहते हैं कि उनके पास दिल्ली से प्राप्त आज्ञा पत्र था, परन्तु सच्ची बात तो यह लगती है कि इस प्रदेश की दशा देख कर ही वे इधर आए और यह भी सम्भव है कि मारवाड़ के राजाओं ने भी, जो उसी समय अहमदाबाद की सूबेदारी पर थे, उनकी इमदाद की हो। कुछ वर्षों बाद, ऊपर जिन देसाईयों का जिक्र आया है (और जिनको ईडर पर कब्जा करने के बाद मुरादबख्श ने वहां सुरक्षार्थ नियुक्त किया था) उनको मारवाड़ियों ने निकाल दिया तब उन्हीं के द्वारा प्रेरित हो कर दामाजी गायकवाड़ के पास रहा हुआ बच्चाजी देवाजी नामक एक अधिकारी पेशवा की तरफ से ईडर पर अधिकार करने को भेजा

→

रहा था। ईडर पहुंच कर उसने रमणेश्वर सरोवर पर डेरा किया। उसी समय देसाई उनसे मिलने आए और उन्होंने ईडर का स्वामी बन जाने का प्रस्ताव किया। नाहरसिंह ने कहा 'बादशाह ने ईडर अभयसिंह को बख्श दिया है इसलिए मैं तो इसे ले नहीं सकता. परन्तु आनन्दसिंह और महाराजा के अन्य भाईयों को ले आता हूं जो आजकल बाहरवाट हो रहे हैं।' देसाईयों ने यह बात मान ली और उसने अड़ाथला में जाकर सभी वृत्तान्त कह सुनाया। इस बीच में जेठावत उदेरामजी और कूंपावत अमरसिंह भी राजकुमारों की सेवा में आ गए थे इसलिए अब वे पांच हजार सवार साथ लेकर रोहीड़ा के घाटे की तरफ रवाना हुए जो सिरोही प्रान्त में हो कर ईडर का रास्ता है। पोसीना के वाघेला ठाकुर ने, जो राव[5] का पटावत था, घाटा रोक लिया और कहा 'मैं राजकुंअरों को आगे नहीं जाने दूंगा क्योंकि रावजी ने अभी तक ईडर पर अपने अधिकार का दावा छोड़ नहीं दिया है।' अन्त में, इस बात पर समझौता हुआ कि आनन्द सिंह उस ठाकुर की पुत्री से विवाह कर लें और पोल के राव से प्राप्त जागीर के अतिरिक्त बारह गांवों का पट्टा भी वाघेला को दें। इसके अनुसार धनाल के गांव उस ठाकुर के हवाले किये गये और आनन्दसिंह ने उसकी पुत्री से विवाह कर लिया तब सेना पोसीना पहुंची। राजकुमारों ने उसी स्थान पर देसाईयों को बुलाया और उनसे सभी बातें तय हो गईं तब सेना ईडर की ओर बढ़ी और फागुन सुदि 7, संवत् 1787 (1731 ई.) के दिन वहां प्रवेश किया। उसी

गया और वह भूतपूर्व राव का सेवक रह कर राजपूतों की सहायता से सफल भी हुआ। ईडर पुनः प्राप्त करने के झगड़े में आनन्दसिंह संवत् 1809 (1753ई.) के लगभग मारा गया और बच्चा जी अपनी सेना का कुछ भाग वहां छोड़ कर अहमदाबाद लौट गया। तब रायसिंह ने पुनः सेना एकत्रित की और ईडर पर अधिकार कर लिया। वह संवत् 1822 (1766 ई.) में मर गया। शिवसिंह अपने पिता की गद्दी पर बैठा और कहते हैं कि उसने चालीस वर्ष राज्य किया। शिवसिंह के पांच पुत्र थे—भवानीसिंह (या लाल जी) उसके बाद राजा हुआ; संग्रामसिंह को अहमदनगर का पट्टा मिला; जालिम सिंह को मोड़ासा प्राप्त हुआ :, इन्दर सिंह को कोई जागीरी नहीं मिली; और अमर सिंह को गोरवाड़ का पट्टा मिला। अपने पिता की मृत्यु के बाद भवानीसिंह ने केवल एक मास ही राज्य किया और उसके बाद उसका पुत्र गम्भीर सिंह संवत् 1849 (1793ई.) में गद्दी पर बैठा, जो वर्तमान राजा है; गम्भीर सिंह के एक पुत्र है जिसका नाम उम्मेद सिंह (या लालजी) है और उसकी अवस्था 20 वर्ष के लगभग है।

5. यह ईडर का राव बच्चा पण्डित था, जिसके विषय में भाग 2, प्रकरण 10 में लिखा जा चुका है। कथासूत्र को पकड़ने के लिए पाठकों को उसे पढ़ना चाहिए।

वर्ष महाराजा अभयसिंह अहमदाबाद आए थे। बाद में, अभयसिंह और ईडर के महाराजाओं में मेल हो गया और उसने उनके लिए ईडर का पट्टा ही दिल्ली से प्राप्त नहीं किया वरन् बीजापुर और परांतीज के पट्टे भी उन्हीं को दिला दिये। जब तक अभयसिंह रहा ईडरवालों को अहमदाबाद में कोई रकम नहीं जमा करानी पड़ी।[6]

---

6. यहां मूल लेखक (फार्व्स) ने टॉडकृत 'राजस्थान' भा. 3 पृ. 1828 से महाराजा जयसिंह (जयपुर) का महाराणा संग्रामसिंह के नाम एक पत्र उद्धृत करके संदेह प्रकट किया है कि इस पत्र से वास्तविकता की संगति नहीं बैठती। गुजराती अनुवादक ने भी उस पत्र का अनुवाद ही दिया है।

'वीर विनोद' में इस प्रसंग से सम्बद्ध चार पत्र मिलते हैं जो महाराजा जयसिंह और महाराजा अभयसिंह ने उदयपुर के महाराणा संग्राम सिंह को लिखे थे। इनसे वास्तविकता जानने में सहायता मिलेगी इसलिए हम यहां उन्हें उद्धृत कर रहे हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि वीरविनोद के कर्ता कविराज श्यामल दास ने उदयपुर के पुरालेखों को प्रत्यक्ष देख कर इतिहास लिखा है अतः ये पत्र अधिक प्रामाणिक और मूल के परिचायक हैं—अनु.

महाराजा सवाई जयसिंह का खरीतह

श्रीरांमजी

सीतारांमजी

सिध श्री महाराजाधिराज महारांणा श्री संग्रामस्यंघ जी जोग्य, लिषतं राजा जयस्यंघ केन मुजरो अवधारिज्यो, अैठा का स्मांचार श्री जी की क्रिपा सौं भला छै, आपका सदा भला चाहजे, अप्रंच आप वड़ा छो, हिंदुस्थान में सरदार छो, अैठा-बैठाका व्यौहार में कहीं वात जुदायगी न छै, अैठै घोड़ा रजपूतछै सो आपका कामनै छै, इं त्रफ कामकाज होय सो लिषावता रहोला; अर ऊदेपुर मैं म्हे आपकी हजूरि छा तब आप म्हांने या वात फुरमाई छी, जो मेवाड तो घर छै अर ईडर मेवाड़ को आंगण छै, इं का लेवा को तलास रषावोला; सो वैं ही दिन सौ म्हे तलास में छा; अर अब भी ई कांम के वास्तै मयारांम ऊकील नै आपको लिष्यो आयो, सो दलपत राय म्हांने वजंनसि वंचायो; ती परि म्हे महाराजा अभैस्यंघजी ने समझाय व्योरो कह्यौ, सो यां भी कबुल करी, अर प्रगनो ईडर को आपकी नजरि कीयो, सो पत यांको ईही मतलब को लिषाय भेज्यौ छै, सो पहुंचैलो, अर महाराजा अभैस्यंघ जी या अरज करी छै, जो आप जतन असो करावोला, अणांदस्यंघ वैंठासौं जीवतो नीकलै नहीं, मार्यौ ही जाय, वैने मार्यां विना राजको वंदवसत कठण छै; सो यांका राजका वंदवसत को तो फिकर आपने छै ही, तीस्यौ म्हे भी या ही अरज करां छां, प्रथम तो ई कांम के वास्तै श्री

महाराजा आनन्दसिंह ईडर आए उसके दो वर्ष बाद भाइयों के विद्रोह के कारण बोरसद का नवाब भाग कर उनकी शरण में आया। महाराजा ने अपने

दीवांण ही पधारै, अर जो कदाचि आपका पधारिवा की सलाह न होय, तो धायभाई नगनै हुकंम होय, वो आछी फोजसों जाय, अर पैहली तो नांका-बंदी करि ले, जैठा पाछै वैनै मारै; भाग जावा न पावै ईं बात को घणो जतन रषावै कागद समाचार लिषावता रहोला, मिती आसाढ़ वदि 7 संवत 1784.

पांनों दुजो

रांमजी

प्रगनु ईडर महाराजा अभैस्यंघजी की जागीरमैं छै, जेतो तो या आपकी नजरि ही कीयो छै, अर जो क़दाचि ओर कही की जागीर मैं हो जाय, तो जमाव वैठा को असो करावैला, अमल सरकार ही को रहेवो करै, और मनसब दार अमल करवा न पावै, मिती असाढ़ वदि 8 संवत 1784.

आड़ी सतरों में महाराजा जयसिंह के हाथ का लिखा हुआ।

श्री दीवांणजी सो मारो मुजरो मालुमव्है, अप्र हुं श्री दीवांण की हजुरी छो, जदी आप हुकम कीयो छो, जो इडर तो आगण छै अर छपन घर छे, सो इने लीयो चाहिजे; सो म्हारो इको तलास वहोत छो, सो अब यो काम श्री दीवाण का प्रताप सो हुओ,

महाराजा अभयसिंह के कागज की नकल जो महाराजा जयसिंह के कागज के साथ भेजा गया था।

॥ श्री परमेसरजी सत छै.

॥ स्वस्ति श्री महाराजाधिराज महारांणा श्री संग्रामसिंघ जी जोग्य, राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा श्री अभैसिंघजी लिषावतं मुजरो वाचजो, अठारा समाचार भला छै, राजरा सदा भला चाहीजै, राज ठाकुर छो. वडा छो, सदा हेत मया राषो छो, तिणथी वीसेष रषावजो. अठा सारषो कांमकाज हुवै सु हमेसां लिषावजो, अठे राजरो घर छे, जुदागी कीण बात दीसा न जांणे, अठे घोड़ा रजपुत छे, सु राजरे कांमनु छै.

अप्रंच प्रगनो ईडर म्हे राजनु दीयो छै, राज ऊठारो भली भांत जाव्तो करावजो, ने राज ईजारे मुकाते दीमा लिषीयो थो, सु आ कीसी बात छै, ईडर राजरी नीजर छै; तथा अगणदसीध नें रायसीन हरांमपोर छे, तीणां नु फोज मेलने मरात्र नापजो; म्हारी ईण बात मु रजामंदी छै, राज ईण बात रो आंधो कदावजो मती, संवत 1783 रा असाढ वदी 7 म ॥ फरीदाबाद.

→

सरदारों से सलाह करके अपने दोनों भाइयों के साथ चांपावत सवाईसिंह, प्रतापसिंह, जोधा मोहकमसिंह, जेठावत उदैरामजी, चांपावत जीवणदास और कुंअर जोरावर

महाराजा अभयसिंह के हाथ से लिखी सतरें

म्हारो मुजरो मालुम हुवे, श्री दीवांण अणदसींघ, रायसींघ नु मराय नाषसी या वात जरूर।

महाराजा जयसिंह और महाराजा अभयसिंह दोनों के पत्र साथ ही लिखे गए थे परन्तु इनके संवत् में अन्तर है। वीर-विनोद के लेखक का मत है कि महाराजा जयसिंह का पत्र चैत्रादि संवत् के आधार पर है और म. अभयसिंह का श्रावणादि के आधार पर।

इस पत्र व्यवहार के वाद महाराणा की ओर से भींडर के जैतसिंह और धायभाई नगराज ने ईडर पर चढ़ाई की तथा आनन्दसिंह और रायसिंह को पकड़ कर उदयपुर ले आए। महाराणा ने इन दोनों को अपने पास रखा। महाराजा अभयसिंह इससे सन्तुष्ट नहीं हुए, तव उन्होंने दूसरा पत्र महाराणा को लिखा जो इस प्रकार है—

॥ श्री परमेसरजी स्त छै.

॥ स्वस्ति श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्राम सिंघ जी जोग्य, राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा श्री अभैसिंह जी लिपावतं मुजरो वांचजो, अठा रा समाचार भला छै, राज रा सदा भला चाहीजै, राज वडा छो, सदा हेत मया रापो छो तिण था विसेष रषावजो, अठा सारीषो काम काज हुवै सु हमेसां लिपावजो, अठै राजरो घर छै, जुदायगी कीणी वात दीसा न जांणै, अठै घोडा रजपुत छै सो राज रै कामनु छै। अप्रंच अणंदसिंघ रायसिंघ री वात राज ठैहराय नै ऊदैपुर बुलाया, सु आछां कीयो, आ वात राज रै हीज करणरी थी; हीमै यानु पटौ भावै रोजीनो दीराय नें राज कनै रपावसी; ईडर रो एक पेत ही ईणांनु न दीरावेला, ईडर राजरै रपावजो, दरवार रै मुतसदीयांनु हुकम हुवो छै, सो ईडर रै ईजारैरो टको हीमार राज रै मुतसदीयां कनै मांगै कोई नहीं, सु राज हरगीज ईडर रो एक पेत ही ऊणांनु दीरावो मत, और हकीकत पं॥ रायचंद अरज करसी संवत 1785 रा भाद्रवा वदी 2 मु ॥ जहांनावाद.

इसके साथ ही महाराजा अभयसिंह ने महाराजा जयसिंह से वात की होगी क्योंकि वे इस मामले में मध्यस्थ थे। उन्होंने भी महाराणा के नाम पुनः पत्र लिखा जो इस प्रकार है—

श्री राम जी

श्री सीतारांम जी

॥ सिधि श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्रामस्यंघ जी जोग्य, लिपतं राजा सवाई जैस्यंघ केन्य मुजरो अववारिज्यो, अंठा का समाचार श्री जी की

सिंह को दो हजार सेना लेकर वोरसद पर भेजा। वहां पर घमासान युद्ध हुआ और किले पर से तोपें निरन्तर चलती रहीं इसलिए दस दिन तक वह नहीं लिया जा सका। अन्त में वोरसद के कारभारी ने आकर दुर्ग के दरवाजे खोल दिए। इस घेरे में कुंअर जोरावरसिंह के दो या तीन तलवार के घाव लगे और पचास मारवाड़ी मारे गए, लगभग इतने ही आदमी विपक्षियों के भी खेत रहे। जब नवाब को पुनः गद्दी पर बिठाया गया तो उसने महाराजा रायसिंह से कहा "जब तक मेरा पूरा अधिकार न जम जाय आप मेरे साथ रहिए।" इसलिए रायसिंह वहां पर आठ महीने तक रहा।[7]

उन्हीं दिनों रावजी ने पोसीना के वाघेला को छोड़कर अपने अन्य सभी सरदारों को एकत्रित किया, उनमें रहवर, रणासण के ठाकुर उदेसिंह, मोनपुर, सरदोई, रूपाल और पोरवाड़ा के सभी ठाकुर व आसपास के भोमिये थे। उन सभी सरदारों ने प्रतिज्ञा की कि रावजी के लिए जा कर लड़ेंगे और जहां तक बन पड़ेगा ईडर लेकर रहेंगे। वे देशोतर गए; वहां डाभी राजपूतों के पांच सौ घर थे। वहां से वे लोग ईडर की ओर बढ़े। उस समय ईडर में कसवाती मुसलमानों का बहुत जोर था। उनकी दो कौमें थीं, एक नायक और दूसरी भाटी (दोनों के मिलाकर करीब पन्द्रह सौ घर थे); ईडर के दरवाजों और तोपखानों की कुंजियां उन्हीं के पास रहती थीं।

त्रिपा सो भलां छै, आपका सदा भला चाहिज्ये, अप्रंचि आप वड़ा छो, हिंदसथांन में सरदार छो, अैठा वैठा का व्योहार में कई बात जुदायगी न छै, अैठै घोड़ा रजपुत छै, सो आपका कांमनै छै, ई तरफ कांमकाज होय सो लीपावता रहोला, ओर राजा वपतसींघजी वा फोज म्हांकी अणंदसींघ, रायसींघ ऊपरि गई छी, सो हीरदै नारायण तो आय मील्यो, अर अणंदसीघ रायसींघ ईं भांति ठाहरी, जो एतो दोन्यों ऊदैपुर श्री दीवांण की हजूरि रहबो करै, कहींठे जाय नहीं, अर ईडर का पड़गनां का जो गांव श्री दीवांण की हद की त्रफ छै, सो तो श्री दीवांण के रहे, अर कसवो ईडर वा ओर गांव अणंदसींघ रायसींघ नैं दीज्यै, सो अब अणंदसींघ, रायसींघ श्री दीवांण की हजूर आवै छै, सो यांकी तसल्ली फरमावैला, अर नीसां ले हजूर रापैला, अर ईडर की सीवाय गांम आपकी हदकी त्रफ की सनदि करि देवा को मुतसद्यां ने हुकंम फरमावैला जी, ओर कागद समाचार लीपावता रहोला, मीती भादवा वदी 13 संवत 1785.

7. भाटों ने कुछ मुख्य घटनाओं का वर्णन नहीं किया है। सन 1734 ई० में जवांमर्द खां ने ईडर पर आक्रमण किया था परन्तु मल्हार राव होल्कर और राणोजी सिंधिया उस समय मालवा में थे; उनकी सहायता से आनन्दसिंह ने उसको मार भगाया। रायसिंह ने 1741 ई. में अपनी मृत्यु से एक वर्ष पूर्व गुजरात के सूबेदार मोमिन खां से सन्धि की थी।

महाराजा आनन्दसिंह के साथ केवल दो ही सरदार रह गए, कूंपावत अमरसिंह और चौहान देवीसिंह; इन सरदारों व अपने जनाने के साथ वह पहाड़ी पर किले में चला गया परन्तु जब वहां भी अधिक सुरक्षा न दिखाई पड़ी तो उसने स्त्रियों को तो उन सरदारों के साथ किले के पश्चिम द्वार से निकाल कर रवाना कर दिया और स्वयं मुख्य द्वार से, जो नगर की ओर था, इस आशा से निकला कि वह अपने परिवार से जा मिलेगा। महाराजा के साथ बहुत थोड़े घुड़सवार थे और वे भी बिखरे हुए थे। उसी समय उसने कुछ रहवर सवारों की टोली को आते हुए देखा तो नौबत बजाने की आज्ञा दी कि उसकी आवाज सुनकर साथ के सवार इकट्ठे हो जावें। तब नक्कारची ने निवेदन किया कि नक्कारे की आवाज सुन कर रहवर तो सीधे आ पहुँचेंगे परन्तु महाराजा के सवार बहुत दूर होने से समय रहते नहीं पहुंच सकेंगे। परन्तु, आनन्दसिंह ने ताव में आकर पुनः वही आज्ञा दी और तुरन्त ही नौबत बजने लगी। रहवर सवारों ने लपक कर महाराजा की छोटी सी टोली को जा घेरा और लड़ाई शुरू हो गई। महाराजा की ओर के योद्धाओं में से पहले देवीसिंह चौहान गिरा, फिर अमरसिंह कूंपावत घायल हुआ; रामदान नक्कारची मारा गया। महाराजा का घोड़ा उसकी सवारी में ही मारा गया और अन्त में वह स्वयं भी रण में काम आया। उसके साथियों में से बहुत थोड़े ही बच पाये और अन्त में रहवरों ने ईडर का किला अपने अधीन कर लिया।

गीत[8]

अखत उछल वाण, केवाण के आरती
संबल गज गाइ विवाह सामो।
आणंद महाराजा गढ़ परणते ईडरे,
मदेहद जान देविदान मामो॥ 1
दुगांणी चुकावतां घाव दूणा दियो,
भाण ने सारथी कहे भालो।
इन्द्र ज्युं विंद अजमाल सुत ओपियो,
वींदरी ढाल फतमालवालो॥ 2

---

8. कवि ने विवाह का रूपक बांधा है—

जब महाराजा आनन्दसिंह ईडरगढ़ पर अप्सरा से विवाह करने को तैयार हुआ तो वाण रूपी अक्षत उछले, तलवारों से आरती हुई, सबल हाथी सामने आए और जान में (बरात में) मुख्य का स्थान मामा देवीदान ने लिया॥ 1॥

सबका नेग चुकाते समय उसने दोगुने घाव देकर सबके दावे चुकाये; उस समय सूर्य के सारथी ने कहा, ',देखो, अजमाल (अजीतसिंह) का पुत्र आज बींद (दूल्हा) बनकर इन्द्र के समान शोभित हो रहा है और फतमाल का पुत्र (देवीदान) उस बींद की ढाल बना हुआ है॥ 2॥ →

सिधुवा राग गवरीजतां शोहला,
धीर रण धकावतां पाव धरता ।
थूरता कूरता वहे पीधा थका,
कमध मछरीक अर भीक करता ॥ 3
गडपति सरग भाणेज मामो गया,
फरण गर्भवास रा टाल् फेरा ।
मुह चढे लडेवा आवेया मांडहा,
करां वाखाण चहुंवाण केरा ॥ 4

महाराजा आनन्दसिंह की रानियां सोनिगरी और वाघेली दोनों सिरोही राज्य में रोहीड़ा नामक गांव को लौट गईं और वहां सती हो गईं । उनके साथ ही एक दासी भी जल मरी । उनकी छतरियां आज भी रोहीड़ा में मौजूद हैं ।

जब यह खबर महाराजा रायसिंह के पास वोरसद पहुंची तो उसने ईडर पर चढ़ाई करने की तैयारी की । पहले तो उसने मूनिया नामक गांव में अपना जमाव जमाया और वहां चार महीने रह कर ईडरवाड़ा में लूटपाट करता रहा परन्तु ईडरगढ़ पर आक्रमण करने का उसका दाव नहीं लगा । अन्त में, उसने बीजापुर के केसरीसिंह, दावड़ के अनोपसिंह और दो बारहठों को भेज कर साबरकांठा के ठाकुरों को, जो राव के पक्ष में थे, फोड़ने का खेल रचा । इसके अनुसार बारहठों ने जा कर उन ठाकुरों को इस बात पर राजी कर लिया कि जब लड़ाई हो तो वे अपनी बन्दूकों के थोथे वार करें । अब, रायसिंह मूनिया से बाडोली गया और वहां पर उसने दस हजार (मारवाड़ी) फौज जमा कर ली । नायक और भाटी कसबातियों को भी उसने जागीर और पट्टा देने का लोभ देकर राव का साथ छोड़ देने के लिए राजी कर लिया यद्यपि वे फिर भी यही कहते रहे कि वे नगर की रक्षा करेंगे । इसके बाद रायसिंह ईडर पर चढ़ा और नगर के चारों ओर सेना का घेरा डाल दिया । वह स्वयं, मानसिंह चौहान, कुंअर जोरावरसिंह, जोधा मोहकमसिंह, चांपावत प्रतापसिंह, सवाईसिंह, मानसिंह और जीवनदास के साथ 'मदारशाह की टूंक' नामक पहाड़ी पर चढ़ गया,[9] जहां से ईडर नगर दिखाई देता है । फिर, वहां से वे लोग शहर में उतर गये

सिन्धु राग (युद्ध का राग) में सोहेला गवाते हुए वे धीर युद्ध को आगे बढ़ाते हुए पैर धरते थे, शत्रुओं को कुचलते हुए मदमत्त हाथी के समान (बने हुए) कमध (राठौड़) और मछरीक (चौहान) चल रहे थे ॥ 3 ॥

मुंह चढे (सभी के द्वारा प्रशंसित) लाडले वे मामा और भांजा माढे (चंवरी) पर आये थे परन्तु गर्भवास (जन्म मरण, संसार में आवागमन) के फेरे फिरने की रीति को टालकर वे गढ़पति (सीधे) स्वर्ग में चले गए ॥ 4 ॥

9. उनके साथ 1300 आदमी चढ़े थे । गु. अ.

जहां कसवातियों ने विना सामना किये उनको अन्दर आ जाने दिया। इसके वाद सरदारों ने महाराजा से पूछा 'अव क्या किया जाय ?' तो उसने कहा 'मामा मानसिंह से पूछो, सेना का सरदार तो वही है।" मानसिंह ने सलाह दी कि कसवातियों को मार देना चाहिए जिससे निष्कण्टक राज का उपभोग किया जा सके। अतः मारवाड़ियों ने हमला कर के लगभग एक हजार कसवातियों को मार डाला। वाद में उन्होंने किले पर आक्रमण किया और कुछ रहवरों को मार कर उस पर अधिकार कर लिया। रावजी प्राण वचाकर पोल भाग गया और रहवर भी अपने अपने ठिकाने चले गए। उसने कुल आठ महीने तक ईडर का राज भोगा।

आनन्दसिंह महाराजा का शिवसिंह नामक छः वर्षीय पुत्र था। रायसिंह ने उसी को गद्दी पर विठाया और स्वयं मुसाहव की तरह काम करने लगा।

इसके वाद महाराजा रायसिंह ने रणासन के ठाकुर उदैसिंह पर हमला किया; ज्यों ही वह रवाना हुआ तो एक भील फौज के सामने आकर उससे मिला। उसने कहा, 'ठाकुर तो मर गया है और उसका पुत्र गद्दी पर वैठ गया है।' जव महाराजा ने यह सुना कि उसका शत्रु उसके हाथ से न मारा जाकर अपनी मौत ही मर गया है तो वह वहुत क्रोधित हुआ और उसने खवर लाने वाले को ही तीर से मार डाला। फिर उसने रणासन की तरफ वढ़ कर नगर को घेर लिया। नवयुवक ठाकुर अपने सोलंकी वहनोई के पास लूणावाड़ा भाग गया। महाराजा डेढ़ महीने तक रणासन रहकर लौट आया; उसने जागीर के चौवीसों गांव खालसा कर लिये और वहां पर कुम्भा भाटी के अधीन अपना थाना वैठा दिया। रणासन पांच वर्ष तक ईडर के अधिकार में रहा परन्तु रहवर निरन्तर कुछ न कुछ उपद्रव करते रहते थे इसलिए दशोतर आदि वारह गांव खालसे में रखकर वाकी वारह उनको लौटा दिये गये।

उस समय रहवरों और राठौड़ों में जो युद्ध हुआ उसका गीत इस प्रकार है—

गीत×

निश दिह नगारां धोह मटे नह, धड जोधारा नके घटे;
नत फोजां गजवंध मटे नह, मारूरे ना धंध मटे। 1
आफलते वढते दन आखो, चडते पडते खेत चडे;
पडिया पाखे सांझ न पडशे, पडे घणा तद सांझ पडे। 2

× रात दिन नगाडों का धमकारा (वजना) नहीं मिटता है (वन्द नहीं होता है) परन्तु योद्धाओं के धड़ (समूह, संख्या) कम नहीं हैं। नित्य ही गजपंक्ति वाली सेना में कोई कमी नहीं आती और न मारवाड़ियों का युद्धव्यापार ही मिटता है (अथवा, मारू वाजों की धूमधाम वन्द नहीं होती)॥ 1 ॥

आफलते (उत्साहित होते) और लड़ते हुए ही पूरा दिन वीतता है, वे चढ़ते हैं, पड़ते हैं और रणक्षेत्र में ही वने रहते हैं; किसी के मरे विना सांझ (सन्ध्या) नहीं पड़ती, जव वहुत से मर जाते हैं तभी संध्या होती है॥ 2 ॥ →

दल जुटे जल बोल दह दश, झाफा तीर पाखर रमझोल;
केदि करे मटशे कालो ? धर ईडर घाल्यो धमरोल । 3

आयध भलां के भला अभांझल, सोहण भला के भला सथ;
रेहेवर भला के भला राठवड, हेमर भला के भला हथ । 4

याहां पडे उपडे धमसां, राहां खडे न कांम रडे;
मोह पडे भडे दल सामा, धरती होय न कडे धड़े । 5

शिवसिंह को ईडर में छोड़ कर रायसिंह मोडासा में रहने लगा। वहीं उसने अपने रहने के व जनाने के लिए महल बनवाये। पांच वर्ष वाद, जनकोजी की स्त्री की अध्यक्षता में एक मरहठा सेना पूना से आई और कर मांगने लगी। उस फौज में पन्द्रह हजार सिपाही थे परन्तु रायसिंह ने कर देने से साफ इन्कार कर दिया। फौज की अध्यक्षा ने महाराजा को कहलाया, "सुना है आप बहुत सुन्दर हैं, यदि आप मुझ से आ कर मिलें तो मैं आपको कर माफ कर दूंगी।" रायसिंह ने कहा, "मैं रूपवान तो नहीं हूं परन्तु एक अच्छा तीरन्दाज जरूर हूं।" फिर उसने, विनोद में, उस दूत से कहा, "बोलो, यह जो किले की दीवार के नीचे मरहठा भिश्ती भैंसे पर पखाल ले जा रहा है उसकी पखाल और भैंसा एक ही तीर से बींधा जा सकता है या नहीं ?" यह कह कर उसने तीर चलाया और वह भरी हुई पखाल और पशु दोनों के पार निकल गया। भिश्ती ने दौड़कर लश्कर में बुरी तरह रो पीटकर फरियाद की तो मरहठों ने पूरी ताकत से हमला बोल दिया। किले में केवल एक सौ पचास मारवाड़ी किलेदार ही थे; वे मरते दम तक लड़ते रहे परन्तु रायसिंह ने अपनी स्त्री को अपने पीछे घोड़े पर बिठा कर साफे से अपने शरीर के साथ बांध लिया और वह रायगढ़ के किले में चला गया। अणघड़ नामक खालसा गांव के पास उसने ही यह दुर्ग बनवाया था। वहां दो या तीन दिन रहकर वह ईडर चला गया।

दोनों ओर से जल की तरंगों के समान आ आ कर दल (सेनाएं) जुटते हैं, बहुत से तीरों और पाखरों के टूटने से कोलाहल (रमझोल) मच रहा है; हे काले (कृष्ण) ! ईडर की धरा पर व्याप्त यह धमरोल (उत्पात या बवण्डर) कब मिटेगा ? । 3 ॥

(मैं किसकी प्रशंसा करूं ?) आयुध (शस्त्रास्त्र) भले (अच्छे) हैं या (उनको धारण करने वाले) योद्धा ?, सरदार अच्छे हैं या उनके साथी ?, रहेवर भले हैं या राठौड ? हयवर (घोड़े) अच्छे हैं या हाथी ? (सभी एक से एक बढ़कर हैं) ॥ 4 ॥

जब घमासान मचता है तो त्रास फैल जाता है, रास्ते रुक गए हैं, काम काज बन्द हो गए हैं; सरदार पड़ जाता है तो उसका दल सामने लड़ता है परन्तु यह धरती किसी के हाथ नहीं लगती है ॥ 5 ॥

जब मरहठों ने मोडासा लिया तब जीवणदास चांपावत तो झगड़े में काम आ गया परन्तु उसका भाई प्रतापसिंह घायल होकर खेत में गिर गया। मरहठों ने समझा कि वही महाराजा है इसलिए उसे एक पालकी में डालकर अहमदाबाद ले गए। वहां पर उसे कैद में रखा गया। कुछ समय बाद उसकी फिरौती के लिए उन्होंने अस्सी हजार रुपये मांगे। यह रकम ईडर के खजाने से ऊंटों पर लाद कर अहमदाबाद के लिए रवाना की गई। परन्तु, जब यह लदान पेथापुर पहुंचा तो रास्ते में ही किसी तरह बच कर कैद से निकला हुआ ठाकुर सामने मिल गया और वह उस धन को वापस ईडर ले आया। रायसिंह ने कहा कि यह रकम प्रतापसिंह के निमित्त खजाने से निकाली गई है इसलिये वही इसको रखे। प्रतापसिंह ने कहा, 'जब महाराजा मेरे लिए सब कुछ प्रबन्ध करते हैं तो मुझे धन की क्या आवश्यकता है ?' यह कहकर उसने धन लेने से इन्कार कर दिया। अन्त में, सरदारों ने कह सुन कर निपटारा किया कि आधा धन तो प्रतापसिंह को दे दिया जाय और आधा वापस खजाने में जमा कर दिया जाय।

कवि कहता है कि संवत् 1797 (1741 ई.) में महाराजा ने अपने साथियों को पट्टे दिये। मूंडेटी का पट्टा मानसिंह चौहान को, चांदणी का चांपावत सवाईसिंह को, महू का चांपावत प्रतापसिंह को, घाटियाल का जैतावत उदैरामजी को, टींटोई का कूंपावत अमरसिंह को, बडियावी का कूंपावत बहादुरसिंह को, मेरासण (वेरणा) का जोधा इन्दरसिंह को और भाणपुर का ऊदावत लालसिंह को प्रदान किया गया। उस समय रायसिंह और शिवसिंह दोनों ही ईडर की गद्दी पर बैठते थे। सरदारों ने विचार किया कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं इसलिए कभी न कभी दगा हो सकता है। इस विषय पर विचार करने को वे सब चौहान की हवेली में एकत्रित हुए कि इन महाराजाओं को अलग-अलग किस तरह किया जाय क्योंकि शिवसिंह भी अब ग्यारह वर्ष का हो चुका था। अन्त में, सब ने एकमत होकर कूंपावत अमरसिंह को ही महाराजा रायसिंह के पास भेजा। उसने कहा, "महाराज ! गुनाह माफ हो, मैं कुछ कहना चाहता हूं।" रायसिंह ने कहा, "कहो, क्या कहते हो ?" तब ठाकुर बोला, "सब लोग कहते हैं कि एक म्यान में दो तलवार नहीं समा सकतीं, और न एक गद्दी पर दो राजा ही एक साथ बैठ सकते हैं। इसलिए हुजूर को किसी दूसरी जगह पधार जाना चाहिए।" रायसिंह ने कहा, "तुम्हारे सिवाय और किसी ने तो मुझे ऐसा नहीं कहा; खैर, हम दोनों ही को ईडर राज्य छोड़ देना चाहिए।" इसके बाद रायसिंह तो रायगढ़ लौट गया और अमरसिंह मारवाड़ चला गया; उसका टींटोई का पट्टा चांपावत मानसिंह के नाम कर दिया गया।

महाराजा रायसिंह के कोई पुत्र नहीं था, एक पुत्री बाई ऐजनकुंअरी थी जो जयपुर के महाराजा माधवसिंह को व्याही थी।

अमरसिंह का मारवाड़ में पट्टा प्राप्त करने का प्रयत्न सफल नहीं हुआ इसलिए वह छः वर्ष बाद ईडर लौट आया तब उसको मणोयाल का पट्टा भेंट कर

दिया गया। उनके दो पुत्र थे, शेरसिंह और धीरतसिंह। इन दोनों ही ने महाराजा शिवसिंह की इतनी अच्छी चाकरी की कि उसने प्रसन्न हो कर इनको कूकड़िया और ऊंटणी के पट्टे प्रदान किए। महाराजा शिवसिंह ने और दूसरे लोगों को भी पट्टे इनायत किए। चांपावत प्रतापसिंह के पौत्र फतेहसिंह और खुमाणसिंह को मुहू और वांकानेर की जागीरें दीं तथा दूसरे राजपूतों को भी जमीनें दीं, जो अन्य सरदारों के जिनायत बन गए।[10]

जब संवत् 1844–45 (1788–89 ई०) में आपा साहब की अध्यक्षता में गायकवाड़ की सेना, रावजी और रहवरों के साथ आकर ईडरवाड़ा में लूटमार करने लगी तो ये सभी सरदार अपने-अपने परिवारों को लेकर पहाड़ियों में चले गए। अन्त में, वे सब दांता और पोसीना के बीच में घूंवा नामक पहाड़ी पर एकत्रित हुए; वहां जाने के लिए एकमात्र बहुत संकरा रास्ता है। उसी रास्ते होकर वे रात को आक्रमण करके गायकवाड़ की सेना में लूटमार किया करते थे। जब सेनाने घूंवा पर चढ़ाई की तो सरदार लोग ईडर के उत्तरपूर्व में मेवाड़ के पानौरा नामक स्थान पर भाग गए। मरहठों ने मूंडेटी पर हमला करके उस क्षेत्र के सभी गांवों को लूट कर उनमें आग लगा दी, साथ ही पोसीना, मुहू, चांदणी और अन्य परगनों के गांवों का भी यही हाल किया। अन्त में, उन्होंने ईडर की ओर भी कदम बढ़ाये और महाराजा शिवसिंह पर चढ़ाई करने के लिए रमलसर तालाब पर पड़ाव डाला। उन्होंने महाराजा के पास सन्देश भेजा कि अगर वह तुरन्त ही बातचीत के लिये नहीं आया तो ईडर को नष्ट कर दिया जायेगा। इस पर महाराजा पांच कुंअरों के साथ मरहठों की छावनी में गया। मरहठा सेनापति ने कहा, "आधा मुल्क हमारे हवाले करने के इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर करो वरना हम सारी रियासत को बरबाद कर देंगे।" अपने इस दावे के लिए उन्होंने दलील दी कि शिवसिंह आनन्दसिंह का वारिस था और रायसिंह निःस्सन्तान मर गया इसलिये उसका आधा हिस्सा मरहठों को वापस चला जायेगा क्योंकि उस पूरी रियासत पर दोनों महाराजाओं ने मिल कर अधिकार किया था। यह सुनकर महाराजा ने बहुत अनुनय विनय की परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। उलटी यह धमकी और दी गई "अगर तुम हमारा कहना नहीं मानोगे तो तुमको पकड़ ले जाएंगे और ईडर पर मरहठा थाना कायम कर दिया जायेगा।" इस पर महाराजा ने डर कर कहा, "रियासत के बारे में किसी दस्तावेज

---

10. भाटी जैतसिंह को टाटड़ा ग्राम दिया गया, वह चांपावत जिले में मिल गया। चांपावत गुमानसिंह को चीवोडा गांव प्राप्त हुआ, वह मुहू जिले में शामिल हुआ। चांपावत अभयसिंह भेटाला गांव लेकर स्वतंत्र रहा। मुनई गांव भाटी को दिया, वह कूंपावतों का जिनायत हुआ। सीसोदिया मानसिंह को पूनासण गांव मिला, वह पहले चांपवतों के जिले में था, फिर कूंपावतों के में रहा। मेव नामक गांव भी जेतावत को दिया गया। इत्यादि

पर हस्ताक्षर करना मेरे वश की बात नहीं है, यह तो सरदारों के हाथ की बात है। उन्हीं लोगों के माध्यम से प्राप्त की हुई यह रियासत है, मैं तो केवल इसका राजा हूं।" तब पण्डित ने सरदारों को बुलाने के लिए कहा। शिवसिंह ने उत्तर दिया, 'मेरे बुलाने से वे लोग नहीं आवेंगे, तुमने उनके गांवों को बरबाद किया है और उन्होंने भी तुम्हारी सेना को हानि पहुंचाई है—इसलिए वे कैसे आएँगे ?' तब मरहठा अधिकारी ने उनको आश्वासन दिया और महाराजा ने भी निजी पत्र लिखे 'यदि आप लोग नहीं आवेंगे तो ये लोग मुझे कैद कर लेंगे।" इस पर और सब सरदार तो आ गए परन्तु चांदणी का ठाकुर सूरजमल नहीं आया और वह एक सौ सवार व दो सौ पैदल साथ लेकर अपने गांव चला गया। जब सरदार आए तो पण्डित ने उनको बहुत डराया धमकाया और रायसिंह के हिस्से के दस्तावेज पर दस्तखत करने को मजबूर किया। महाराजा ने सब से पहले हस्ताक्षर किये और फिर सात सरदारों ने उस पर साक्षी कर दी।

जब इतना काम हो गया तब सरदारों ने कहा, 'जब सूरजमल के दस्तखत हो जवेंगे तभी यह लेख सही होगा अन्यथा नहीं।' पण्डित ने कहा, 'उसे भी बुलाओ।' तब जान मोहम्मद नामक एक अरब जमादार की जमानत के साथ एक महाराजा का सवार और एक मरहठा अफसर उसके पास गए। सूरजमल एक सौ बीस सवारों के साथ वहां आया। पण्डित ने अपने ही डेरे में उसका आदर सत्कार किया, उसे अपने पास बैठाया और फिर वह दस्तावेज देकर कहा कि दूसरे सरदारों की तरह वह भी उस पर हस्ताक्षर कर दे। सूरजमल ने उस लेख को पढ़ते ही यह कह कर फाड़ दिया 'महाराजा पाट का (गद्दी का) धनी है तो मैं ठाठ (स्थान) का मालिक हूं।' फिर जमादार से कहा, 'मुझे चांदणी पहुंचाओ।' यह कह कर वह तुरन्त खड़ा हो गया और अपने घर चला गया। इस पर आपा साहिब बहुत लाल-पीला हुआ और महाराजा तथा सरदारों को डराने धमकाने लगा। उन्होंने कहा, 'हमारा क्या कुसूर है ? हमने तो हस्ताक्षर कर दिये थे।' तब पण्डित ने कहा, 'अच्छा, हमारे साथ चांदणी पर हमले में साथ चलो।'[11] यह बात सब ने मंजूर कर ली। चांदणी पर तोपों के मोरचे लगाए गए और पूरे दिन भर आक्रमण होता रहा; महाराजा और सरदार ऊपर से तो मरहठों के साथ थे परन्तु मन से सूरजमल के पक्ष में थे। रात को सूरजमल पहाड़ियों में भाग गया और दूसरे दिन मरहठों ने गांव को लूटकर उसमें आग लगा दी। वे लोग वहां पर चार दिन रहे; इस बीच में जब-

11. इस विषय में बारहठ ने दूहा कहा है—

निहचे नींदरडीह, अरियांनें आवे नहीं;
चकवे चांदरणीह, तें कीधी सूजा कमंध।

यह निश्चित है कि शत्रुओं को नींद नहीं आती है, हे सूरजमल कमवज ! तूने उनको चांदणी में चकवा बना दिया है।

जब भी अवसर मिला सूरजमल ने उन पर धावा किया, दस बारह आदमियों को मार डाला और चौदह घोड़े छीन ले गया। तब मरहठों ने चाँदणी से उठा कर गांबलिये में डेरा लगाया; वहां भी सूरजमल ने रात को हमले किये और बहुत से अन्य लोगों के साथ एक अरब जमादार को भी मार डाला जो रोटी बनाने के साथ 'ताना री री' करके गा भी रहा था। तब महाराजा ने मरहठों के सेनानायक से कहा, 'यह राजपूत बहुत बैंडा है; पता नहीं, कब किसको मार डाले; अगर यहां से फौज उठा ली जाय तो मैं रकम भेजने का बन्दोबस्त कर दूंगा।' तब बीस हजार की हुण्डी लिखाकर मरहठों की सेना चली गई और महाराजा भी ईडर लौट गया। वहां पहुंचकर उसने तुरन्त ही सूरजमल को बुला कर अपना गांव फिर बसाने को कहा और टूटे हुए महल की मरम्मत कराने को चार हजार रुपये भी दिए। सूरजमल ने ऐसा ही किया परन्तु इसके बाद उसको अपने पराक्रम का बहुत घमण्ड हो गया, वह प्रायः कहा करता था, 'महाराजा और सरदारों में कोई दम नहीं है, मैंने ही ईडर की गादी बचाई है।'

जब मरहठों का लश्कर लौटा तो अहमदनगर, मोडासा व अन्य स्थानों में वे अपने थाने छोड़ गए। कुछ ठिकानों से तो सरदारों ने उनको निकाल दिया परन्तु कहीं-कहीं पर वे जमे रहे और ऐसे स्थानों से पेशवा को आमदनी का आधा भाग मिलता रहा।

अब, सूरजमल चांपावत जब भी ईडर आता तो लोगों को उसके लिए रास्ता साफ रखना पड़ता वरना वह सब को डराता धमकाता था। ऐसे ही एक अवसर पर दरबार के नक्कारची ने रास्ते में कुछ गन्दगी करके उसको नाराज कर दिया तो उसने उस ढोली के पैरों में रस्सा डाल कर तालाब में बार-बार इतना डुबाया और बाहर झकोला (खींचा) कि अन्त में वह बेचारा मर ही गया। उस समय महाराजा शिवसिंह तो वृद्ध और निर्बल हो गया था और महाराजकुमार भवानीसिंह व सूरजमल में गहरी मित्रता थी।

एक बार सूरजमल ने चांदणी में गोठ दी और महाराजकुमार को भी उसमें निमंत्रित किया। वे दोनों दरबार में बैठे थे; संयोग से महाराजकुमार के सहचरों में से एक भोजक ब्राह्मण ने फर्श पर थूक दिया। इस पर सूरजमल आग-बबूला हो गया और उस ब्राह्मण को अपनी जीभ से वापस थूक चाटने के लिए कहा। भोजक ने कहा, 'मेरी भूल हुई, अब मैं इसे अपने कपड़े से साफ कर दूंगा।' इस पर भी सूरजमल नहीं माना और अपनी आज्ञा का पालन कराने पर हठ करता रहा। तब महाराजकुमार ने कहा, 'इस ब्राह्मण से गलती हो गई है, तुम्हारी खुशी हो तो मैं खुद अपने दुशाले से इसे साफ कर दूं।' परन्तु सूरजमल ने जिद नहीं छोड़ी और कहता रहा 'यह उसी जबान से अपने थूक को चाटेगा।' इस पर महाराजकुमार को भी गुस्सा आ गया और वह उठ कर वहां से चला गया। ईडर लौट कर उसने महा-

राजा को पूरा किस्सा सुनाया और कहा, इस सरदार को तो इतना अभिमान है कि किसी को भी कुछ नहीं समझता।' महाराजा ने यह सब सुन कर भी कोई उत्तर नहीं दिया। परन्तु, राजकुमार ने अपने मन में इस बात की गांठ बांध ली।

समय बीता, बात आई-गई हुई। तब एक बार महाराजकुमार ने सूरजमल को गोठ में न्यौता दिया। वह उसको ईडर का गढ़ दिखाने ले गया और अन्त में रूठी रानी के महलों[12] में ले आया; वहीं अपनी तलवार से उसने सूरजमल का काम तमाम कर दिया। इस ठाकुर की मृत्यु से ईडर रियासत की बहुत हानि हुई, जैसा की कवि ने कहा है—

चांपा चूक करेह, नरेन्द जो मारत नहीं;

गुज्जर धरा धरेह, कर देतो सूजो कमव ।।

मृत्यु के बाद सूरजमल भूत हो गया और बहुत समय तक गड़बड़ी करता रहा।

सूरजमल का पुत्र सबलसिंह इस समाचार से डर कर भाग गया और बाहर-वाट हो गया। किसी तरह समझा बुझा कर वापस बुलाया गया परन्तु हरसोल के बारह गांव उससे ले लिए गए। मूंडेटी के मानसिंह के बाद उसका कुंअर जोरावर-सिंह ठाकुर हुआ। उसके रघुनाथ नाम का एक छोटा कुंअर था जिसको गोटा की जागीर दी गई। रघुनाथ के बाद उसका पुत्र सूरतसिंह ठाकुर हुआ।

पटावतों के पास बहुत से गांव चले गए थे और खालसा में बहुत थोड़े रह गये थे इसलिए महाराजकुमार भवानीसिंह ने सूरतसिंह से गोटा की जागीर छीनने का प्रयत्न किया। उसने सूरतसिंह को कहलाया कि वह अपनी जागीर में से एक या दो गांव छोड़ दे। महाराजा शिवसिंह इस बात से प्रसन्न नहीं था परन्तु वह महा-राजकुमार के डर से कुछ बोल न सका। उधर सूरतसिंह संदेश के उत्तर में बाहर-वाट हो गया। वह पाल के उत्तर-पूर्व में मेवाड़ के जोवास व पहाडण नामक गांवों में अपने परिवार को ले गया और वहां से ही ईडर के इलाके में धावे मारने लगा; कभी किसानों को तो कभी गांवों के महाजनों को पकड़ ले जाता, कभी मवेशी उठा ले जाता और फिरौती की अच्छी रकमें वसूल करता। एक बार उसने ब्रह्मखेड़ पर आक्रमण किया जहां एक सौ सवार और पैदलों सहित ईडर का थाना रहता था। उस स्थान पर बहुत भारी लड़ाई हुई। बाद में, ईडर के कुछ बनियों का संघ सादड़ी की घाटी में हो कर ऋषभदेव की यात्रा के लिए जा रहा था; उनके साथ रक्षा के लिए पचीस कोली भी थे। ये लोग थाना नामक गांव में ठहरे। सूरतसिंह जाकर उनसे मिला और पूछा कि इतने सारे रखवाले साथ लेने की क्या जरूरत थी? उन्होंने

12. राव नारायणजी की रानी का महल; देखिए भा. 2 पृ. 167-68

उत्तर दिया 'यह सब इस कारण है कि तुम बाहरवाट हो।' सूरतसिंह ने कहा, 'ऐसी आशंका कभी नहीं रखनी चाहिए, ईडर तो मेरी माता है, मैं उसकी लूगड़ी कभी नहीं उतारूंगा।' तब वह पूरी यात्रा में उनके साथ रहा और उनको सुरक्षित वापस घर पहुंचा दिया। महाजनों ने ईडर लौट कर महाराजा और महाराजकुमार से कहा कि सूरतसिंह तो ईडर के प्रजाजनों की रक्षा करता है, उसे वापस बुला लेना चाहिए। परन्तु, यह बात महाराजकुमार के गले नहीं उतरी इसलिए उसने इस सलाह पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब महाराजा ने अपने पुत्र को बिना बताए ही सूरतसिंह को लिख भेजा, 'चूरीवाड़ मेरी रसोई का गांव है, तुम उस पर धावा करो, तब मैं अनशन शुरू कर दूंगा और इस तरह तुम्हें वापस बुलाने को महाराजकुमार विवश हो जाएगा।' इस पर ठाकुर ने अपने आदमियों को एकत्रित करके चूरीवाड़ पर धावा कर दिया, गांव को जला दिया, और आदमी व मवेशी पकड़ ले गया। जब यह खबर ईडर पहुंची तो महाराजा ने अनशन शुरू कर दिया। तब ईडर के एक अतीत साधु को मध्यस्थ बनाकर महाराजकुमार ने तुरन्त ही सूरतसिंह को बुलवाया। जब ठाकुर पहुंचा तो महाराजकुमार उस पर बहुत नाराज हुआ और इतनी भारी गड़बड़ी और दुस्साहस करने का कारण पूछा। सूरतसिंह ने उसे महाराजा का पत्र दिखा दिया। जब कुंअर ने शिवसिंह से इस बारे में कहा सुना तो महाराजा लज्जित हो गया और पिता पुत्र के बीच जो मनमुटाव था वह और भी बढ़ गया। महाराजा ने सूरतसिंह को केवल इतना कहा, 'तुम्हारे लाभ के लिए जो पत्र मैंने लिखा था वह तुमने क्यों बताया ? मुझे लगता है, तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और तुम्हारी मौत नजदीक आ गई है।' इस प्रकार सूरतसिंह को उसकी जागीर वापस मिल गई, परन्तु वह इसके छः मास बाद ही संवत् 1841 (1785 ई.) में मर गया। उसका पुत्र उदेसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ।

जोरावरसिंह के पौत्र दोलतसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर उदेसिंह ही मूंडेटी के बड़े पट्टे का भी उत्तराधिकारी हो गया।

संवत् 1848 (1792 ई.)[13] में महाराजा शिवसिंह देवलोक हो गये[14] और उसके बारह दिन बाद उनका पुत्र भवानीसिंह भी छत्तीस वर्ष की अवस्था में

---

13. प्रकरण के अन्त में दिए हुए परिशिष्ट में और वंशवृक्ष में 1791 लिखा है।
14. नीचे दिए हुए लेखों से ईडर के महाराजा के विषय में सप्रमाण तिथियां मिल जाती हैं :—

(1) ईडर के पास ही एक जैन की छत्री पर लिखा है—'संवत 1840 (1784 ई.) श्री महाराज अधिराज महाराज श्री शिवसिंह जी' इत्यादि

(2) ईडर के गढ़ में वजर माता की बावड़ी है, उसके लेख में :—
'श्री गणेशाय नमः, श्री रामजी, संवत् 1847 (1791 ई.) के फाल्गुन सुदि

→

मर गया। महाराजा भवानीसिंह की गद्दी पर उसका पुत्र गम्भीरसिंह बैठा जिसका जन्म संवत् 1835 (1779 ई.) में हुआ था। भवानीसिंह के छोटे भाई जालिम सिंह, संग्राम सिंह, अमरसिंह और इन्द्रसिंह थे। गम्भीरसिंह की अवयस्कता में रियासत का कारोवार जालिमसिंह के हाथ में रहा। कुछ समय वाद सरदार लोग चांपावतों की हवेली में एकत्रित हुए; उस समय वीजापुर का वारहठ मोहवत भी मौजूद था जो दीवान था; उन लोगों ने मंत्रणा की कि दो तलवारें एक म्यान में नहीं रह सकतीं इसलिए यही उचित है कि जालिमसिंह गद्दी पर न वैठा करे बल्कि बगल में वैठा करे। जालिमसिंह ने सरदारों से पूछा, 'तो फिर, अब मुझे क्या करना चाहिए, मेरे लिए आप लोग कौन सा रास्ता तजवीज करते हैं?' तव सरदारों ने कहा, 'आप भी राजवी हो, हम क्या सलाह दें? आप खुद रीति-नीति जानते हो।' यह सुन कर जालिमसिंह, उसके भाई संग्रामसिंह और अमरसिंह अपने साथियों को लेकर निकल पड़े और महाराजा से कोई पट्टा ग्रहण न करके उन्होंने मोडासा, अहमदनगर तथा वायड़ पर अधिकार कर लिया। इन्द्रसिंह अन्धा था इसलिए घर पर ही रहा; उसे सूर की जागीर प्रदान की गई।

संग्रामसिंह के वाद कर्णसिंह हुआ और उसके वाद तख्तसिंह, जो जोधपुर का महाराजा हुआ।

इन्द्रसिंह के चार कुंअर हुए तथा जालिमसिंह और अमरसिंह निस्सन्तान ही मर गए।

जव महाराजा गम्भीरसिंह अठारह वर्ष का हुआ तो उसने कहा कि इन तीनों भाइयों को दो ही परगने रखने चाहिएं और अपने इस विचार को क्रियान्वित करने को वह फौज तैयार करके अहमदनगर की तरफ चढ़ा और मार्ग में हिंगलाज के आगे पड़ाव डाल दिया। जालिमसिंह और संग्रामसिंह मिल कर महाराजा का सामना करने को तैयार हुए। डट कर लड़ाई हुई; दोनों ही तरफ तोपें थीं इसलिए दोनों ही पक्षों के वहुत से आदमी मारे गये। सांझ पड़ने पर युद्ध वन्द हुआ। दूसरे दिन चांपवत, जोधा और चौहान सरदार महाराजा के पास उपस्थित हो गए और शत्रुपक्ष को सन्देश भेजा गया कि 'अहमदनगर हमारे हवाले कर दो।' उसी समय टींटोई के ठाकुर भवानसिंह का, वहुत दिनों से भरे हुए और अधिक वारूद भरे विना न चलने वाले, एक तमंचे के चल जाने से, हाथ उड़ गया। महाराजा ने इसको एक प्रकार का अपशकुन समझा और वह युद्ध का विचार त्याग कर ईडर लौट गया।

5, वुद्धवार श्री श्री श्री 108 श्री महाराज अधिराज श्री श्री श्री शिवसिंह जी, श्री महाराजकुंवर श्री भवानीसिंह जी ने यह वावड़ी वनवाई है। इत्यादि

(3) ईडर के पास ही एक जैन लेख है—'संवत् 1859 (1803 ई.) महाराजाधिराज महराज श्री गम्भीरसिंहजी' इत्यादि।

भवानसिंह को टींटोई की तरफ ले जाया गया परन्तु मार्ग में ही मुहू के पास भवनाथ महादेव के स्थान पर उसका देहान्त हो गया।

इसके बाद मोडासा का ठाकुर जालिमसिंह अपने आस-पास में आम्बलियारा के ठाकुर, मालपुर के राठौड़ों और मोनपुर व सरदोही के रहवरों की जमीनें दबाने लग गया। उसकी सेना में मारवाड़ी एवं अन्य सिपाही थे। 1799 ई. के लगभग जालिमसिंह महाराजा ने पांच हजार फौज साथ लेकर मालपुर पर हमला किया; उधर राठौड़ के पास केवल आठ सौ ही सैनिक थे। तीन दिन तक युद्ध चलता रहा परन्तु अन्त में मालपुर ले लिया गया और रावल मारा गया। महाराजा ने मालपुर में अपना थाना कायम कर दिया परन्तु नया रावल तख्तसिंह बाहरवाट हो गया और मोडासा के गांवों में लूट-पाट करके व आग लगाकर बहुत नुकसान करने लगा। तब अन्त में यह तय हुआ कि मालपुर महाराजा को छ सौ रुपये सालाना सलामी के दे और मंगोड़ी के पांच सौ रुपये प्रतिवर्ष जमा करावे। इस पर रावल तख्तसिंह का उसके गांवों पर पुनः अधिकार हो गया।

संवत् 1864 (1808 ई) में पालनपुर दीवान के साथ उसके भाई शमशेर खां का झगड़ा हो गया इसलिए वह नाराज हो कर ईडर चला आया। महाराजा ने पोसीना परगने में अपना चांपलपुर नामक गांव उसको रहने के लिए बता दिया तदनुसार शमशेर खां वहां जाकर रहने लगा। इस पर पालनपुर के पीरखान ने महाराजा को लिखा, 'आपके लिए मेरे भाई को शरण देना उचित नहीं है।' जब महाराजा ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया तो पालनपुर की फौज ने गढ़वाड़ा पर चढ़ाई करके उस परगने पर कब्जा कर लिया और वहां अपना थाना रख दिया। तब महाराजा ने भी अपनी सेना एकत्रित की और वहां से पालनपुर की फौज को निकाल कर दीवान के शीशराणा गांव में जा बैठा। वहां से उसने पीरखान के पास सन्देश भेजा, 'तुम्हारी इच्छा युद्ध करने की हो तो आ जाओ, हम इन्तजार कर रहे हैं।' परन्तु, पीरखान ने लड़ाई का कोई इरादा जाहिर नहीं किया। महाराजा ने पालनपुर के दो-एक गांव मार लेने की इच्छा की क्योंकि वे गढ़वाड़ा में घुस आए थे; परन्तु, तत्कालीन प्रधान नाहरसिंह कूंपावत ने कहा, 'महाराज! हम पालनपुर की सीमा लांघ कर आगे आ गए हैं इसलिए विजय हमारी ही हुई है; अब आपकी इच्छानुसार दो-एक गांव दबा लेने से झगड़ा बढ़ने की ही सूरत पैदा होगी।' महाराजा ने उसकी सलाह मान ली और लौटते समय दांता पर चढ़ाई कर दी जहां से राणा जगतसिंह भाग कर पहाड़ियों में चला गया। ईडर की सेना ने नवावास और सीमान गांवों को लूट लिया (जहां के निवासी गांव छोड़ कर भाग गए थे)। वहां उनको गन्ने की फसल तैयार मिली, उन्हीं को काट-काट कर उन्होंने झोंपड़े बना लिए और महीने भर वहीं जमे रहे; खाने पीने का सामान आस-पास के गांवों से वसूल किया। अन्त में, यह तय हुआ कि दांता का राणा महाराजा को प्रतिवर्ष पांच सौ रुपये कर के रूप में दिया करे। इसके बाद महाराजा ईडर लौट गया।

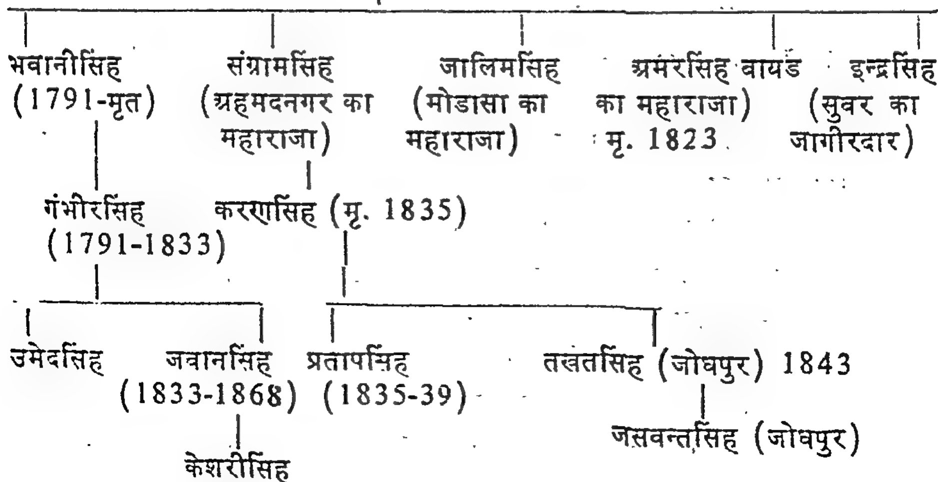
प्रकरण 10 का परिशिष्ट

1–ईडर

सन् 800 से 970 तक ईडर में गहलोतों का राज्य रहा; फिर, थोड़े समय तक भील स्वतंत्र रहे परन्तु बाद में यह परमार राजपूतों के अधिकार में चला गया (1000–1200)। अन्तिम परमार अमरसिंह इसे अपने सेवक हाथी सोड को दे गया जो कोली था। उसके पुत्र सामलिया सोड को सनेलिया के राव सोनंग ने अपदस्थ किया; वही पोल के रावों का पूर्वज था। इन रावों ने बारह पीढ़ी तक राज्य किया परन्तु बाद में 1656 ई. में मुरादबख्श ने उनको निकाल दिया। 1728 ई. में जोधपुर के राजा के भाई आनन्दसिंह और रायसिंह ने मुसलमानों को निकाल बाहर किया। उस समय इस रियासत में ईडर, अहमदनगर, मोडासा, बायड़, हरसोल परांतीज और बीजापुर शामिल थे। दामाजी गायकवाड़ के अधिकारी बच्चाजी ने पेशवा की तरफ से हमला करके आनन्दसिंह को निकाल दिया। इसी युद्ध में 1753 ई. में आनन्दसिंह मारा गया। परन्तु, रायसिंह ने मरहठों को पराजित करके आनन्दसिंह के पुत्र शिवसिंह को फिर गद्दी पर बिठा दिया। उस समय रियासत का बहुत सा भाग पेशवा के कब्जे में चला गया और बहुत सा गायकवाड़ के अधिकार में। 1791 ई. में शिवसिंह की मृत्यु के बाद पारिवारिक कलह उत्पन्न हो गए और इसके परिणाम-स्वरूप रियासत के टुकड़े-टुकड़े हो गये। (इण्डिया गजेटियर, 13, पृ. 325; भाग. 1, टि. 290)

इस रियासत की कहानी 14 वें प्रकरण में समाप्त होती है।

2–ईडर के महाराजा आनन्दसिंह का वंशवृक्ष



प्रकरण ग्यारहवां

दांता

दांता के राणा जैतमाल के दो पुत्र थे; बड़े का नाम जयसिंह था और छोटे का पूंजा। पूंजा की माता दांता के ही एक वाघेला सरदार की पुत्री थी, जो धनाली का ठाकुर था। इन दोनों भाइयों में अनवन रहती थी इसलिये पूंजा कुछ समय तक अपने ननसाल में रहा। परन्तु, जब उसके नाना की मृत्यु हो गई तब वहां भी चिर-स्थायी सुरक्षा के अभाव की आशंका से उसके मामा ने उसको सिरोही के चित्रासणी गांव में पहुँचा दिया। जब जैतमाल की मृत्यु हुई तो सभी सरदार और सगे-सम्बन्धी गढ़ में बारह रात्रियों तक जमीन पर सांथरी बिछा कर सोये, परन्तु कुंअर जयसिंह ढोलिये पर शयन करता। जब सेवक पलंग बिछाने आया तो उसने सधुजी बडुवा के पुत्र अमराजी की रजाई को उठा कर फेंक दिया और उस स्थान पर ढोलिया बिछाने लगा। तब सभी ने पूछा "क्यों भाई, यह किसका पलंग बिछा रहे हो ?" सेवक ने कहा "दरवार का।" सरदारों ने कहा, "दरवार को मरे तो अभी दो ही दिन हुये हैं, इतने जल्दी ही दूसरे दरबार हो गये क्या ?" नौकर ने उत्तर दिया, "परमात्मा की यही मर्जी है, अब आप इसे टाल नहीं सकते।" सरदारों ने यह बात सुनकर बहुत बुरा माना और विचारा कि यह दरवार तो अपने मतलब का नहीं है। तब उन सबने मिलकर सलाह की और बडुवा अमराजी से कहा, "तुम्हें सूझे सो ही उपाय करो।" उसने कहा, "मैं तो अभी जाकर दूसरे धणी (स्वामी) को ले आऊँगा, परन्तु आप सब हिम्मत रख कर मेरा साथ देना।" यह कह कर, अमराजी दो सवारों[1] के साथ

---

1. इनमें एक तो दांता की मातहती में पेथापुर का गूजर राम भाणजी था और दूसरा कोडिया सामलदास जी था। (गु० अ०)

   दांता की वंशावली इस प्रकार दी गई है—

   उज्जैन के प्रख्यात विक्रमराज के बाद चालीसवां राजा रवपालजी परमार हुआ। उसने ईसवी सन् 809 में सिन्ध में थल राज्य कायम किया। उसके बाद चौदहवां पुरुष दामोजी हुआ जो मुसलमानों के साथ युद्ध में मारा गया। दामोजी के बाद जसराज ने मुसलमानों से पराजित होकर थल का राज्य छोड़ दिया और आरासर के पास जबरगढ़ में गद्दी कायम की। बाद में

→

रवाना हुआ। जब वे तीनों बाहर निकले तो जयसिंह ने पूछा, "कहां जा रहे हो ?" उन्होंने उत्तर दिया, "हम दरबार के काम से जा रहे हैं।" कुंअर ने समझा ऐसा ही होगा, कारभारी ने इन्हें किसी काम से भेजा होगा।

वे तीनों धनाली पहुंचे और वहां के बाघेला ठाकुर मोहकमसिंह से उन्होंने पूछा, "पूंजोजी कहां है ?" ठाकुर ने कहा, "वह तो चित्रासणी में है।" तब वे वहां

केदारसिंह ने 1069 ई. में तरसंगमा में राजधानी स्थापित की। उसके बाद जसपाल हुआ। फिर कुछ पीढ़ियों बाद जगतपाल से अलाउद्दीन खिलजी (1295–1316 ई.) ने तरसंगमा छीन लिया, परन्तु बाद में उसने बादशाह से तरसंगमा वापस ले लिया। उसकी छठी पीढ़ी में कानड़देव हुआ। उसके बाद मेघजी के समय में ईडर के राव भाणजी ने 1445 ई. में उस पर चढ़ाई की और तरसंगमा को जीत लिया परन्तु अहमदाबाद के सुलतान महमूद (दूसरे) की सहायता से मेघजी ने पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लिया। तदनन्तर, आसकरणजी के आश्रय में अकबर बादशाह का शाहजादा वहां आ कर रहा और वह दिल्ली गया तब बादशाह ने उसको वंशपरम्परागत राणा की उपाधि प्रदान की। राणा बाघ को ईडर के राव कल्याणमल ने जीत कर कैद कर लिया था और वह वहीं आत्मघात करके मर गया।

राणा बाघ के बाद उसका भाई जयमल हुआ। उसको भी ईडर के राव ने जीत लिया तब 1544 ई. में दांता में आकर उसने अपनी राजधानी कायम की। आगे वंशावली इस प्रकार है—

जयमल
|
पूंजोजी
|
मानसिंह (1682 ई. में मरा)
|
गजसिंह (1682–1687 ई.)
|
पृथ्वीराज (1687–1743 ई.); फिर उसके भाई वीरमदेव का कुंअर कर्णजी—(इसको मेघराज नामक सरदार ने गद्दी से उतार कर सुदासणा के अमरसिंह को बैठा दिया था परन्तु पालनपुर के दीवान बहादुर खाँ की मदद से कर्णजी ने अपना राज्य वापस ले लिया।
|
रतनजी (5 वर्ष राज्य किया परन्तु पुत्र न होने के

→

गये और रात भर ठहरे। प्रातःकाल गांव के स्वामी सिंघी से मिल कर उन्होंने कहा, "पूंजोजी तुम्हारे पास रहे हैं, इसलिए उनकी मदद करोगे ?" उसने कहा, "मेरे पास तीन-चार सौ सिपाही हैं, आप जो चाकरी बतावें उसी के लिए तैयार हूँ।" यह कह कर उसने अपने आदमियों को तैयार किया। अब गड़वी अमराजी ने पूंजोजी से कहा, "हमारे साथ दांता पधारो।" उसने कहा, "मैं तो नहीं चलूंगा, वह मुझे मार डालेगा।" गड़वी (चारण) ने कहा, "मैं वचन देता हूँ, कोई नहीं मारेगा।" इस प्रकार वे पूंजोजी को साथ लेकर आये और सड़ा में ठहरे। दूसरे ही दिन जयसिंहदेव के गद्दी पर बैठने का शुभ मुहूर्त था और बहुत शानदार तैयारियां की गई थी; जयसिंह तो दरबार में बैठने के लिए पोशाक पहन रहा था, उसी बीच में पूंजोजी प्रकट हुए और कारभारियों तथा सरदारों ने उनको गद्दी पर बिठा दिया। सबने मिलकर दांता के नगरसेठ नानाभाई को कहा, "दरबार को तिलक[2] करो।" तब नगरसेठ ने तिलक किया और पचपन[3] रुपये नजर किये; बाद में, और सब लोगों ने भी नियमानुसार नजरें कीं। उसी समय चिआसणी से सिपाही आ पहुंचे और उन्होंने कहा, "हमारे लिए क्या हुक्म है ?" उनसे कहा गया कि दरबार के चारों तरफ पहरा कायम कर दें और कोई भी भीतर न जा सके। यह इन्तजाम पूरी तरह से पक्का किया गया।

कारण भाई अभयसिंह राणा हुआ जिसकी मृत्यु 1795 ई. में हुई।

|
मानसिंह (1795–1800 ई.)
|
जगतसिंह (भाई) 1800–1823 ई.
|
नाहरसिंह (भाई) 1823–1847 ई.
|
जालिमसिंह 1847–1860 ई.
|
हरिसिंह 1860–1876 ई.
|
जसवंतसिंह 1876–ई. में गद्दी पर बैठा।

दांता में 70 वर्गमील जमीन, 78 गांव, लगभग 12,000 मनुष्यों की आबादी और वार्षिक आय लगभग पचास हजार रुपयों की थी। इस आमदनी में से गायकवाड़ को रु. 2371–1–11, ईडर को खीचड़ी हक के रु. 513–15–3 और पालनपुर को 500 रु. वार्षिक कर देना पड़ता था। यह राज्य महीकांठा में दूसरी श्रेणी का गिना जाता था।

2. राजतिलक।

3. ग्यारह के पांचगुने पचपन रुपये भेंट किए।

बाद में राजकीय नौबत बजाई गई और तोपें चलाई गईं। यह सुन कर जयसिंह ने कहा, "नौबत किसने बजाई ?" तब किसी ने कहा, "पूंजा गद्दी पर बैठ गया है।" उसी समय उसके पास यह आज्ञा भी पहुंचाई गई, "दरबार के जो कुछ जवाहरात तुम्हारे पास हैं, यहां भेज दो और तुम यहां से चले जाओ।" जयसिंहदेव ने पूछा, "मैं कहां जाऊँ ?" उत्तर मिला, "गंगवा गांव तुम्हारी माता को खानगी में मिला हुआ है, तुम वहीं जा कर रहो।" तब जयसिंहदेव ने कहा, "गंगवा तो अकेला गांव है उससे मेरा गुजारा नहीं होगा।" तब मांकड़ी गांव उसको और दे दिया गया और वह अपने परिवार को लेकर गंगवा चला गया।

संयोग से, पूंजाजी गद्दी पर बैठा उस दिन उसे बहुत उलटियां हुईं। सरदारों ने सोचा कि इस वमन का कोई शकुन होना चाहिये। तब एक शकुन विचारने वाले ने कहा "राजा को मतली आती है और वमन होता है—इसका अर्थ यह होता है कि यह बहुत से परगनों पर अधिकार कर लेगा।"

जब पूंजाजी वयस्क हुआ तो उसने बांधार में अपना 'बोल'[4] का अधिकार पुनः प्राप्त किया, जो पहले छिन गया था। इसी तरह खेराला पटा[5] में जो 'वांटा'[6] दबा हुआ था वह भी उसने पुनः प्राप्त कर लिया। उसने फिर तरसंगमा को पुनः बसाने का भी विचार किया परन्तु इसके लिए उसे अवसर नहीं मिला। उसी समय उसने रोड़ा गांव अमराजी बड़वा को दिया; वह गांव पिछले दिनों उजड़ गया था। इसके अतिरिक्त उसको कुण्डल गांव में पचीस आमों का 'केरिया वांटा'[7] भी दिया। कुछ समय बाद राणा ने उस गड़वी को थाना गांव में भी कुछ खेत इनायत किए, जो उसने अपने सौतेले भाई सामाजी और सुखोजी को दे दिए।

बाद में, राणा पूंजाजी ने सिरोही की भायप में लींवज (नींबाज) के ठाकुर के यहां विवाह किया। लींवज का ठाकुर चांदोजी अपने भाई सिरोही के राजा अखेराज के विरुद्ध बाहरवाट हो गया था। इसलिए वह दांता आया और वहां उसने राणा पूंजाजी से अम्बाजी माता के मार्ग में बसाई गांव गुजारे के लिए प्राप्त किया। चांदोजी ने वहां रह कर सिरोही के साथ अपना झगड़ा चालू रखा, जो पांच वर्ष बीत जाने पर तय हुआ। तब चांदोजी ने अपनी बहन का विवाह पूंजाजी के साथ

---

4. खानगी के लिए कर वसूल करने का अधिकार।
5. पटावत की भूमि या इलाका; इसको जिला भी कह सकते हैं।
6. हिस्सा; गुजरात में भूस्वामियों को जो भाग या बंट मिला होता है वह वांटा कहलाता है।
7. आम के कच्चे फल को 'केरी' कहते हैं। कैरियों की आमद में जो हिस्सा लिया जावे वह 'केरिया वांटा'।

कर दिया और बसाई गांव दहेज में दे दिया। इस प्रकार राणा पूंजाजी ने अच्छी तरह से राज्य किया। उसके तीन कुंअर थे[8]—मानसिंह, अमरसिंह और धींगाजी। अन्तिम कुंअर को गणछेरू गांव जागीर में मिला।

राणा पूंजा के बाद मानसिंह गद्दी पर बैठा। अमरसिंह को सुदासणा मिला। एक बार ऐसी घटना हुई कि अमरसिंह चित्रासणी के ठाकुर से मित्रता के नाते मिलने गया था; वहां से लौटते समय राधनपुर के बाबी की फौज, जो कहीं चढ़ाई करने जा रही थी, अचानक आ मिली। सैनिकों ने घांधार परगने में पलखड़ी नामक गांव के पास जंगल में अमरसिंह को मार डाला। उसके दो कुंअर थे—हठिय जी और जगतोजी। इन दोनों को मानसिंह के कुंअर गजसिंह ने गद्दी पर बैठने के बाद मार डाला। कथा इस प्रकार है—

एक बार गजसिंह दांता के महलों में बैठा था तब उसने आसपास बैठे हुए लोगों से कहा; 'क्या कोई इस सामने वाले नीम के पेड़ से चौक में कूद सकता है?' हठियाजी तुरन्त ही पेड़ पर चढ़ कर कूद गया। राणा गजसिंह ने अपने मन में विचार किया कि यह आदमी कभी न कभी मुझे धोखा देगा। कुछ समय बाद उसने एक चावड़ा राजपूत को, जो उसकी चाकरी में था, कहा, यदि तुम इन दोनों भाइयों को मार दो तो तुम्हें एक खेत माफी में दे दूंगा।' तब उस राजपूत ने बड़े भाई को तो दांता की कचहरी में ही तलवार के वार से खत्म कर दिया और दूसरे को दरबार की खिड़की के सामने पहाड़ी पर कत्ल कर दिया। उसी स्थान पर छोटा भाई जगतोजी आज तक पूजा जाता है। कभी-कभी वह किसी को दिखाई भी पड़ जाता है और कभी-कभी किसी के शरीर में आविष्ट हो जाता है; ऐसी दशा में वहां पर बलि चढ़ाना आवश्यक हो जाता है। हठियाजी का पुत्र खुमाणसिंह था जिसको खालसा किये हुए गांव सुदासणा की एवज उदेरण ग्राम मिला। हठियाजी की हत्या के बाद बालक खुमाण को उसकी माता ने राणा गजसिंह की गोद में ला कर रख दिया और कहा, "जैसा तुम चाहो वही हाल इस बच्चे का भी कर डालो।" राणा ने अपने मन में कहा, "मैंने इसके पिता की हत्या की है इसलिए यदि इसको कुछ दे दूं तो वंशघात के पाप से मुक्त हो जाऊँगा।" यह सोच कर उसने उदेरण गांव दे दिया। जगतोजी के कोई पुत्र नहीं था।

अब मानसिंह की बात फिर शुरू करते हैं। उसने चार या पांच वर्ष तक राज्य किया। बाद में, दो कुंअरों, गजसिंह और जसवोजी को छोड़ कर दिवंगत

---

8. एक भाट की पुस्तक में लिखा है कि पूंजाजी के चार कुंअर थे, मानसिंह, अमरसिंह, सबलसिंह और सूरसिंह। सबल अथवा मोटे तगड़े को ग्रामीण भाषा में धींगा कहते हैं इसलिए सबलसिंह ही धींगाजी कहलाता होगा। (गु. ग्र.)

हुआ। जसवोजी को पहले राणपुर मिला परन्तु हठियाजी और जगतोजी की मृत्यु के वाद सुदासणा की जागीर भी उसी को मिल गई; राणपुर तो पहले से था ही। वाद में, दांता पटा में वसाई और जसपुर-चेलनूं भी जसवोजी[9] को ही प्राप्त हो गये।

गजसिंह ने भली-भांति राज्य किया[10]; उसके दो पुत्र थे, वड़ा पृथ्वीसिंह और छोटा वीरमदेव, जिसको नागेल गांव मिला। पृथ्वीसिंह के समय में दामाजी गायकवाड़ की सेना दांता आई। पृथ्वीसिंह ने शस्त्र ग्रहण करके कुछ समय तक उसका सामना किया परन्तु अन्त में पहाड़ियों में भाग गया। वाद में, जमानत देने पर वह मरहठों की छावनी में गया और कर के रूपमें कुछ रकम देना स्वीकार कर लिया; रकम मिल जाने पर मरहठे लौट गए।

कुछ समय वाद दिल्ली की तरफ से नवाव हैदरकुली फौज लेकर आया। राणा ने उसका भी मुकावला किया और उसके तीस सिपाही मार दिये। अन्त में, फौज पीछे हट गई और जीत का सेहरा राणा के ही सिर पर वंधा।

इसके वाद पालनपुर के नवाव ने राणा द्वारा घोडियाला गांव पर कायम किया हुआ हक (कर) देना वन्द कर दिया। राणाजी ने सोचा कि गांव किस तरह दवाया जाय। जव पालनपुर के दीवान को मालूम हुआ तो उसने अपने गांव मेहमदपुर से भाटों को वुला कर कहा, "तुम लोग घोडियाला गांव की निगाह रखो।" उन्होंने ऐसा ही किया। तव यह खवर दांता पहुंची। उस समय, रहियो नामक वनिया दांता का कामदार था। उसने भाटों को दांता में वुलाकर उन्हें धनाली और शीशराणा की रखवाली करने को कहा। उसने कहा, 'तुम पालनपुर के गांव की रखवाली करते हो, हमारे गांव की भी करो, जो कुछ पालनपुर वाले देते हैं, वही हम भी देंगे।' भाटों ने कहा, 'हम दो घाड़ों पर सवारी नहीं कर सकते।' तव रहियो ने कहा, "अच्छा, जाओ, अच्छी तरह जाव्ता रखना, हम चढ़ कर आते हैं।" भाटो ने सोचा कि पहले मेहमदपुर जाकर अपने आदमी ले आवें और फिर पालनपुर से अधिक आदमी

---

9. जसवोजी की सन्तान के विपय में प्रकरण के अन्त में सुदासणा पर टिप्पणी पढ़िये।

10. राणा गजसिंह की छतरी एक वाग में गांव के वाहर पिछवाड़े में वनी हुई है, उस पर यह प्रशस्ति अंकित है—

"संवत् 1743 वर्षे माघशर सुद 9 रवौ राण श्री गजसंघ जी वइकुंठ पधारा वां से सती 3 वलीं ते सतीआंनु नाम वहोजी श्री राठिम वारेचणी आणंद कुंवर। वहोजी श्री वाघेली रूपाली आणंद कुंअरि, वहोजी श्री भटिआंणी जेसलमेरी अनोपकुंवर ए सती त्रण भई। तारे आं के राणा श्री गजसंघजीनी छत्री करावी सं. 1748 ना महा वद7 वार शुकर छत्री करावी।"

लेकर घोडियाला में रक्षक जमा कर लेंगे। परन्तु, इसी बीच में राणाजी ने चढ़ाई कर दी, घोडियाला को जा दबाया और वहां लूटपाट करके कुछ आदमी व मवेशी पकड़ कर दांता ले गये। जब पालनपुर के नवाब ने ये समाचार सुने तो उसने भाटों को बुलाकर बुरा भला कहा, "तुम्हारी चौकसी में यह सब कुछ हुआ है; अब जाओ, तुम अपना जोर लगाकर मेरे आदमी व मवेशी वापस लाओ, जो राणाजी पकड़कर ले गये हैं।" अब, एक सौ भाट इकट्ठे हुए और उन्होंने 'वरना' शुरू कर दिया। वे अपने गांव से रवाना हुए और एक-एक कोस पर एक-एक आदमी जलकर मरने लगा; इस तरह पुंजपुर पहुंचते-पहुंचते सात या आठ आदमी खत्म हो गए। तब दांता से भी आदमी पुंजपुर पहुंच गए और उन्होंने भाटों को समझा-बुझा कर लौटा दिया। परन्तु, जब राणाजी ने उनके लिए कुछ भेंट पूजा भेजी तो भाटों ने कहा, "यदि हम कुछ ग्रहण कर लेंगे तो राणाजी इस पाप से मुक्त हो जावेंगे, इसलिए हम कुछ नहीं लेंगे।" यह कह कर वे अपने घर चले गये। इसी पाप के फल से, यद्यपि पृथ्वीसिंह के सात पुत्र हुये थे परन्तु, वह निःस्संतान मरा। उसकी मृत्यु पर तीन रानियां सती हुईं, जिनमें से एक नीमाज के ठाकुर सक्तसिंह देवड़ा की पुत्री थी, दूसरी पेथापुर के वाघेला ठाकुर की लड़की।[11]

पृथ्वीसिंह का वंश नहीं चला इसलिए कामदारों और सरदारों ने मिलकर वीरमदेव के पुत्र करणजी को गद्दी पर बिठाया। इस करणजी की उसके सरदार नेघराज (वाघावत बारहठ) के साथ, जिसके पट्टे में देवड़ी और महरमाला गांव थे, खटपट हो गई। उस समय दांता में कोठ्यो बखतो नामक एक राजपूत था, जो अफीम खाते समय नित्य ही राणा की गालियों का पात्र बनता था। एक दिन उस राजपूत को भी गुस्सा चढ़ गया और उसने राणाजी पर तलवार का वार कर दिया;

---

11. दांता में एक छतरी है, जो चारों ओर से खुली है परन्तु अन्दर की तरफ ईंटों की दीवार चुनी हुई है; उसमें आरस पत्थर का एक पालिया बना हुआ है, जिसमें एक अश्वारोही के आगे दो स्त्रियों की मूर्तियां बनी हुई हैं। ऊपर सामान्य रूप से सूर्य और चन्द्रमा के चिह्न उत्कीर्ण हैं। उस छतरी के ऊपर की भीत पर ये अक्षर खुदे हुए हैं—

    "राणा पृथीसिंघ की छत्री राणा श्री करण जी बनवाई।"

    दूसरी प्रशस्ति इस प्रकार है—

    "श्री गणेशाय नमः राणा श्री पृथीसंघजी श्री वइकुंठ पधारा ताहारे सती वेअ दली, तेहनां नाम वहूजी श्री देवड़ी फूल कुंवर, वहूजी श्री वघेली पेथापुरी सरदार कुंवर, संवत् 1799 (ई० स० 1473) वरषे श्रावण सुदी 2 वार गुरौ"

वाद में, वह बच कर मेघराज की शरण में चला गया। तब राणा ने मेघराज को कहलाया, 'इस अपराधी को मुझे सौंप दो।' मेघराज ने उत्तर दिया शरण में आए हुए को लौटाना राजपूत का धर्म नहीं है, इसलिए मैं अपने सिर के वदले इसकी रक्षा करूंगा।" वाद में, जव राणा ने वहुत तंग किया तो मेघराज ने उस राजपूत को पहाड़ियों में भेज दिया और स्वयं भी नाराज होकर गणछेरा चला गया जहां वह छः मास तक रहा। परन्तु, राणा ने उसको मनाने के लिए कुछ नहीं किया। तब मेघराज ने सोचा, 'अव, यहां रहकर क्या करूं?" इसलिए वह सुदासणा चला गया। वहा के ठाकुर अमरसिंह ने उसका स्वागत किया और वहां वह एक वर्ष तक रहा, परन्तु फिर भी राणा ने उसके संतोष के लिए कुछ नहीं किया। अन्त में मेघराज ने अमरसिंह को कहा, 'चलो, मैं दांता की गद्दी तुमको दिलाता हूं।" उन्होंने मिलकर एक हजार आदमी और गोला-वारूद आदि युद्ध का सामान जुटाया; फिर चढ़ाई करके दांता में घुस गए और करणजी को वाहर निकाल दिया। वह घोड़े पर सवार हो कर दांता से पांच कोस पेंपलोदर गांव को भाग गया। यह गांव परम्परा से दांता के पाटवी कुंअर को हाथखर्च में मिला करता था।

अव, अमरसिंह दांता की गद्दी पर वैठा और उसने सम्पूर्ण परगने को अपने अधिकार में कर लिया। दो तीन वर्ष तक ऐसा ही चलता रहा। अन्त में, पानीयाली के गढ़वा गोरखदास और उसके भाइयों ने मिलकर सलाह की 'हम लोगों के होते हुए हमारा मालिक राज्यभ्रष्ट हो कर रहे, यह उचित नहीं है।" तब वे राणा करणजी के पास गए[12] और उन्होंने कहा, "यों ठंडे होकर कैसे वैठे हो? कुछ हाथ-पैर हिलाओ तो दांता का राज्य वापस मिले।" राणा ने कहा, "मुझे तो कोई उपाय नहीं सूझता, तुम्हें दिखाई देता हो तो वताओ।" गढ़वी ने कहा; "अपने सरदारों को वुलाओ।" राणा ने उनको वुला भेजा। तव घोराड़ का ठाकुर साहेवसिंह भाटी, हराड़ का ठाकुर अनोपसिंह राठौड़ और गोधणी का ठाकुर देवीदास वाघेला आए। इन तीनों सरदारों ने वैठ कर सलाह की, "पालनपुर के दीवान वहादुरखां की मदद लिए विना काम नहीं वन सकता।" उन्होंने फिर विचार किया कि दीवानजी की सहायता प्राप्त करने के लिए वहुत वड़ी रकम की जरूरत है, वह इस समय कहां से आवे? तव करणसिंह ने नागेल से अपने भाई उम्मेदसिंह को वुलाकर कहा, "तुम्हारे एक कुंआरी लड़की है; यदि तुम उसका विवाह वहादुर खां से कर दो तो हम लोगों को अपना राज्य वापस मिल जाय।" उम्मेदसिंह ने कहा, "अगर राज्य मिल भी जाय तो गद्दी पर तो तुम वैठोगे; मुझे क्या मिलेगा जो मैं अपनी कन्या उस तुर्क को दूं?" तव करण जी ने उसको लिख कर दिया कि दांता वापस मिलने पर पांच गांव उम्मेदसिंह के अधिकार में दे दिए जावेंगे। इस पट्टे में आधा नागेल (नांगल), थांणा, कुण्डल, पाणोदरा और वडूसण तथा वर्तमान गढ़ जो वाद में कुंडल की सीमा

12. गढ़वी मयानाथजी और भागचंद जी राणा के पास गए थे। (गु. अ.)

में वसा है, ये सव गांव लिखे गए। तब उम्मेदसिंह ने उन सब की इच्छानुसार कार्य करना स्वीकार कर लिया। इसके बाद तीनों गड़वी पालनपुर जाकर वहादुर खां से मिले और उससे तय किया कि वह पुनः राज्यप्राप्ति में सहायता करेगा तो उम्मेद-सिंह की लड़की की सगाई उसके साथ कर दी जायगी। दीवान वहुत खुश हुआ और उसने कहा, "पहले मैं तुम्हारा राज्य तुमको दिला दूंगा, बाद में शादी होगी।" तब उसको एक रुपया और नारियल देकर सगाई का दस्तूर कर दिया गया। इसके बाद दीवान जी की सेना साथ लेकर उन्होंने दांता पर चढ़ाई की और पुंजपुर के पास महुड़ा के पेड़ों में पड़ाव डाला; वहां से अमरसिंह के पास सन्देश भेजा गया, 'दांता खाली करो।' अमरसिंह ने सोचा 'दांता में अब मेरा टिकना मुश्किल है क्योंकि पालनपुर की फौज भी आ गई है।' इसलिए उसने उत्तर भेजा "तुम्हारा दांता तुमको लौटा दूंगा, परन्तु मुझे गुजारे के लिए क्या देते हो ?" तब तय हुआ कि उसके पास उस समय जो पन्द्रह गांव थे उनके अतिरिक्त पांच गांव और दिए जावेंगे जिनके नाम जेतपुर, न्हानासड़ा, टोड़ा, खारी और बामणिया थे; इसके अलावा माताजी के चढ़ावे में से भी चौथा हिस्सा देना स्वीकार किया गया। उस समय प्रत्येक यात्री माता के एक रुपया चढ़ाता था। कुछ समय तक तो सुदासणा के ठाकुर को चार आना के हिसाब से रकम दी गई, परन्तु बाद में कुछ हिसाब में गड़बड़ी होने लगी तब राणा ने तय कर दिया कि प्रत्येक यात्री से बारह आने तो ले लिए जावें और सुदासणा के हिस्से के चार आने छोड़ दिए जावें। ठाकुर से कहा, "तुम्हारे गांव के दरवाजे से जो यात्री निकले उससे चार आने तुम ले लिया करो।" तब से सुदा-सणा का चौअन्नी वाला कर शुरू हुआ।

अब, राणा करणजी दांता आकर गद्दी पर बैठा। जब पालनपुर की सेना लौटने को तैयार हुई तो थांणा गांव की भूमि में पहाड़ियों के बीच चार आमों के पेड़ उगे हुए थे, वहां नांगल से उम्मेदसिंह की लड़की को बुलाकर उसका विवाह दीवान जी के साथ कर दिया गया। फिर, सब लोग उसे पालनपुर पहुंचा आए।

करणसिंह के रत्नसिंह और अभयसिंह नामक दो पुत्र थे। रत्नसिंह गद्दी पर बैठा। उसने पहले धनाली के ठाकुर लाडखान और पहाड़खान नामक वाघेला बन्धुओं को मरवा दिया था, जिसका किस्सा इस तरह है—

लाडखान भी दांता का एक सरदार था इसलिए एक बार राणा करणजी से मुजरा करने आया। उस समय कुंअर रतनसिंह तीस वर्ष का हो गया था परन्तु फिर भी बच्चों की तरह खेल रहा था। लाडखान जी ने कहा, "आप इस तरह कब तक कुंअर जी बने रहोगे ?," यह कह कर उसकी हंसी की। कुंअर ने जाकर राणा से वह सब बात कही जो ठाकुर ने कही थी। करणजी ने कहा, "ठीक तो है, मुझे मारो और राणा कहलाओ।" कुंअर ने कहा, "बापजी ! आप तो विराजमान रहो,

परन्तु उसको मैं अवश्य मारूंगा।" तव राणा ने कहा, "पहले इतना पराक्रम प्राप्त करो।" जब लाडखान जी के कानों में यह बात पड़ी तो वह तुरन्त घर लौट गया।

दो वर्ष बाद राणा करणजी संयोगवश नांगल गया; वहां पर उक्त वाघेला-वन्धु भी उससे मिलने आए। तव कुंअर ने सोचा, "आज मैं इन्हें मारूंगा।" उसने अपने साथियों से कहा, "मैं लाडखान जी को सरस्वती नदी में स्नान करने अपने साथ ले जाऊंगा और पहाड़खान जी को राणाजी के पास ही छोड़ जाऊंगा। वहां लाडखान जी को मार कर संकेत के लिए वन्दूक का भड़ाका कर दूंगा ताकि उसी समय दूसरे भाई का भी काम तमाम कर दिया जाय।" इस अभिसन्धि के अनुसार कुंअर स्नान करने गया और अपने साथ एक सांग भी ले गया। वहां उसने लाडखान पर सांग से वार किया और उसके साथियों ने उसका वध कर दिया। फिर, वन्दूक चला दी गई और यह सूचना मिलते ही जो लोग राणा के पास थे उन्होंने पहाड़ खान को मार दिया। जब पालनपुर के दीवान वहादुर खां ने यह वात सुनी तो उसने कहा, "ये दोनों ठाकुर मेरी रक्षा में थे, इसलिए कुछ इन्तजाम करना चाहिए वरना राणा उनके परिवारवालों की आवरू खराव करेगा।" यह विचार करके उसने धनाली और शीशराणा में दो सौ घुड़सवार रख दिए। इस प्रकार लिया हुआ कब्जा अव तक चला आता है और ये गांव पालनपुर के ही अधिकार में चले गए। मृतक ठाकुरों के एक-एक पुत्र था, जिनमें से एक, अपने गांव गोधाणी में जाकर रहने लगा, जहां उसके वंशज अव तक मौजूद हैं। दूसरा लड़का अपनी बुआ के घर सुदासणा चला गया, जिसको वहां के ठाकुर से 'वांटा' प्राप्त हुआ।

रतनसिंह ने, अपने पिता की मृत्यु के वाद, लगभग पांच वर्ष राज्य किया और फिर निस्सन्तान मर गया। उसके वाद उसका भाई अभयसिंह गद्दी पर वैठा। यह राणा एक अर्जुनराव चोपड़ा नामक मरहठा को दांता लाया और रियासत की आमदनी में से उसको चौथ देना स्वीकार किया। इसका कारण यह था कि उसके सरदार, पटावत, भाई-वन्धु और, यहां तक कि, उसके अड़ोसी-पड़ोसी राजा भी उसको परेशान करने लग गए थे। अर्जुनराव गायकवाड़ सेना के एक सौ घुड़सवार अपने साथ लाया; वह दांता में रहने लगा और आरम्भ में तो नाममात्र के अधिकार से ही सन्तुष्ट रहा, परन्तु दो-तीन वर्ष वाद इस प्रकार शासन करने लगा जैसे उसी का अधिकार हो। वह अपने रहने के लिए एक गढ़ी भी वनवाने लगा और साथ ही, वहां के निवासियों को भी तंग करने लगा। तव राणा को भय हुआ कि कहीं उसकी गद्दी ही न छिन जाय। इसी वीच में सूवेदार ने अपना मकान वनवाते समय कुछ राजपूतों के घरों के आगे पड़े हुए वांस के लट्ठे जवरदस्ती मंगवा लिए। अव, राजपूतों की आंखें खुलीं और जव मरहठे सिपाही 'इकडम तिकडम' कह कर हुकुम जताने लगे तव पूरा झगड़ा ही छिड़ जाता परन्तु, राजपूतों ने सोचा कि ऐसा करने से राणाजी मुसीवत में फंस जावेंगे। अतः उन्होंने दरवार में जाकर शिकायत की कि परदेशी उनको वहुत तंग करने लग गए हैं। तव राणा ने कहा, 'जो तुम्हारे लिए

दुःख है वह मेरे लिए पहले दुःखदायक है।" यह कर उसने अपने सभी सरदारों को बुलाया। कुंअर श्री मानसिंह उस समय पैंतीस वर्ष का हो गया था। उसने कहा, "अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं इन लोगों को बाहर निकाल दूं।" राणाजी ने कहा, 'तुम सपूत हो, ऐसा ही करो।' तव कुंअर ने चोपड़ा को कहलाया, "अव तुम यहां से खिसको।" जव मरहठों ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया तो कुंअर ने उनको घेर लिया, उनका अन्न, पानी और घास वन्द कर दिया और धमकी दी कि 'यहां से निकलो वरना मार दिये जाओगे।' अन्त में, वे निकलने को तैयार हुए परन्तु दांता के लोग भी कुछ दूरी तक उनको घेरे हुए साथ गए और, जब वे गढवाड़ा पहुंच गए तो वापस अपने घर लौट आए। भालूसणा के ठाकुर सूजाजी ने मरहठों का स्वागत किया और सुदासणा के लोगों से यह कहकर झगड़ा करने लगा कि "तुम्हारी हद में से मेरे 'वाँटे' की जमीन मुझे दो।" तब सुदासणा के ठाकुर फतेहसिंह ने दांता जा कर कुंअर मानसिंह से मदद मांगी। कुंअर अपनी फौज लेकर सुदासणा गया और वहां से उसने शत्रुओं को निकाल वाहर किया। अव, भालूसणा का ठाकुर भयभीत हुआ कि कहीं दांता से झगड़ा छिड़ गया तो वरवाद हो जायेगा; इसलिए उसने गायकवाड़ की फौज को विदा कर दिया और वे लोग अहमदाबाद की तरफ चले गये। वहां का सव वन्दोवस्त करके कुंअर दांता लौट आया जिसके थोड़े दिन वाद ही संवत् 1851 (1795 ई.) में राणा अभयसिंह की मृत्यु हो गई।

अभयसिंह के तीन पुत्र थे; मानसिंह उसके वाद गद्दी पर वैठा; उसकी माता वसाई की चावड़ी थी। जगतसिंह और नाहरसिंह की माता तरसंगमा के पास घोराड़ के ठाकुर सांहवसिंह की पुत्री भटियाणी थी।

मानसिंह ने गद्दी पर वैठते ही पहला पराक्रम यह किया कि पोसीना के धनाल नामक गांव पर एक मामूली-सा फेरा देकर वहां के कुछ मवेशी उठा लिए, परन्तु उनके पीछे ही गांव वालों की 'वार'[13] आई और अपने ढोर छुड़ा ले गई। इसके छः मास वाद उसने पोसीना के ही छांगोद नामक गांव पर धावा मारा और उसे लूट लिया। उसी समय वह गांव ऊजड़ हो गया और तव से वैसा ही पड़ा है। जव ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह मेवासियों पर चढ़ाई करने गया तो उसने मानसिंह को भी बुलाया और वह चालीस सवारों सहित उस अभियान में शामिल हुआ। इस मुल्कगीरी के वाद जव राणा घर लौटने लगा तो महाराजा ने उसे एक घोड़ा भेंट किया, जो एक हजार रुपयों के मूल्य का था। पांच वर्ष राज्य करने के वाद संवत् 1856 (1800 ई०) में मानसिंह मर गया। उस समय भाइयों में अनवन थी इसलिए कुछ लोग कहते हैं कि उसे विष दे दिया गया था।

---

13. गांव वालों का जत्था। किसी गांव में लूट होने पर सव गांव के लोग मिलकर पीछा करते थे। यह 'वार' कहलाता था।

उसके भाई जगतसिंह ने गढ़वाड़ा के गांव नेंदरड़ी पर 'टीका-धाड़'[14] करके वहां के कुछ आदमी पकड़ लिए और गांव को जला दिया; ऐसा करने का कारण यह था कि उस गांव के भील नवावास गांव से कुछ भैंसें उठा ले गये थे तब वहां का पटेल इस तरह फरियाद करता हुआ दांता आया 'मुझे एक फावड़ा दो, मेरे स्वामी मानसिंह की कहीं कोई हड्डी भी बच रही होगी तो खोद कर निकालूंगा क्योंकि यदि वह जीवित होता तो नेंदरड़ी के भील मेरी भैंसों को पकड़ कर ले जाने की हिम्मत न करते।' फिर एक बार उसने सेना एकत्रित करके पोसीना पर चढ़ाई की तब वहां के ठाकुर केसरीसिंह ने हड़ाद और अपने गांव के बीच में ही आकर उससे भेंट की, एक घोड़ा नज़र किया और जमानत दी। लौटते समय, सेना गढवाड़ा गई और महावड़ पर चढ़ी तब ठाकुर बखतोजी ने आकर एक घोड़ा नज़र किया और कौल-करार करके खातरी जमानत दी। फिर, नाना कोठारण के गढिया हाथींजी से, जिस पर एक चोरी का मुकदमा था, राणाजी ने घोड़ा नज़राने में लिया और इसके बाद सेना घर लौट आई।

संवत् 1870 (1814 ई.) में फिर फौज इकट्ठी करके राणाजी धनाल गांव से सब भैंसें घेर लाया। इसके बाद देरोल के राजा के गांव बावल कोठिया को लूट लिया। दूसरे वर्ष, उसने पोसीना के ठाकुर के भाई के गांव खेरोज को लूटा; वहां पर उसके दो आदमी मारे गये। उसके भाई नाहरसिंह को उस गांव की लड़की व्याही थी इसलिए उसने आ कर कहा, 'इस समय, मेरे सिर पर दूषण पड़ेगा, लोग कहेंगे कि नाहरसिंह ने अपने ससुर का गांव लुटवा दिया।' इस कारण वे लौट गए और धरोई गांव पर जा चढ़े। इस स्थान पर शत्रु ने कीरताजी नामक बारहठ को मिला लिया, जो राणा की फौज में था; उसने गांव के दरवाजे के पास जाकर कहा, 'शकुन अच्छा नहीं है' इसलिए वहां से लौट कर उन लोगों ने थाणा पहुंच कर डेरा लगाया। इस मुकाम पर राणा ने अपने सरदारों और कामदारों को बुलाकर पूछा, 'इन इमदादी सिपाहियों की तनखाह कैसे दी जायेगी ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'पावड़ी के ठाकुर रतनसिंह और अंधारिया के ठाकुर अणदोजी ने मेवासियों को बहका कर दांता की सीमा में बुलाया और उनको लूटमार करने को बढ़ावा दिया इसलिए इनके दोनों गांवों को लूट कर सेना (शिरबंधियों[15]) का वेतन चुका देना चाहिए।' तब राणा ने अंधारिया पर चढ़ाई करने की तैयारी की; यह सुनकर उस गांव का ठाकुर

---

14. राजा या ठाकुर के राजतिलक या टीका होते ही उसकी किसी पड़ोसी इलाके में 'धाड़', 'दौड़' या हमला करना पड़ता था, यह 'टीका-धाड़' या 'टीका-दौड़' कहलाती थी।

15. नियमित सेना के अतिरिक्त भाड़े के सिपाही, जिनको किसी भी समय सेवा-मुक्त किया जा सकता था और जिनको निश्चित पगार दी जाती थी।

पावड़ी भाग गया और वहां दूसरे लोगों के साथ मिलकर, जिनको धमकी दी गई थी, लड़ने को तैयार हुआ। रात के अन्तिम पहर में राणा की सेना थांणा से उठ कर अंधारिया पहुंची तो वह गांव सूना मिला। वहां से वे मोमनवास गए तो मोरचे में से बन्दूकें चलने लगीं। इस पर राणा की सेना के अग्रगामी सिपाहियों ने भी बन्दूकें चलाना शुरू कर दिया। अंधारिया के ठाकुर अणदोजी के एक गोली लगी और वह मर गया; बाकी लोग, जो मोमनवास में इकट्ठे हुए थे, भाग गए; गांव पर धावा बोल कर लूट लिया गया। तुरन्त ही, राणा वहां से चलकर पावड़ी जा उतरा और उस गांव से भी लूट का माल लेकर लौट गया और उसने मोटासड़ा आकर पड़ाव डाला। उस स्थान पर पावड़ी का ठाकुर जमानत लेकर राणाजी के पास आया। यह तय हुआ कि अंधारिया गांव में तीसरा हिस्सा राणाजी का होगा और इस बारे में आपस में लिखा-पढ़ी भी हो गई। इसके बाद आस-पास के मेवासियों से भी जमानतें ली गईं और संवत् 1872 (1816 ई.) में सेना का विघटन करके राणा दांता वापस लौट गया।

ठाकुर बखताजी जीताजी ने एक बार राणा जगतसिंह को कहा, "खाभीवास और कणवीवास से मेरा खर्चा पूरा नहीं पड़ता इसलिए मुझे कुछ और मिलना चाहिए।' राणा ने कहा, "तुम्हारे पिता के नाम जो कुछ मिला हुआ था उससे अधिक तुमको कुछ नहीं मिल सकता।" इस पर बखताजी ने रुष्ट होकर डीसा के दीवान शमशेर खान के पास जा कर कहा, "मुझे थोड़ी सी फौज दो तो मैं जाकर दांता रियासत को नुकसान पहुंचाऊं और अपनी मांग पूरी कराऊं।" उन दिनों राणा में और दीवान में मित्रता थी इसलिए दीवान ने राणाजी को लिखा, "बखताजी को मना लो वरना यह कोई न कोई उपद्रव करेगा।" तब राणा ने बखता जी को बुला लिया और कहा, "ऊंटड़ी और भूतावास, ये दोनों गांव एक अतीत× के गिरवी रखे हुए हैं, इन्हें छुड़ा लो तो इनका पट्टा तुम्हारे नाम लिख दूं।" बखताजी ने यह बात मंजूर कर ली और दोनों गांव छुड़ा लिए, जो उस समय उजाड़ पड़े थे। बाद में, उसने दोनों गांवों की धरती को मिलाकर अभापुरा नामक एक ही गांव बसा लिया और अपने परिवार को वहां रख कर वह स्वयं दांता में ही प्रधान के रूप में राणाजी की सेवा में रहने लगा। दो वर्ष बाद वह मर गया और अभापुरा उसके पुत्रों एवं भाई भवजी को मिला।

उन्हीं दिनों कण्डोल का ठाकुर सरदारसिंह निस्सन्तान मर गया तो राणा जगतसिंह और उसके भाई नाहरसिंह ने कण्डोल जागीर के पांचों गांवों को खालसा कर लिया और वे स्वर्गवासी ठाकुर की सम्पूर्ण चल सम्पत्ति भी दांता ले आए। ठाकुर का अन्तिम संस्कार कण्डोल में ही किया गया और ठकुरानी को गुजारे के लिए

× साधु।

तीन कुंए दे दिए गए। तब भवजी जीताजी ने उस जागीर पर अपना हक जाहिर करते हुए कहा, "कण्डोल में से मुझे भी कुछ न कुछ अवश्य मिलना चाहिए।" राणा जगतसिंह ने कहा, "तुम्हारे पिता जीताजी को खाभीवास और कणबीवास मिले हुए थे—वही खाओ, इस जायदाद में से तुम्हें कुछ नहीं मिलने वाला है।" तब भवजी नाराज होकर पालनपुर चला गया और अपने साथ मेहरू सिन्धी को भी ले गया, जो राणा का पुराना जमादार था परन्तु उन दिनों उसकी राणा से खटपट हो गई थी। पालनपुर पहुंच कर भवजी ने माइल्स साहब को एक दरख्वास्त दी जिसमें कण्डोल पर उत्तराधिकार का अपना और राणा जी का हक बराबर होना प्रकट किया तथा शिकायत की कि राणाजी ने पूरे ही ठिकाने पर अधिकार कर लिया। उसने यह भी लिखा, "मैं यह पूरा गांव अंग्रेज सरकार को लिख कर देता हूं, उसमें से सरकार की नजर में जितना वाजिब हो, वही मुझे दे दे, मैं वही स्वीकार कर लूंगा।" राणा जी के किसी हितचिन्तक को जब यह बात मालूम हुई तो उसने यह समाचार अपने स्वामी को लिख भेजा। तब राणाजी ने अपने भाई नाहरसिंह और एक कामदार जीवा कलाल को पालनपुर भेज कर कहलाया "मैं सम्पूर्ण दांता रियासत का रुपये में सात आना हिस्सा अंग्रेज सरकार को देने को तैयार हूं और सरकार को रियासत पर कब्जा करने की इजाजत देता हूं।" इसके बाद भवजी के हाथ पैर ढीले पड़ गए और उसने पालनपुर के दीवान फतहखान की नौकरी स्वीकार कर ली, जिसके बदले में उसे नांगल में चार आना हिस्सा मिला। बाद में, राणा ने भवजी को करणपुर गांव दे दिया और उन दोनों ने साथ बैठकर कसूंभा पिया। अंग्रेजी सरकार ने दांता रियासत में संवत् 1876 (1820 ई०) में अपना थाना कायम कर दिया था।

जगतसिंह के समय में काकरेज के मेवासी कोलियों ने दो सौ घुड़सवार और पांच सौ पैदल लेकर दांता के रतनपुर और पुंजपुर गांवों पर धावा किया और वहां से भैंसें उठा ले गए। जगतसिंह ने पचास सवार और दो सौ पैदल ले कर 'वार' किया। मोटासड़ा के मैदान में मुठभेड़ हुई जिसमें लुटेरों के पच्चीस आदमी मारे गए; राणा की तरफ भाटी राजपूत भीखा जमादार घायल हुआ और उसका घोड़ा मारा गया। मवेशी लौटा लिए गए और दांता लौट कर राणा ने भीखा जमादार को सोने के कड़े, एक घोड़ा व अन्य पुरस्कार प्रदान किये।

राणा जगतसिंह के कोई पुत्र नहीं था इसलिए उसने अपने भाई नाहरसिंह को कहा कि उसके जालिमसिंह और हरिसिंह नामक दोनों पुत्रों में से एक को गोद दे दे। नाहरसिंह ने सोचा कि यदि पुत्र गद्दी पर बैठेगा तो पिता को उसके चरणों में बैठना और मुजरा करना पड़ेगा इसलिए उसने मना कर दिया। कुछ लोगों ने जगतसिंह के कान भरे कि नाहरसिंह उसको विष देकर अथवा तलवार का वार करके मारना चाहता था। यह बात उसके दिल में जम गई और वह अपने महलों की किलेबन्दी सी करके अन्दर ही रहने लगा; उसने कचहरी में भी आना बन्द कर

दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि आसपास के गांवों के भीलों और कोलियों ने लूटपाट का सिलसिला जारी कर दिया। अन्त में, लोगों ने उसके पास जाकर फ़रियाद की. "यदि इस तरह आप राज्य प्रवन्ध को छोड़ कर महलों में ही रहने लगेंगे तो राजकाज कैसे चलेगा ?" राणा जगतसिंह का किसी भी कारभारी पर विश्वास नहीं रहा, केवल जीवा कलाल ही ऐसा था जिसकी सलाह से वह काम करता था। लोगों में इस बात की चर्चा भी होती थी कि उसने एक दारू वेचने वाले को मुसाहब बना रखा था। उन्हीं दिनों दांता में गुमान नामक एक सीसोदिया राजपूत भी रहता था जिसकी एक दरोगन को जीवा जबरदस्ती उड़ा ले गया था। उधर जीवा की दो पत्नियों में से एक के साथ राजपूत गुमान की सांठगांठ थी।। इन्हीं कारणों से उन दोनों में कट्टर दुश्मनी ठन गई थी, परन्तु राणा जी के डर से गुमान जीवा को कुछ नहीं कह सकता था; साथ ही दूसरे कारभारियों और सामान्य लोगों में भी जीवा के प्रति काफी रोष था।

एक वार वह कलाल फसल का 'कूंत'* करने निकला तव उसने गुमान के वाग की माफी की जमीन पर भी 'हांसिल'√ कायम कर दिया। राजपूत ने इसके विरोध में वहुत कुछ कहा परन्तु उसने कोई ध्यान नहीं दिया और गाली गलौज करने लगा। इस पर गुमान को वहुत गुस्सा आया और वह सोचने लगा कि कलाल को किस तरह मारे। उसने पहले तो अपनी माता और भाई को पोसीना के गांव हडाद में पहुंचा दिया और दूसरे दिन तड़के ही उस कलाल के घर के सामने जा वैठा। थोड़ी ही देर वाद कलाल वाहर आया और उसने राजपूत को वैठा देख कर पूछा, "कहां जा रहा है ?" गुमान ने कहा, "किसी गांव जा रहा था, परन्तु पहले शकुन देख रहा हूं।" वास्तव में, कलाल घवरा गया था परन्तु वह चला गया और निपट कर जल्दी-जल्दी घर लौटने लगा। राजपूत ने उसका पीछा किया और वार कर दिया। अव, उनमें लड़ाई होने लगी; कलाल के हाथ में पीतल का लोटा था जिससे उसने गुमान के सिर में चोट मारी परन्तु वदले में उसको कटारी के दो घाव खाने पड़े। किसी तरह गुमान की पकड़ से वचकर वह भागा और एक ढेड़ℓ के घर में शरण लेने को घुस ही रहा था कि राजपूत ने, जल्दी से लपक कर, उसको पकड़ लिया और अपनी ढाल व तलवार उठाकर खत्म कर दिया। तव मृतक के शरीर पर जो कुछ गहने थे उनको उतार कर गुमान भागा; कुछ लोगों ने हो-हल्ला मचाना चाहा तो उसने कहा, "चुप रहो वरना तुमको भी मार डालूंगा।" वे चुप हो गए और राजपूत साफ वच कर मगरे में चला गया। राणाजी अभी तक सो रहा था; एक

× खड़ी फसल या कटे हुए अनाज की राशि को देख कर उपज का आकलन करना 'कूंत' कहलाता है।

√ लगान।

ℓ अन्त्यज; अछूत।

नौकर उसको जगाने गया तो उसने पूरी घटना कह सुनाई ।[16] राणा को इससे बड़ा दुःख हुआ और उसने आज्ञा दी कि जीवा के घातक को मार दिया जाय। चारों तरफ सवार दौड़े, परन्तु मन ही मन में तो जीवा के मारे जाने से प्रसन्न ही थे, इसलिए यों ही ऊपर-नीचे इधर-उधर दौड़ भाग कर कुछ समय बाद लौट कर उन्होंने कह दिया कि हत्यारा तो हाथ नहीं आया। इस पर जगतसिंह के मन में यह बात जम गई कि नाहरसिंह ने ही उसके कारभारी को मरवाया था और उसको भी मारने का मनसूबा करता था। वह ऐसी बातें लोगों के सामने खुल्लमखुल्ला कहने लगा। तब नाहरसिंह ने राणाजी को कहलाया, 'तुम इस तरह मेरे माथे कलंक क्यों लगाते हो? मैं तुम्हारा गांव छोड़ कर चला जाऊंगा।' उसने अहमदनगर जाने की तैयारी की। तब लोगों ने राणा को कहा, 'नाहरसिंह नाराज हो कर जा रहा है; आपको उसे समझा बुझा कर रोकना चाहिए; यदि वह चला जायेगा तो आपकी शोभा नहीं होगी।' इस पर राणा ने कुछ आदमियों को भेज कर नाहरसिंह को ठहरने के लिए राजी कर लिया और सब ने उन दोनों को साथ-साथ कसूंभा पिलाया। एक महीने बाद फिर किसी ने राणा को बहका दिया कि नाहरसिंह उसका वध करने की तलाश में है इसलिए वह सुदासणा चला गया और वहां दो महीनों तक ठाकुर मोहवतसिंह के पास रहा। नाहरसिंह और सब कारभारी मिलकर उसके पास गए और उसे विश्वास दिला कर दांता लौटा लाने में सफल हुए। कोई दस बारह दिन ही दांता में रहा होगा कि वह फिर भाग कर पेथापुर में एक अतीत के मठ में चला गया और उसको कहा, 'नाहरसिंह मुझे मार देने की कोशिश में है।' वह वहां पर एक महीने रहा परन्तु, अन्त में, फिर समझा बुझा कर लोग उसे घर ले आए। इसके कुछ ही समय बाद बुखार और अन्य रोग उसके पीछे पड़ गए और एक महीने की बीमारीके बाद फागुन वदि 7. संवत् 1879 (1823 ई.) के दिन वह परलोक चला गया।

राणा जगतसिंह की मृत्यु के बाद नाहरसिंह गद्दी पर बैठा। संवत् 1892 (1836 ई.) में उदयपुर का महाराणा जवानसिंह अम्बाजी की यात्रा के लिए आया तब उसने नाहरसिंह को मुलाकात के लिए बुलाया। इसके अनुसार नाहरसिंह ने जा कर माताजी के स्थान पर डेरा किया। उदयपुर के राणा ने पुछवाया, 'आपसे मुलाकात किस कायदे से होगी? आपके दरबार में इस विषय का कोई लेख है क्या?' तब नाहरसिंह ने अपने सभी सरदारों और कारभारियों को पूछा परन्तु कोई लेख नहीं मिला। इसके बाद, सभी बड़े-बूढ़े आदमियों को पूछा गया और उनमें मेरी (इस वृत्तान्त के लेखक, भाट) की भी गणना थी। मैंने कहा कि राणा कान्हड़ देव का विवाह उदयपुर हुआ था और सीसोदणी रानी कोटड़ा दरवाजे पर सती हुई

16. गुजराती अनुवादक ने लिखा है कि यह बात राणाजी को शामचंद गांधी ने जाकर सुनाई थी।

थी; उसका पालिया आज तक मौजूद है। इसके बाद राणा जवानसिंह ने नाहरसिंह को भेंट के लिए बुलाया और ताजीम देकर उसका सम्मान किया। नाहरसिंह ने एक सौ रुपये मूल्य की एक बन्दूक नजर की और वापसी में जवानसिंह ने भी एक घोड़ा और मोतियों की कण्ठी प्रदान की; साथ ही, राजपुरोहित को भी सोने के कड़े इनायत किए। दो दिन वहां ठहर कर जवानसिंह घर को रवाना हुआ तब कुंअर जालिमसिंह अपने सवारों के साथ सिरोही तक उसे पहुंचाने गया।

संवत् 189– में नाहरसिंह और जालिमसिंह चन्द्रग्रहण के अवसर पर आबू की यात्रा करने गए। उस समय आबू में गुजरात, मारवाड़ और मेवाड़ से बड़े-बड़े संघ यात्रा पर आए हुए थे। ग्रहण के समय जब बहुत से लोग नखी तालाब में स्नान करने लगे तो एक साधु ने आकर कहा, 'इस वेला में, इस सरोवर में कोई स्नान न करे, जो करेगा वह मृत्यु को प्राप्त होगा।' कुछ यात्रियों ने इस बात को मान कर स्नान नहीं किया, परन्तु बहुत से लोगों ने विश्वास नहीं किया और स्नान कर लिया। उस समय चौंसठ योगिनियों के रथ आकाश से उतरे और उन्होंने स्नान करना आरम्भ कर दिया। सुबह, हैजा चालू हो गया और जितने लोगों ने स्नान किया था उनमें से कुछेक को छोड़कर सब मर गए। राणा और कुंअर ने ग्रहण समाप्त होने के बाद स्नान किया था इसलिए उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ और न उनके संघ का कोई आदमी ही मरा। वे चार दिन तक वहां रह कर अम्बाजी के स्थान पर चले गए।

इसके बाद बम्बई से गवंनर साहब सादड़ा आए और उन्होंने महीकांठा के सभी भोमियों को मिलने के लिए बुलाया। राणा नाहरसिंह और कुंअर जालिमसिंह भी और लोगों के साथ सादड़ा गए और उन्होंने साहब को एक घोड़ा व कीमखाब का एक थान भेंट किया; बदले में, गवर्नर ने दोनों पिता और पुत्र को एक-एक सिरोपाव, दुशाले और पाग भेंट में दिये। दूसरे भोमियों को भी सिरोपाव दिये गए। तदनन्तर, साहब बम्बई लौट गया और भोमियें अपने-अपने घर गए। उस समय, हिन्दू राजा ईडर के महाराजा गम्भीरसिंह, अहमदनगर के महाराजा करणसिंह और राणा नाहरसिंह थे; मुसलमानों में खास-खास सरदार पालनपुर का दीवान फतेह खान, राधनपुर का नवाब और बरगांव का दीवान शमशेर खान थे।

इसके बाद राणा नाहरसिंह मेजर माइल्स से मिलने पालनपुर गया और उसने जाहिर किया कि 'हमने हमारे राज्य में बन्दोबस्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार को हिस्सा दे रखा है, परन्तु हम देखते हैं कि अंग्रेज सरकार अपने प्रतिनिधि भेजने के बजाय पालनपुर के कर्मचारियों को भेज देती है जिनसे हमारा कोई अहदनामा नहीं है। मेजर ने नाहरसिंह को कोई संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया और नवरात्र का समय समीप आ गया था इसलिए उसको माताजी के यहां उपस्थित होना आव-

श्यक था अतः वह सीख ले कर चला गया। अन्त में, जब लैंग साहब[17] सादड़ा आया तो दीवान की जब्ती, जो सत्ताईस वर्ष से चली आ रही थी, उठा ली गई।

नाहरसिंह संवत् 1902 में परलोकवासी हुआ। जालिमसिंह ने उसका दाह-संस्कार गंगवा में किया। बाद में, नए राणा ने उसी स्थान पर एक छतरी भी बनवा दी थी।[18]

दांता के राजवंश की सुदासणा शाखा विषयक टिप्पणी

जब राणा मानसिंह का पुत्र गजसिंह दांता की गद्दी पर विराजमान था और उसका भाई जसवोजी राणपुर की जागीर भोगता था तब पूंजा राणा का पुत्र और मानसिंह का भाई अमरसिंह सुदासणा में था। उस समय सुदासणा की जागीर में केवल वही एक गांव था। अमरसिंह एक वीर और पराक्रमी योद्धा था इसलिए वह जसवोजी की जागीर को भी अपनी अधीनता में लेना चाहता था और इसी कारण वह राणपुर पर निरन्तर धावे मारता रहता तथा वहां से मवेशी आदि उठा ले जाता था। एक बार जब वह इसी तरह की धाड़ मार कर भैंसें ले जा रहा था तो जसवोजी ने उसे कहलाया, 'काकाजी ! यह बात आपके योग्य नहीं है कि आप मेरे दूध पीने की गाएं भैंसे भी ले जा रहे हैं।' तब अमरसिंह ने उत्तर दिया, 'राणपुर की भूमि में नर-भैंसे बहुत हैं, तुम्हें दूध की आवश्यकता पड़े तो उन्हीं में से किसी का पी लेना।' इस पर जसवोजी ने दांता जा कर मानसिंह को बड़े दुःख के साथ पूरी कहानी सुनाई। तब मानसिंह ने कहा, 'इस समय तो हम अमरसिंह को नहीं समझा सकते, परन्तु कभी न कभी मैं उसको देख लूंगा।'

इसके बाद मानसिंह ने अपने मन में शत्रुता की गांठ बांध कर मेवासियों और लुटेरों को, इनाम का लालच देकर, अमरसिंह का वध करने को उकसाया और इसी कारण वे लोग सुदासणा में गड़बड़ी करने लगे। एक बार गढ़िया सुदासणा के मवेशी घेर ले गए तब अमरसिंह ने 'वार' किया और उनको भालूसणा में जा पकड़ा तथा लूट का माल वापस ले लिया। तब एक किसान ने आकर उसको कहा, 'आप सब ढोर वापस ले आए परन्तु मेरा एक सौ रुपये के मोल का बैल था वह इनमें नहीं है, इसलिए मेरी तरफ से तो आपने 'वार' किया न किया बराबर है। इस पर अमरसिंह लुटेरों के पीछे फिर पलटा और उनसे बैल छीन कर उसे घेर कर लाने लगा। परन्तु

---

17. कर्नल लैंग कई वर्षों तक महीकांठा के पोलिटिकल एजेण्ट (राजनीतिक प्रतिनिधि) के रूप में अधिकारी रहा और उसका नाम सभी जगह सम्मान के साथ लिया जाता है।

18. जेठ सुदी 10 सोमवार के दिन संवत् 1902 में राणा नाहरसिंह का देहान्त गंगवा में हुआ और उसका दाहसंस्कार सरस्वती के किनारे हुआ, यह तो सही है परन्तु उसकी छतरी गंगवा में नहीं, दांता के पास बनी हुई है। (गु. अ.)

वह जातवर वड़ा अड़ियल था, हांकने पर वार-वार वापस भागता था। अन्त में, अमरसिंह ने सोचा अगर बैल लुटेरों के पास चला गया और वे इसे ले गए तो मेरी इज्जत ही चली जायेगी' इसलिए उसने वैल को अपने भाले से मार डाला और लौट आया। इसी हत्या के कारण वह चार मास के अन्दर-अन्दर मृत्यु को प्राप्त हो गया इसका किस्सा इस तरह है—

वह चित्रासणी के ठाकुर से मित्राचार के कारण मिलने गया था। लौटते समय एक मीर (गवैया) उसके साथ हो गया। अमरसिंह ने कहा, इस समय लुटेरे और बाहरवाट बहुत हैं तुम हमारे साथ नहीं निभ सकोगे इसलिए अभी मत चलो।' मीर ने कहा वापजी! मैं तो आपके साथ ही चलूंगा।' यह कह कर वह पहले की तरह ही साथ चलता रहा। इतने ही में राधनपुर के बांबी के सवार फेरा देने निकले थे, पलखड़ी गांव के आगे अमरसिंह की उनसे मुठभेड़ हो गई। जब राजपूत सवार उनसे वच कर भागने लगे तो मीर की घोड़ी थक कर लाचार हो गई; तब अमरसिंह ने मीर को कहा 'जल्दी से कूद कर घोड़ी को मार दे और मेरे घोड़े पर पीछे आ कर बैठा जा।' परन्तु मीर घोड़ी पर से उतरा-उतरा तव तक तो पीछा करने वाले आ पहुंचे। मीर चिल्लाया 'वापजी! मुझे छोड़ कर मत जाओ।' अमरसिंह उसकी मदद करने को लौटा और उसी समय एक गोली उसकी छाती में लगी जिससे वह वह धराशायी हो गया।

अमरसिंह के पुत्र हठियाजी के मरने के वाद उसका कुंअर खुमाणसिंह केवल अठारह महीने का रह गया था इसलिए जसवोजी ने सुदासणा जा कर अपना अधिकार जमा लिया। तव हठियाजी की ठकुरानी ने राणाजी को कहा, 'अव, मेरा गुजारा कैसे चलेगा?' तव राणाजी ने उसको अडेरण गांव दिया जहां उसके वंशज आज तक रह रहे हैं।

जसवोजी सुदासणा ही रहा; उसके पांच कुंअर थे। सबसे बड़ा सरदारसिंह उसके बाद ठाकुर हुआ; अजवोजी और धनराज जी को राणा जी से सोलाणूं गांव मिला; नाथजी और जोरजी को जसपुर मिला, जिसको जसवोजी ने वसाया था। जसवोजी के समय में विठोवा सूबादार की अध्यक्षता में गायकवाड़ की सेना सुदासणा आई और गड़बड़ी करने लगी तब भोजराज रावल, टोगो वनोल और पानियाली का गढ़वी घेलोजी बड़वा काम आये। सेना ने गांव का विध्वंस किया और लौट गई तब लोग मगरों में से लौटे और गांव का पुनर्निर्माण किया।

उन दिनों गायकवाड़ की सेना प्रति तीसरे या चौथे वर्ष आया करती थी; जब गांव के लोगों को उनकी आमद की खबर होती, जो प्रायः दस कोस की दूरी पर ही हो जाया करती थी, तो वे ऋघाया[19] से ढोल पिटवा कर चिल्लाते "भाग

---

19. ऋघाया = ढोल बजाने वाला

इस वृत्तान्त से मुझे अगस्त-सितम्बर, 1965 ई. में भारत पर पाकिस्तान

→

जाओ, भाग जाओ, फौज आ रही है।" तब लोग पहाड़ियों में भाग कर शरण लेते और वहीं छुप जाते। जब सेना आ जाती तो वह गांव को लूटती और फिर आग लगा देती; इसके बाद, अगर मरहठे कुछ समय के लिए वहीं जम जाते तो कर या जमाबन्धी के नाम पर गांव वाले कोई रकम तय करते और उस रकम का भुगतान कर देने पर फैसला हो जाता; लोग वापस आ जाते और फिर से अपने घरबार बसाने लगते।

जसवोजी की मृत्यु के बाद सरदारसिंह गद्दी पर बैठा। अब राणा गजसिंह वृद्धावस्था को प्राप्त हो गया था, परन्तु उसके कोई पुत्र नहीं था इसलिए उसने सरदारसिंह को गोद ले लिया। परन्तु, इसके बाद ही गजसिंह के पृथीराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ इसलिए उसकी मृत्यु के बाद सरदारसिंह ने दांता की गद्दी पर अपना हक ज़ाहिर किया और उसको छोड़ने की एवज़ में बसाई, डाबोल, डालेसणा और अन्य कुछ गांव प्राप्त किये। उसके जो भाई, बटवारे के झगड़े में, बाहर निकल गए थे, उनको भी उसने कुछ भूमि और खेत आदि दिये गये।

सरदारसिंह का ज्येष्ठ पुत्र उम्मेदसिंह था। उसके छोटे चार पुत्र चन्द्रसिंह, बखतसिंह, सुरतानसिंह और प्रतापसिंह थे, जिनको शामलात में बसाई गांव मिला। सरदारसिंह ने तेम्बा नामक गांव पर धावा किया था और वहां से ढोर व मनुष्य पकड़ लाया था; तब तेम्बा से 'वार' हुई और झगड़े में कुंअर उम्मेदसिंह मारा गया। उसके तीन पुत्र थे; अमरसिंह तो पाटवी कुंअर था और छोटे जगूजी व अगरसिंह थे, जिनको खानगी के लिए संयुक्त रूप से पांच गांव मिले।

सरदारसिंह की मृत्यु के बाद उसका पौत्र अमरसिंह उत्तराधिकारी हुआ। खिलोड़ जिला सुदासणा और तारंगा के बीच में है; वह दांता के पटावत हडियल राजपूतों को मिला हुआ था; परन्तु, मेवासियों के उपद्रवों से तंग आकर वे लोग

के आक्रमण के समय जोधपुर नगर की जनता की हालत याद आ जाती है। साथरन बजता, जीपों और लाउडस्पीकरों से ऐलान होता 'सावधान; दुश्मन के हवाई जहाज आ रहे हैं' और लोग, पहाड़ियों में नहीं, दौड़-दौड़ कर घरों के सामने या मैदानों में खुदी हुई खाइयों में छुप जाते। हवाई जहाज गोले या बॉम्ब डालकर चले जाते; 'खतरा खत्म' का सायरन और ऐलान होता और लोग वापस अपने-अपने घरों में आ जाते। मूल वृत्तान्त लेखक ने लिखा है कि गायकवाड़ सेना की धाड़ के समय स्वयं उसको कई बार पहाड़ियों में जा कर छुपना पड़ा था। विचित्र संयोग है कि जोधपुर पर पाकिस्तान के आक्रमण के समय इन पंक्तियों के लेखक को भी कई बार हवाई हमले के समय खाइयों में शरण लेनी पड़ी थी। (हि. अ.)

वडनगर तालुके में करवटी गांव में चले गए। तव राणाजी की रजामन्दी से सुदासणा के ठाकुर ने उस जिले पर अधिकार कर लिया। अमरसिंह के समय में गायकवाड़ की सेना को वहुत-सा नुकसान पहुंचा कर पीछे हटा दिया गया था परन्तु सुदासणा का एक भी आदमी नहीं मरा। यह वही अमरसिंह था जिसने दांता पर भी अधिकार कर लिया था।

अमरसिंह का पुत्र फतेहसिंह हुआ, जिसके मोहवतसिंह और पनजी नामक दो कुंअर थे। मोहवतसिंह के समय में संवत् 1860 (1804 ई.) में काकाजी की अध्यक्षता में गायकवाड़ की सेना आई और खूब लड़ाई हुई। मरहठों के साठ आदमी मारे गये परन्तु माणिकनाथ वावा[20] की आत्मा ठाकुर की सहायता कर रही थी इसलिए उसी की विजय हुई और उसका एक भी मनुष्य नहीं मरा। यह माणिकनाथ वही वावा है जिसने अहमदावाद बसाने की आज्ञा दी थी और जिसके वनवाये हुए तरसंगमा व सुदासणा की पहाड़ियों पर दो देवल हैं। वह इन्हीं में रहा करता था।

मोहवतसिंह ने रणशीपुर पर 'दौड़' की और वहां से मवेशी व आदमी पकड़ लाया क्योंकि वहां के भील उसके गांव डावोल से भैंसें उठा ले गये थे।

मोहवतसिंह के चार पुत्र थे, हरिसिंह, रतनसिंह, परवतसिंह और मोहकमसिंह। हरिसिंह ने चार वर्ष राज्य किया और उसके वाद रतनसिंह गद्दी पर बैठा जो दो वर्ष रह कर मर गया। फिर, उसका पुत्र भूपतसिंह पाट वैठा परन्तु एक वर्ष वाद वह भी मर गया। इसके वाद ठाकुर पर्वतसिंह मालिक हुआ। मोहकमसिंह वचपन में ही मर गया था।

●●

20. यह वही सन्त है जिसने अहमदावाद वसाने की आज्ञा दी थी और जिसके नाम पर 'माणिक चौक' व 'माणिक वुर्ज' प्रसिद्ध हैं।—देखिए, वम्वई गजेटियर, भा. 4 (अहमदावाद) पृ. 276 और जर्नल ऑफ दी वाम्वे ब्रांच ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी 1917–18, पृ. 91 (टिप्पणी)।

प्रकरण बारहवां

ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह (1)

खुमाणसिंह चाम्पावत ने महाराजा की अच्छी चाकरी की थी इसलिए उसने प्रसन्न होकर कहा "तुमको उच्च पद पर पहुंचाने की तो मेरी बहुत इच्छा है परन्तु मुझे यह आशंका भी है कि ऊँचे बढ़कर शायद तुम मेरे ही विरुद्ध हो जाओ।" तब खुमाण ने सौगन्द खाई "मैं अपने राजा के विरुद्ध कभी तलवार नहीं उठाऊंगा।" इस पर महाराजा ने उसको वांकानेर[1] की जागीर और दरबार में ताज़ीम का कुर्ब (सम्मान) प्रदान किया।

पानोल गांव एक चारण को मिला हुआ था, वह निःस्संतान मर गया। दिवंगत चारण की माता और पत्नी किसी सम्बन्धी और उसके दो पुत्रों को अपने घर में रखती थीं और उन दोनों युवकों का विवाह भी उन्होंने करा दिया था। उन स्त्रियों ने उनके नाम पानोल का छठा भाग भी लिख दिया और उनका अलग घर बसा दिया। फिर भी, पूरा गांव प्राप्त करने के लालच में दोनों भाइयों ने उन महिलाओं को मार देने का मनसूबा किया। वृद्धा को तो उन्होंने मार दिया परन्तु चारण की विधवा किसी तरह बच निकली और कष्ट सहती हुई ईडर जा पहुंची। वहां उसने अपनी कष्ट-कथा राजा के आगे निवेदन की। इस पर गम्भीरसिंह ने आस-पास के चारणों के मुखियाओं को बुलाकर कहा, "तुम पानोल जाओ और दोनों हत्यारों को कहो कि वहां से निकल जावें, यह मेरी आज्ञा है।" परन्तु, इस आज्ञा का पालन नहीं हुआ। तब राजा ने एक-एक करके अपने सरदारों को बुला कर कहा, "तुम जाओ, उन दोनों चारणों को कत्ल करो और पानोल को खालसा कर लो।" प्रत्येक सरदार ने यही उत्तर दिया, "गुनाह माफ हो, मर्जी हो तो मेरा एक गांव खालसे कर लिया जाय परन्तु चारण का वध करना तो उचित नहीं है।" इस पर महाराजा ने हैदराबाद सिन्ध में पैसा भेज कर पचास हब्शियों को किराये पर बुलवा लिया। जब वे लोग आये तो सभी सरदार और अन्य लोग समझ गये कि उनके आने का क्या कारण था इसलिए उन सबने मिल कर महाराजा का इरादा पलट देने के प्रयत्न किये, परन्तु उनकी कोई भी बात नहीं सुनी गई। तब सब लोगों ने खुमाणसिंह के पास जाकर कहा, "महाराजा की आप पर पूर्ण कृपा है इसलिए यदि

---

1. ईडरवाड़ा का यह वांकानेर सोरठ के वांकानेर से भिन्न है।

आप कोई प्रयत्न करें तो बेचारे चारणों की जान अवश्य बच जायेगी।" इस पर खुमाणसिंह ने राजा के पास जाकर कहा, "इन चारणों का अपराध क्षमा कर दीजिये।" राजा ने साफ इनकार कर दिया। तब वाँकानेर के ठाकुर ने कहा, 'भविष्य में मैं आपको और कोई प्रार्थना नहीं करूँगा।" राजा ने कहा, "जैसी तुम्हारी इच्छा।" खुमाणसिंह को इस उत्तर से बड़ा दुःख हुआ और वह तुरन्त उठ कर अपने घर चला गया।

अब, महाराजा ने चारणों को मारने के लिए हब्शियों को भेजा। जब यह खबर उनको मिली तो युवकों में से एक ने तो अपने दो बच्चों के सिर काट दिये और स्वयं भी इतने भयंकर रूप में घायल हो गया कि अन्त में मर ही गया। उसके पिता ने भी अपघात कर लिया, परन्तु उसका भाई, जो उस समय अन्यत्र था, बच गया। हब्शी ईडर लौट गये। इस घटना के बाद, जो चारण युवक बच गया था उसने जगह-जगह से पांच सौ जाति-बन्धुओं को एकत्रित किया और उनको लेकर 'धरना' देने व कुछ देने के लिए गम्भीरसिंह को मजबूर करने को ईडर आया; परन्तु, महाराजा ने अन्य चारणों की सहायता से उनसे पिण्ड छुड़ाया।

खुमाणसिंह को चारणों की मृत्यु से ऐसा सदमा पहुंचा कि उसने हिमालय पर्वत पर जाकर मरण प्राप्त करने का निश्चय किया। राजा अपनी रियासत के अन्य सरदारों को लेकर खुमाणसिंह का इरादा बदलवाने को वाँकानेर गया। उसने कहा, "यदि तुम इस चारण के कारण ही जा रहे हो तो पानोल से भी बड़ा कोई गांव ले लो।" इस पर ठाकुर ने उत्तर दिया, "मैं जब आपसे प्रार्थना करने आया था उस समय यदि आप सुन लेते तो मैं ठहर जाता, परन्तु अब आप कोटि उपाय करें तो भी मैं नहीं रुकूंगा।" ग्यारह नौकर, अपने भाई-बन्धु और रिश्तेदारों को साथ लेकर खुमाणसिंह ने घर छोड़ दिया। उसके संघ में एक पहाड़ी भी था जो अपने गांव के भीलों से इतना तंग आ गया था कि उसने हिमालय की बर्फ में गल कर प्राण देने का निश्चय किया ताकि वह दूसरे भव में उस परगने का ठाकुर होकर जन्म ले और भीलों से बदला ले सके।[2] अन्य लोगों की इच्छा विष्णुलोक में जाने की थी। उन्होंने भगवाँ वस्त्र धारण किये, सब शस्त्र एक ओर रख दिये और उनके स्थान पर केवल चांदी के तारों से लिपटी हुई छड़ियाँ हाथों में ले लीं; जिन घोड़ों पर वे सवार हुए उन पर से सभी युद्धोपयोगी साज उतार लिए गये थे। इस दृश्य को देखकर ठाकुर की ठकुरानियां और ग्रामवासी बहुत व्यथित हुए। जब यह शोक भरी सवारी रवाना हुई तो राजा गम्भीरसिंह ने रास्ता रोक कर अन्तिम बार कहा, "मैं तुम्हारे

---

2. वह बावड़ी गांव का निवासी था; उसने हिमालय में गलकर अगले जन्म में चांदणी का ठाकुर होने की कामना की थी। (गु. अ.)

चरणों की धूल पर अपनी पगड़ी रखता हूं, मत जाओ।" चाम्पावत ने उत्तर दिया, "आप ऐसा करेंगे तो मैं यहीं आत्मघात कर लूंगा।" इसके बाद महाराजा कुछ भी न कर सका।

खुमाणसिंह का पुत्र और उत्तराधिकारी बीस वर्षीय धीरजी वांकानेर का ठाकुर हुआ और महाराजकुमार उम्मेदसिंह की सेवा में रहने लगा, जिसने कृपा करके उसको कुछ भूमि और अपनी सवारी के आगे घोड़े पर नौवत बजवाने की प्रतिष्ठा प्रदान की।

अब महाराज गम्भीरसिंह वांकानेर के ठाकुर धीरजी पर बहुत मेहरवानी रखने लगे, जिसका कारण आगे लिखे विवरण से ज्ञात होगा। पोल के राव गद्दी पर दावा करके ईडर के इलाके में लूटपाट करते और गांवों में आग लगा जाते थे; इसलिए महाराजा ने पोल पर आक्रमण करके बदला लेने का विचार किया। 1808 ई० में उसने छः हजार तोड़ेदार बन्दूकों वाले सिपाही रखे और अपने सभी सरदारों को ईडर बुलाया। उन सबको साथ लेकर वह वराली तक गया, परन्तु किसी को यह नहीं बताया कि इस अभियान का उद्देश्य पोल पर विजय प्राप्त करने का था। उनका दूसरा पड़ाव पोल से चार मील दूर एक घाटी पर हुआ।

जब महाराजा की सेना ईडर से रवाना हुई तब ही पोल के राव और उनके पूर्व-सामन्त रहवर व वाघेला ठाकुर सचेत हो गए थे और उन्होंने खबर लाने को अपने गुप्तचर छोड़ दिये थे। पोल में जाने का एकमात्र मार्ग प्रायः नदी के पेटे में होकर है, जो ऊंची ऊंची चट्टानों के बीच में पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है। इसके घाटे की रक्षा के लिए दो दरवाजे बने हुए हैं। इन दोनों दरवाज़ों के बीच में राव ने दीवार चुनवा दी और दरवाजों पर अपने 'भाई बन्धुओं' व बन्दूकधारी शिरवन्धियों को बैठा दिया। महाराजा के आदमी दिखाई देते ही ये लोग गोली मार देते थे। इस तरह गम्भीरसिंह के चालीस आदमी मारे गए और चार मास तक डेरा रहने पर भी इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने का मार्ग ढूंढने में वह असफल ही रहा इसलिए वह बड़ी निराशा में पड़ गया था। तब उसने चार सौ सोने के कड़े बनवा कर उनको आसपास के भीलों में बंटवाए और कह, "मुझे पोल में पहुंचने का मार्ग बताओ।" भीलों ने कहा, "रास्ता तो इसके सिवाय और कोई नहीं है परन्तु दक्षिण की तरफ पहाड़ी के रास्ते से नसेनी द्वारा एक-एक आदमी चढ़ सकता है, लेकिन वह रास्ता बड़ा कठिन है और चढ़ने वाला आदमी अपने साथ शस्त्र भी नहीं ले जा सकता है। तब महाराजा ने तुरन्त नसेनियां मंगवाई और स्वयं अपने सामने एक एक करके अपने साथियों को ऊपर चढ़ाया। उस समय ईडर के सभी सरदारों ने विचार किया कि कूंपावत महाराजा के कृपापात्र हैं इसलिए इस अवसर पर उन्हें ही आगे जाने देना चाहिए। वांकानेर के धीरजी और अन्य चांपावतों ने

गुप्त रीति से सलाह की कि राव के सरदारों में मे जिसने उनके भाई ठाकुर को मारा था उससे वदला लेने का अवसर आ गया है। इसलिए जव कूंपावत चढ़े तो धीरजी और उसके मित्र भी साथ ही चढ़ गए और ठेठ पोल तक चले गए। वहां पहुंच कर उन्होंने अरवों को वाजा वजाने व वन्दूकें चलाने को कहा। यह देख कर राव और उसके परिवार के लोग पहाड़ियों में भाग गए और गम्भीरसिंह ने चंवर डुलाते हुए पोल में प्रवेश किया। उसने राव के महलों में गद्दी विछवा कर उस पर आसन ग्रहण किया।

महाराजा ने एक महीने तक वहां रहने के वाद अपने परिवार को भी वुला लेने व अपना निवासस्थान वहीं वना लेने का विचार किया; परन्तु उधर राव लगातार ईडर के गांवों पर धाडे मारता था इसलिए सरदारों ने कहा, "हुजूर ने पोल पर विजय प्राप्त करके यश वढ़ा लिया है; अव, इस महल को छोड़ कर सव घरों को अग्नि को भेंट कर देना चाहिए और हम सवको ईडर लौट जाना चाहिए अन्यथा राव वहां पर प्रवेश पा लेगा।" उनकी सलाह मान कर राजा ने डेरा उठा दिया और भीलोडा आ गया। उस समय शिरवंधियों ने अपनी दो या तीन महीने की चढ़ी हुई तनख्वाह का तकाजा किया और राजा को घेर कर वैठ गये, उसका हुक्का पीना या भोजन करना भी मुश्किल कर दिया। अन्त में, उसने सभी गांवों के पटेलों को वुला कर कहा, "तुम गांवों की सभी पैदावार को हड़प जाते हो और मुझे कुछ नहीं देते हो। अव वताओ क्या उपाय करूं ? इन लोगों ने मुझ पर पहरा वैठा दिया है।" तव पटेलों ने स्वेच्छा से यथायोग्य दण्ड की रकम जमा कराई। राजा ईडर लौट आया और क्योंकि चांपावतों ने इस अवसर पर वहुत अच्छी सेवा की थी इसलिए वह उन पर और भी अधिक कृपालु हो गया।

उन्हीं दिनों पांच हजार सिन्धियों की सेना ने डूंगरपुर पर हमला करके वहां के रावल को पकड़ लिया और उसको पालकी में वैठा कर अपने साथ ले गए। इसके वाद, वे वांसवाड़ा की तरफ वढ़े और वहां डट कर लड़ाई हुई जिसमें दोनों ही पक्षों के वहुत से आदमी मारे गए। वांसवाड़ा के वहुत से गांव फतह कर लिए गए। तव वहां के एक जागीरदार अर्जुनसिंह ने सेना एकत्रित करके सिन्धियों को पराजित किया और देश से वाहर निकाल दिया। ऐसी गड़बड़ियां पांच वर्ष तक चलती रहीं और अर्जुनसिंह के सिरवंधिया सिपाहियों की पगार चढ़ती रही। अन्त में, जव उनकी मांग पूरी करने के लिए उसके पास और कोई उपाय नहीं रहा तो वह ठाकुर लूणावाड़ा और वालसिनोर की तरफ वढ़ा और वहां उसने कर वसूल किया तथा वाद में ईडरवाड़ा में होकर पालया जा पहुंचा। वांकानेर के धीरजी की पालया के ठाकुर (रायसिंह) से तो अदावत थी और अर्जुनसिंह के साथ मित्रता थी इसलिए वह जाकर अर्जुनसिंह से मिला। जव पालया के ठाकुर को यह वात मालूम हुई तो वह भी अर्जुन सिंह के पास पहुंचा और उसने कहा, "मेरा ठोडड़ा के ठाकुर पहाड़जी से झगड़ा है, अगर तुम उसको खत्म कर दोगे तो मैं तुम्हें धन दूंगा।" अर्जुनसिंह

ने इस काम के लिए हां भर ली। धीरजी ठोडड़ा के ठाकुर का मित्र था इसलिए उसने अर्जुनसिंह को इस काम से रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु जब सफलता नहीं मिली तो क्रोध में भर कर यह कह कर चला गया, "अच्छा, मैं ठोडड़ा जाता हूं, वहीं तुम्हारी वाट देखूंगा। जितना जल्दी हो सके मुझसे युद्ध करने आना।" यह कह कर वह ठोडड़ा चला गया और वहां का ठाकुर भी सिरबंधिये इकट्ठे करने लगा, परन्तु उसे बहुत थोड़े ही सिपाही मिल सके। इसलिए उसने ईडर जा कर महाराजकुमार उम्मेदसिंह से कहा, "यदि आप इस समय मेरी सहायता नहीं करेंगे तो मैं तो शत्रुओं से लड़ता-लड़ता मर जाऊंगा और ठोडड़ा उनके हाथों में चला जावेगा।" इस पर उम्मेदसिंह भी अपनी सेना लेकर ठोडड़ा के लिए रवाना हो गया। जब आक्रमणकारियों ने देखा कि विपक्ष की सेना उनके काबू से बाहर हैं तो उन्होंने अपना विचार छोड़ दिया और सभी लोग अपने-अपने घर लौट गए। इस मौके पर भी राजा धीरजी के आचरण से बहुत प्रसन्न हुआ।

जब चांदणी के ठाकुर सूरजमल के पुत्र सबलसिंह का स्वर्गवास हुआ तो उसके दोनों पुत्र श्यामसिंह और मालूमसिंह में जागीर के लिए झगड़ा हुआ। बड़ा लड़का श्यामसिंह ज्यादा होशियार नहीं था इसलिए वह नाराज होकर वांकानेर चला गया। उधर मालूमसिंह ने टींटोई जाकर वहां के ठाकुर कनकाजी से कहा, 'यदि तुम मुझे चांदणी की गद्दी पर बैठा दोगे तो मैं तुम्हारे कुंअर को गोद ले लूंगा।" इस पर कनकाजी ने चांदणी जा कर कहना शुरू किया, "मालूमसिंह गद्दी पर बैठेगा।" उधर वांकानेर के धीरजी ने आ कर कहा, "असली हकदार तो श्यामसिंह है, वही गद्दी पर बैठेगा।" कुछ समय तक दोनों ठाकुर झगड़ते रहे और फिर अपने-अपने घर चले गए। कुछ ही समय बाद कनकाजी ने चार सौ सिपाही जमा किए और उनके साथ वांकानेर पर हमला कर दिया। धीरजी ने उसका सामना किया और दस बारह आदमी मार डाले। तब आसपास के ठाकुरों ने आ कर कहा, "दूसरों के झगड़े में तुम क्यों आपस में कट मर रहे हो?" यह कह कर उन्होंने कनकाजी को उस समय तो वापस लौटा दिया, परन्तु इन दोनों विरोधियों का यह झगड़ा आसानी से खत्म होने वाला नहीं था।

अब चांदणी के कामदारों ने जा कर राजा गम्भीरसिंह को कहा, "महाराज! आप स्वयं कृपा करके चांदणी पधारें और नए ठाकुर को गद्दी पर बैठावें।" राजा ने कहा, "धीरजी और कनकाजी गए तो थे?" कामदार ने कहा, "महाराज! उनके द्वारा बैठाया हुआ ठाकुर गद्दी पर नहीं बैठ सकता, अब तो आप ही जिसको बैठावेंगे वह बैठेगा।" तब राजा ने कहा, "यदि कोठड़ा गांव मुझे दे दो तो मैं आऊं; बदले में सीओली तुमको दे दूंगा।" कामदार ने श्यामसिंह की मंजूरी लेकर कोठड़ा महाराजा को देने की लिखावट लिख दी। तब महाराजा ने चांदणी जा कर टीकायत हकदार को गद्दी पर बैठाया और उसकी कमर में तलवार बांधी, परन्तु जिस गांव

के लिए उसने कामदार को कहा था वह कभी नहीं दिया। चांदणी के छुटभाई को केवल एक गांव गुजारे के लिए मिला।[3]

---

3. मेजर माइल्स ने महीकांठा के विषय में अपनी 21 सितम्बर, 1821 ई. की रिपोर्ट में लिखा है—

'चांदणी के सबलसिंह का पिता सूरजमल कोई चालीस वर्ष पहले मरा था। कहते हैं कि सबलसिंह ज्यादा समझदार नहीं था और उसके कुप्रबन्ध के कारण मुहू का ठाकुर फतेहसिंह चांपावतों में मुख्य सत्ताधारी बन गया था। फतेहसिंह सन् 1805 ई. में मरा और उसका पुत्र अनरसिंह भी 1819 ई में मर गया। उसका पुत्र गोपालसिंह अभी बालक है इसलिए इस भाग का काम गड़बड़ी में पड़ गया है। गोपालसिंह की अवस्था लगभग पन्द्रह वर्ष की है। सबलसिंह के दो बड़े पुत्रों, श्यामजी और मालजी में विरोध हो जाने के कारण चांपावतों का पट्टा दो भागों में बंट गया था। एक का हिमायती टींटोई का ठाकुर कनका जी है और ईडर के राजा व धीरजी ने श्यामजी का पक्ष लिया है। बहुत बखेड़ा और खून-खराबी के बाद नतीजा यह हुआ कि खेड़ और हरसोल का आधार परगना तो ईडर के महाराजा ने कनकाजी की सहमति से खालसा कर लिया है और बाकी पट्टे का प्रबन्ध स्वयं कनकाजी ने सम्हाल लिया है। पट्टे के असली मालिकों का कोई सहायक नहीं रहा इसलिए वे इन लोगों के बरताव की शिकायत करते हैं।'

लेफ्टिनेण्ट-कर्नल बैलेण्टाइन ने सादरा मुकाम से तारीख 15 सितम्बर, 1822 को लिखा है—

'चांदणी—इस पट्टे के मालिकों ने पहले तो इसको छोड़ देना चाहा क्योंकि उनमें आपस में झगड़ा हो गया था; कनकाजी और धीरजी ने जो सब गड़-बड़ियां मचाईं उसके मूल में इसके बंटवारे का ही प्रश्न था और बाद में गम्भीर-सिंह ने इस पट्टे को हड़प जाने से रोकने के लिए जो यत्न किए उन्हीं के कारण चांपावत-विद्रोह उठ खड़ा हुआ। मालजी और श्यामजी सबलसिंह के पुत्र हैं और, ऐसा लगता है कि, वे इस पट्टे पर अधिकार करने में सब तरह से असमर्थ हैं। इसलिए यह प्रश्न सरदारों की पंचायत के सामने रखा गया था और उनके निर्णय का सार इस प्रकार है:—

'मालजी और श्यामजी के तकरार का निपटारा करने का विषय हमारी पंचायत को सुपर्द किया गया है सो हम उनके जामिन होने अथवा उनको हमारी व्यवस्था मनवाने या उनको अपने प्रभाव से मजबूर करने में असमर्थ हैं। दोनों भाई अत्यधिक मदिरापान करते हैं, यहां तक कि पागल-से हो जाते हैं; और →

ठोडड़ा की पूर्व घटना के एक महीने बाद ही धीरजी ने सेना एकत्र कर चांदणी के विवाद के कारण टींटोई के विरुद्ध प्रयाण कर दिया; परन्तु, दूसरे ठाकुरों ने बीच में पड़ कर उसे समझा बुझा कर लौट जाने को दबाया। इस पर कनकाजी ने धीरजी के मित्र ठोडड़ा के ठाकुर पर हमला कर दिया और यह खबर सुन कर धीरजी उसकी मदद के लिए दौड़ा। खूब लड़ाई हुई और उसमें टींटोई वाले के दस आदमी मारे गए तथा उसको पीछे हटना पड़ा।

घर लौट कर कनका जी ने ठोडड़ा पर पुनः आक्रमण करने के लिए सिर-बंधियों की सेना इकट्ठी करना शुरू किया। धीरजी को जब यह खबर मिली तो उसने महाराजकुमार उम्मेदसिंह को ठोडड़ा की रक्षा के लिए आमंत्रित किया और वह आ भी गया यद्यपि राजा और दूसरे लोगों ने उसे मना कर दिया था। कनकाजी फौज लेकर ठोडड़ा की ओर बढ़ा और सीमा में जाकर उसने सब समाचार सुने, तब उसने विचार किया 'महाराजकुमार यहां हैं और कुछ ऐसा-वैसा हो गया तो अच्छा नहीं होगा,' इसलिए वह ठोडड़ा की सीमा में होकर निकल गया और पालया जा पहुंचा तथा वहां से कुछ मनुष्यों को पकड़ लाया। पालया जाने में उसका रुपया इकट्ठा करने के सिवाय और कोई उद्देश्य नहीं था। फिर वह कुछ और गांवों में गया और वहां से भी उसने कुछ आदमी पकड़ लिए तथा महाराजकुमार को लिखा, 'आप तो मेरे मालिक हैं, इसलिए आपका ठोडड़ा में ठहरना वाजिब नहीं है; यदि आप सामने आवेंगे तो मेरे भाले और गोलियों के आंखें नहीं हैं, इस तरह आप मुझे संसार की दृष्टि में नीचा दिखावेंगे।' महाराजकुमार इस पत्र से और भी नाराज हुआ और उसने कुछ सेना साथ देकर धीरजी को कनकाजी का सामना करने भेज दिया।

टींटोई की सेना का एक अरब जमादार घोड़ा फेर रहा था तभी धीरजी के आदमियों ने उस पर गोली चला दी जिससे घोड़ा मारा गया। तब अरब ने कनकाजी के पास जाकर पुकार की 'उन्होंने मेरा घोड़ा मार डाला है, मैं उन पर हमला करूंगा।' कनका जी ने कहा, 'तुम उनसे युद्ध करने वहां मत जाओ, कुछ बन्दूक वालों को घाटियों में छुपाकर बैठा दो; हम यहां सामने फौजें जमाते हैं इसलिए जब वे हम पर हमला करने आवेंगे सो मारे जावेंगे।' फिर, उन लोगों ने ऐसा ही किया जिसका नतीजा यह हुआ कि धीरजी सत्रह सवारों से हाथ धो बैठा और उसे ठोडड़ा लौटना पड़ा।

इन्हीं दूषणों के कारण इन दोनों ने अत्यन्त घृणित कार्य भी किए हैं। हमारी राय में, अब ये ला-इलाज हो गए हैं। अतः हमारी यही सलाह है कि इनकी ऐसी अयोग्यताओं को देखते हुए नीचे लिखे अनुसार प्रबन्ध कर देना ही संभव और उचित होगा'—इत्यादि[२]।

इस अवसर पर धीरजी ने एक बारगीर* को अपने जैसे ही वस्त्र पहना दिए थे और दैवयोग से वह सवार मारा गया। बाद में, जब कनकाजी ने मृतकों के वस्त्र उतारे तो उनमें उसको धीरजी के वस्त्र भी मिले और उसने समझा कि वह भी मारा गया। इस पर टींटोई के ठाकुर को बड़ा दुःख हुआ और शोक में उसने अपनी लाल पाग तो उतार कर फेंक दी तथा सफेद पगड़ी पहन ली।[1] उसके पुत्र लालजी ने कहा, 'यह क्या बात है ? आपने इस पर पहले विचार क्यों नहीं किया जो अब इस तरह शोक मनाते हैं ?' उसने कहा, 'तुम सबने मेरा दिमाग फिरा दिया था इसीलिए यह हुआ।' बाद में तलाश करने पर जब मालूम हुआ कि धीरजी सकुशल था तो कनकाजी बहुत, 'प्रसन्न हुआ और घर लौट गया।

धीरजी को बहुत दुखी देखकर महाराजकुमार ने कहा, 'तुम कुछ भी सोच मत करो, जो मर गये हैं वे तो वापस आ नहीं सकते, परन्तु मैं तुम्हें किसी बात की कमी नहीं होने दूंगा। तुम्हारे घोड़े और नौकर वापस दे दूंगा।' धीरजी ने कहा, 'उसने मेरी इज्जत ले ली है इसलिए मुझे तो टींटोई फतह करनी ही है।' तब महाराजकुमार ने सौगन्ध खाई 'टींटोई विजय किए बिना मैं ईडर नहीं लौटूंगा।' इसके बाद धीरजी महाराजकुमार को साथ लेकर टींटोई गया। उम्मेदसिंह ने अपने पिता को लिखा, 'आप फौज लेकर मेरी मदद के लिए आओ तो आओ वरना मैं टींटोई वालों के साथ लड़ता हुआ जान दे दूंगा।' राजा इस बात से प्रसन्न नहीं था, परन्तु अपने पुत्र की रक्षा करने के लिए वह सेना लेकर उसके पास जा पहुंचा।

उस समय सिरोही का एक प्रतिष्ठित चारण खोडीदानजी टींटोई के ठाकुर के साथ रहता था। उसको सिरोही से देश निकाला दे दिया गया था क्योंकि किसी मामले में वह जामिन था और उस काम को पूरा करने के लिए राव पर अत्यधिक दबाव डालता था। जब महाराजा की सेना पहुंची तो कनकाजी ने एक दुर्ग में मोर्चा लिया, जो उसने पहाड़ी पर बनवाया था, और इस तरह अपनी रक्षा का इन्तजाम किया। तब खोड़ीदानजी ने महाराजा के पास जा कर कहा, 'अन्नदाता ! यह तो उचित नहीं है कि आप अपने ही एक सरदार के विरुद्ध तोपें ले कर पधारे हैं।'

---

* किराए का सामान्य सिपाही।

1. जब पगड़ी पहनने का रिवाज था तो मृतक के पुत्र, अधीनस्थ और सगे-सम्बन्धी शोक के कारण सफेद पगड़ी बांधते थे। सम्बन्ध के अनुसार इसके लिए दिनों की संख्या में कमी-बेशी होती रहती थी। कुछ सम्बन्धी एक दो दिन और कुछ बारह दिन तक सफेद पगड़ी बांधते थे। मृतक का पुत्र तब तक सफेद पगड़ी बांधता था जब तक कि उसके वरिष्ठ राजा, ठाकुर या किसी रिश्तेदार के यहां से उसे रंगीन पगड़ी बंधवाने की रस्म अदा न हो जाती। (हि. अ.)

उसने तरह-तरह की बातें कह कर महाराजा और कनकाजी को समझाया, परन्तु महाराजकुमार और धीरजी नहीं माने। अन्त में, टींटोई के ठाकुर ने एक निश्चित रकम देकर उनका समाधान किया और इस प्रकार सन्धि हो जाने पर महाराजा अपने पुत्र को लेकर ईडर लौट गया।

इस तरह प्रत्यक्ष में फैसला हो जाने पर भी धीरजी के चित्त को सन्तोष नहीं हुआ और अब उसका क्रोध महाराजकुमार पर उतर पड़ा। घर लौटने के थोड़े ही समय बाद वह भीलोड़ा गांव में से मवेशी उठा ले गया; यह गांव महाराजकुमार को हाथखर्च में मिला हुआ था। तब महाराजकुमार ने धीरजी को उपालम्भ देते हुए पत्र लिखा जिस के उत्तर में ठाकुर ने कहा, 'आपने मेरे नौकरों और घोड़ों को क्यों मरवाया ?' इसके बाद वह खालसे के गांव भूतावड़ में से भी आदमी और ढोर पकड़ ले गया। उसने महाराजकुमार के दूसरे निजी गांव बसाई पर भी धावा किया और तीन या चार रक्षकों को घायल कर दिया। शीलासण, रेंटोड़ा और अन्य गांवों में भी उसने लूटमार की अन्त में, महाराजकुमार दो हजार सेना, अन्य सरदारों और दो तोपों को साथ लेकर वांकानेर पर चढ़ा। धीरजी भी मुकाबला करने को तैयार हुआ। उसने दो सौ सिरबंधिए रख लिए थे। महाराजकुमार ने बसाई आ कर डेरा किया और वहां वह पन्द्रह दिन तक ठहरा रहा। धीरजी ने वहीं रात में आक्रमण करके तोपखाने के अधिकारी अरब को मार डाला और फिर भी साफ निकल कर वापस चला गया। दूसरे दिन महाराजकुमार ने भीलोड़ा में पड़ाव डाला और फिर वांकानेर जा पहुंचा। वहां तीन दिन तक युद्ध हुआ जिसमें महाराजकुमार के दस आदमी और धीरजी के तीन आदमी मारे गए। तब महाराजकुमार ने अपने पिता को लिखा, 'वांकानेर लेने की कोशिश करते तीन दिन हो गए, परन्तु अभी सफलता नहीं मिली है; मदद के लिए और आदमी भेजें।' इस पर महाराजा ने दो सौ पैदल और पचास घुड़सवार और भेज दिए। उस समय बहुत से लोगों ने धीरजी को कहा, 'महाराजा का पुत्र अपनी इज्जत का सवाल बना कर यहां आया है, वह वांकानेर लिए बिना यहां से नहीं हटेगा। अन्त में, तुम हो तो तीन ही गांव के ठाकुर, कहां तक सामना करोगे ? यही क्या कम बड़ाई की बात है कि तुमने तीन दिन तक सभी हमलों को विफल कर दिया। इसलिए अब तुमको लौट जाना चाहिए।' इस पर धीरजी ने अपने महलों में गोठ करने की तैयारी की। उसने सभी झूले के पलंग ठीक करा लिए, सभी मेहमानों के लिए मिठाई और मदिरा की बोतलों के साथ भेंट के कुछ रुपये भी रखे और जब यह सब तैयारियां हो गईं तो वह लौट गया। तब महाराजकुमार ने गांव को लूट लिया और जला दिया, आम और महुवा के पेड़ कटवा दिये तथा कुंओं को भी भरवा दिया। वहां तीन दिन ठहर कर वह ईडर लौट गया। इधर, धीरजी अपने परिवार को लेकर डूंगरपुर पहुंच गया। वहां के रावल ने उसको एक गांव दे दिया जहां उसने अपना निवास कायम किया और वहां से ही ईडर के इलाके में लूटमार व अन्य उपद्रव करने लगा। अन्त में,

महाराजा ने जामिन के रूप में कुछ आदमी भेज कर उसको ईडर बुलवा लिया और उसके साथ राजीनामा कर लिया। उसका गांव उसको लौटा दिया और महाराजकुमार फिर उसको निजी सेवा में रखने लगे।[4]

---

4. धीरजी ने अपने 29 मई, 1821 के पत्र में मेजर माइल्स को लिखा है—

'मुझे आपका पत्र मिला और मैं उसके मतलब से वाकिफ हो गया हूं। आपने लिखा है कि मेरी तरफ से किसी अनुचित व्यवहार के बारे में आपने सुना है। यह बात सही है, परन्तु मैंने अंग्रेज सरकार के इलाके में कोई धाडा नहीं दिया है और न किसी को कभी अकारण तंग ही किया है। मेरे पास ईडर के महाराजा का एक पत्र है जिसको मेरे पास भेजने के बाद उनका मन बदल गया है। उन्होंने मेरा एक गांव छीन लिया और मेरे भाई बन्धुओं के मारे जाने पर भी मुझे कोई मुआवजा नहीं दिया है। उन्हीं के कारण मुझे दस घोड़ों का भी नुकसान हुआ है जिसके लिए मुझे कुछ नहीं दिया गया। महाराजा ने जितने वादे किए थे वे सब झूठे निकले। उन्होंने मेरा गांव खालसा कर लिया और इस बात का भी खयाल नहीं किया कि मैंने चौदह हजार रुपया कर्ज लेकर उनकी खिदमत में खर्च कर दिया जिसमें से उन्होंने मुझे एक छदाम भी नहीं लौटाया; बल्कि मेरे दुश्मनों को मुझे मार डालने को उकसाते हैं। अगर आप चाहें तो महाराजा का लिखा हुआ पत्र आपके पास भेज दूं जिसको पढ़ने के बाद आप मुझे लौटा दें; अगर मेरा कोई कुसूर पाया जायगा तो जैसा आप कहेंगे वैसा ही करने को तैयार हूं। मैं अपने दुश्मनों के या उनके सिवाय जिन पर मेरा दावा है और किसी को तंग नहीं करता। अंग्रेज सरकार तो बड़ी है, लेकिन महाराजा पर मेरा जो कुछ हक है वह मुझे मिलना चाहिए, चांपावतों के पट्टे के जितने गांव उन्होंने खालसा कर लिए हैं उन्हें लौटा देना चाहिए, इसके सिवाय मैं और कुछ नहीं चाहता। मेरी मांग पूरी हो जाने पर मैं अंग्रेज सरकार की खिदमत करने को तैयार हूं। ईडर में मेरे दुश्मन बहुत हैं इसलिए आप अपना कोई आदमी भेज दीजिए जिसके साथ ऊपर जिसका जिक्र आया है, वह कागज भेज दूंगा। मैं उसके लिए चार दिन इन्तजार करूंगा। मेरे दुश्मनों का ऐतबार न करें। मेरा झगड़ा तो ईडर दरबार के साथ है।' इत्यादि

कर्नल वैलेण्टाइन ने बारहठ दामोदर मोहबतसिंह को धीरजी के पास भेजा तो 30 सितम्बर, 1821 ई. को वह इस सूचना के साथ लौट कर आया—

'छावनी से जाने के बाद जल्दी ही धीरजी ठाकुर मुझ से मिला। यद्यपि पहले तो वह अपने मन में अपने किए हुए पर सन्तुष्ट जान पड़ा, परन्तु अन्त में उसने ईडर पर पहले आक्रमण करने की भूल स्वीकार कर ली और पछतावा प्रकट करते हुए लालजी महाराज (उम्मेदसिंह) से किसी तरह समझौता करा →

एक साल बाद महाराजकुमार ने कुछ रुपये देकर धीरजी को काठियावाड़ भेजा और घोड़े खरीद लाने को कहा। वह मानसा के पास वरसोड़ा गया और पूरा रुपया खर्च करके उसने अपना विवाह कर लिया। इससे पहले भी उसके एक स्त्री

देने में मेरी सहायता मांगने लगा। लालजी महाराज उस समय बड़ी भारी फौज लेकर वांकानेर के पास आ पहुँचे थे। जब ठाकुर ने बार-बार मजबूर किया तो मुझे उसकी बात स्वीकार करनी पड़ी और उसने मुझे निम्न शर्तों पर समझौता तय करने का अधिकार दिया—

1. पहली—आज तक की लूट का माल लौटा दिया जाय।

2. दूसरी—वांकानेर की रक्षा के लिए मुझे जो सेना रखनी पड़ी उसके खर्च का कुछ भाग मुझे दिया जाय।

3. तीसरी—मेरे धाड़ों में एक ब्राह्मण मारा गया है उसके एवजाने में मैं कुछ धन या भूमि दे दूंगा; और अन्तिम—

यह कि मैं महाराजा की चाकरी में हाज़िर हूंगा।' इस पर मैं तुरन्त लालजी महाराज के पास गया और सम्पूर्ण परिस्थिति से उनको अवगत करके किसी भी तरह अंगरेज सरकार की जानकारी में सारी बातें पहुंचने से पहले-पहले ठाकुर की अर्जी स्वीकार कर लेने की बात पर बल दिया। लालजी महाराज ने तुरन्त इन्कार कर दिया और कहा कि 'धीरजी ने मेरे खानगी गांवों पर आक्रमण किया है इसलिए मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगा।' और उन्होंने केवल इतना ही समय दिया कि मैं वापस लौट कर धीरजी को उनके इरादे से वाकिफ कर दूं। इसके बाद ठीक समय पर वांकानेर पर हमला हुआ और क्योंकि इस बार धीरजी ने जम कर बचाव नहीं किया इसलिए गांव को पूरी तरह से लूट कर भस्मसात् कर दिया गया है।"

लालजी महाराजा का कर्नल वैलेण्टाइन के नाम 9 सितम्बर, 1821 ई. का पत्र—

"पिछले बारह महीनों से धीरजी ने वांकानेर से हमारे परगनों में बहुत उपद्रव मचाया है और बहुत से किराये के लोगों को रख कर उनको लूटपाट करने के लिए भेजता रहा है। इसके अलावा, वह ईडर के परकोटे में से एक बनिए को भी उठा ले गया। चार मास तक हमारे समझाने पर भी उसने कोई ध्यान नहीं दिया तब हमारे लिए फौज एकत्रित करना आवश्यक हो गया जिसको लेकर हमने वांकानेर पर आक्रमण किया और धीरजी चांपावत को वहां से हटना पड़ा; अब, उसने भागकर डूंगरपुर की सरहद में शरण ली है।"

→

मौजूद थी। अपनी नव-वधू के लिए कपड़े और जवाहरात खरीदने के बाद उसके पास बहुत थोड़े से रुपये बचे जिनसे उसने केवल दो घोड़े खरीदे और ईडर लाकर महाराजकुमार को नजर कर दिया। उम्मेदसिंह ने पूछा, "बाकी रुपया कहां गया?" तब धीरजी ने उत्तर दिया, "वह मेरे मालिक का रुपया था और उसको मैंने अपने काम में खर्च कर दिया, मैं किसी गैर के यहां चोरी करने तो गया नहीं।" महाराजकुमार ने तो कुछ नहीं कहा परन्तु महाराजा ने दबाकर कहा, "हमारा रुपया जमा कराओ।" धीरजी ने कहा, "रुपया पैसा तो मेरे घर में है नहीं, अब आपकी जो मर्जी हो करो।" जब राजा ने उस पर घोड़ों की तलब बैठा दी तो धीरजी ने रुपयों की एवज घांटी गांव लिख दिया। परन्तु, इससे उसके मन को बहुत धक्का लगा और अन्त में, वह फिर विद्रोही होकर अपने परिवार सहित निकल गया। मेवाड़ के जंगली जिलों में पाटिया बलेचा नामक भीलों का गांव है; धीरजी उसी में जा कर एक वर्ष तक रहा और वहां से ईडर के इलाके में धावे मारता रहा। एक बार वह टींटोई के गांव वामनवा से मवेशी उठा ले गया। उसके पास सिर्फ बीस घोड़े थे, परन्तु वह दिन भर में उतने ही स्थानों में धाडे मार लेता था जितने कि आदमी उसके साथ थे।

धीरजी का कर्नल वैलेण्टाइन को 8 सितम्बर, 1821 ई. का पत्र—

"मुझे आपका पत्र मिला, जिसमें मेरे शत्रुओं द्वारा कही गई बहुत-सी मिथ्या बातों का उल्लेख है; परन्तु, यदि आपकी इच्छा हो तो आपको देखने के लिए मैं वह पत्र भेज दूं जो महाराजा ने मुझे लिखा है; उससे ज्ञात हो जायगा कि मैंने जो कुछ किया है उसके लिए मुझे उन्होंने ही बाध्य किया है। एक अवसर पर मैंने उनकी सेवा की और मेरे आठ या दस आदमी तथा आठ-दस घोड़े भी मारे गये या घायल हो गये। ये सब बातें मैं पहले मेजर माइल्स को बता चुका हूँ। महाराजा जब अपने लिखे हुए लेख से मुकर गये तो मुझे उनके परगनों में घुसना पड़ा। महाराजा ने तब मेरे गांव पर हमला करके उसको बरबाद कर दिया, इस पर भी मैंने कोई सामना नहीं किया और वे लगभग पचास हजार का माल लूट ले गये। इन बातों की सचाई के बारे में आप अहमदनगर के महाराजा से दरियाफ्त कर सकते हैं और मेजर माइल्स भी कितने ही मुद्दों पर आप को जानकारी दे सकते हैं। अगर मैं किसी तरह कुसूरवार पाया जाऊँ तो आप मुझे इसके लिए, जैसे चाहें वैसे, जिम्मेदार करार दे सकते हैं। पहले तो महाराजा ने मुझे भड़का दिया और फिर इसके नतीजे भोगने के लिए अकेला छोड़ दिया। अब मैं जंगलों में पड़ा हुआ हूँ। मेरे पास आठ सौ आदमी और एक हजार घोड़े हैं जो भूखों मर रहे हैं। अगर मेरे गांव के बारे में कुछ नहीं किया गया तो विवश होकर मुझे ईडर पर धावे करने पड़ेंगे। इसके अलावा, मैं अपने आदमियों और घोड़ों सहित आपकी सेवा करना चाहता हूँ, क्योंकि अब मैं फिर से महाराजा की चाकरी करना नहीं चाहता।"

फिर भी, ईडर राज्य में लूटपाट करने वाले भील जब कभी उसको मिल जाते तो वह उनके सिर काट कर और वाकायदा टोकरों में रखकर महाराजा की नजर के लिए भेज देता था। जिन गांवों को उसने लूटा, जलाया या जहां से आदमी व जानवर उठा ले गया वे वसाई, वलोली, भीलोड़ा एवं अन्य वहुत से गांव थे; वास्तव में, चारणों को दिए हुये गांवों के अतिरिक्त शायद ही खालसा का कोई गांव बचा हो जहां पर उसने लूटपाट न की हो।[5]

उन्हीं दिनों महाराजा ने एक दिन दरबार में कहा, "मैंने ही इस आदमी को इतना शक्तिशाली और वड़ा बनाया और यह मेरे ही गांवों को लूटता है; यह किसी और रजवाड़े में जाकर अपनी आजीविका का प्रवन्ध क्यों नहीं कर लेता?" जब यह वात धीरजी तक पहुंची तो वह उदयपुर के राणा श्री भीमसिंह[6] के पास पहुंचा। धाडों में अपना पराक्रम दिखाने के कारण धीरजी की प्रसिद्धि बाहर भी पहुंच चुकी थी और महाराणा तो गम्भीरसिंह की वहन के साथ अपने विवाह के अवसर पर ईडर-यात्रा के समय से ही उसको जानता था। इसलिए उसने एक वड़ी जागीर का पट्टा लिख कर धीरजी को दिया। ठाकुर ने जागीर तो ले ली परन्तु पट्टा लेने से इन्कार कर दिया; उसने कहा, "यदि मैं यहीं रह जाऊँ तो लोग समझेंगे कि मैं अपने वाप का हक वापस नहीं ले सका और इससे मेरी इज्जत नहीं रहेगी।" वह चार मास तक उदयपुर रहा और फिर अपने परिवार को मारवाड़ के कूरा गांव में रख कर ईडर लौट आया।

उसी समय कर्नल वैलेण्टाइन ने ईडर के सभी सरदारों को सादड़ा में इसलिए आमन्त्रित किया कि परगने का वन्दोवस्त किया जा सके। उस समय सरदारों में राजा के प्रति वहुत असन्तोष था और कुछ ने तो महाराजा को रकम देने से इनकार भी कर दिया था। कुछ लोगों ने कहा कि देने को उनके पास नकद रुपया नहीं था इसलिए उनके घोड़ों का मूल्य ठहरा लिया जाय क्योंकि वे रियासत के सेवक थे और उनके मस्तक राजा के लिए थे। केवल कूंपावतों ने ठीक-ठीक उत्तर दिया। एक महीने के सलाह मशविरे के वाद अंग्रेज प्रतिनिधि ने मूंडेटी, टींटोई, ठोडड़ा और वांकानेर के ठाकुरों के लोहे की वेड़ियां डाल दीं और दूसरे लोगों को अपनी-अपनी जागीरें महाराजा को सौंप देने को मजबूर किया। वांकानेर के धीरजी को एक

5. कर्नल वैलेण्टाइन का सरकार के नाम 22 मार्च, 1822 ई. का पत्र—

"धीरजी फिर, विना कारण वताये ही, विद्रोही हो गया है। वह वहुत ही घातक अत्याचार करने में लगा हुआ है। भीलोड़ा के पन्द्रह या सोलह ब्राह्मण मार देने का आरोप उस पर लगाया जाता है और अन्य भी वहुत से घातक कर्म उसने किये हैं।"

6. उदयपुर की गद्दी का 64वां महाराणा (1778–1828 ई.)

चारण की साख देकर बुलाया गया था। वह पैंतीस हथियारबन्द साथियों के साथ आया, परन्तु महाराजा ने उन सबको हटा दिया और केवल उसके भतीजे ऊदाजी को, जो बिल्कुल जवान था, उसके साथ रहने दिया। जब सरकारी सिपाही धीरजी को गिरफ्तार करने आये तो ऊदाजी ने उनमें से कुछ को मार डाला, कुछ को जख्मी कर दिया और फिर स्वयं भी काम आ गया।

सोरठा दूहा[7]

भाई तणें शिर भार, पड़ियो धीरा ऊपरे,
शत्रां बजाड़े सार, अपछर वरियो ऊदलो ।। 1 ।।

कर आरब कटकाह, अशण प्रगातल पाड़िया,
बवे होय कटकाह, एकल बावे ऊदला ।। 2 ।।

छः महीने तक कैद रहने के बाद धीरजी ने बेड़ियां तोड डालीं और किले की दीवार पर चढ़ कर भाग गया। मूंडेटी का ठाकुर चार महीने कैद में रहा, फिर उसने जमानत दाखिल की और महाराजा का दावा चुकता किया तब उसको छोड़ दिया गया। इसी प्रकार और उसी समय टींटोई व ठोडड़ा के ठाकुरों को भी रिहा कर दिया गया।[8]

---

7. जब उसके भाई धीरा के सिर पर भार पड़ा तो शत्रुओं के सामने तलवार बजाते हुए ऊदा ने अप्सरा का वरण किया।

उसने अरबों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए; शत्रुओं को पैरों तले रौंदा और एक-एक बार में शत्रुओं के दो-दो टुकड़े कर दिये; ऐसा था ऊदा।

8. धीरजी के कारनामों पर कर्नल वैलेण्टाइन का स्मरण-पत्र दिनांक 30 अक्टूबर, 1822 ई०

"धीरजी ने जो ब्राह्मणों की हत्या एवं अन्य अपराध किए हैं उनके बारे में सरकार को पूरा विवरण पहले भेजा जा चुका है; उसके लिए आज्ञा हुई थी कि उस पर जुर्माना किया जाय, उसको बन्दी बनाया जाय और उसकी जागीर उसके निकटतम सम्बन्धी को दे दी जाय। उसको दण्ड देने के लिए सेना भेजी गई परन्तु, उसी समय उसने दामोदर मोहब्बतसिंह बारहठ को भेजकर अधीनता प्रकट की। इसके बाद जब कर्नल वैलेण्टाइन ने गायकवाड़ के लिए खंडणी का बन्दोबस्त करने आदि के लिए अन्य सरदारों को डभोरा में एकत्रित किया तो धीरजी को भी बुलाया और उसको यह सूचित कर दिया कि गम्भीरसिंह के विरुद्ध उसकी जो कोई शिकायतें हों वह प्रत्यक्ष में प्रस्तुत करे। धीरजी ने इसके लिए साख मांगी तो उसके सन्तोष के लिए वह गम्भीरसिंह की ओर से दिला दी →

धीरजी जब बड़ोदा में कैद था तो उसने शामला जी की बोलारी बोली थी कि यदि वह जेल से निकल कर भाग सकेगा तो देवता के मन्दिर में बहुमूल्य भेंट चढ़ावेगा। अन्त में, वह दीवारपर चढ़कर निकल गया तो सीधा भाग कर मन्दिर में गया और वहां अपनी मनौती पूरी की। वहां से वह चुपके से काठियावाड़ चला

गई। वह आ गया, उसका उत्साह बढ़ाया गया, उसके निर्वाह के लिए रकम दी गई और बड़ी कठिनाई से गम्भीरसिंह के साथ समस्त चांपावतों की जागीरों का प्रबन्ध निश्चित किया गया। बाद में, जमानत मांगी गई तो धीरजी देगांव जाने के बहाने से भाग गया। मार्ग में उसने बसाई से आदमी पकड़ लिए, अहमदनगर के एक बोहरा को मार डाला, भीलोड़ा से मवेशी उठा ले गया और अन्य बहुत से अपराधपूर्ण धाडे कर डाले। अब उसने दांता में रहने वाले युवक ठाकुर गोपालसिंह और ठोडड़ा के पहाड़सिंह को अपने साथ मिला लिया और इन तीनों ने मिल कर पत्र लिखा है कि वे इलाके को लूट लेंगे। धीरजी पहाड़ियों में चला गया और तत्परता से उसकी खोज की गई। जब भाटी पहाड़जी, कनका जी और अन्य लुटेरों को पकड़ लिया गया तो धीरजी आतंकित हो कर उदयपुर भाग गया। वहां महाराणा और उसके सरदारों को धीरजी द्वारा किये गए अत्याचारों का पूरा पता नहीं था इसलिए उन्होंने वहां के रेजीडेण्ट (सर डेविड आक्टरलोनी) की मध्यस्थता का उपयोग किया, जिसने महाराणा की प्रसन्नता के लिए कर्नल बैलेण्टाइन को धीरजी की शिफारिस करते हुए पत्र लिखा कि उसके अपराधों को दर-गुजर करते हुए भविष्य में गम्भीरसिंह के साथ ऐसा तसफिया करा दिया जाय जो न्यायोचित और ठीक हो। इस पर कर्नल बैलेण्टाइन ने रेजीडेण्ट को लिखा कि धीरजी को सादड़ा भेज दिया जाय। धीरजी ने उस महाशय (रेजीडेण्ट) के सामने ही गोपालसिंह के साथ आने की तैयारी की, उससे 'सीख' मांगी और उसका पत्र व अपने साथियों को साथ लिया तथा महाराणा के एक प्रतिष्ठित कर्मचारी लालजी पुरोहित को लेकर वह रवाना हुआ। बाद में, गोपालसिंह को तो धीरजी ने अत्यन्त भयभीत करके उसकी जागीर के कुछ हिस्से का त्यागपत्र लिखवा कर उदयपुर में ही छोड़ दिया और रास्ते में उसके नौकरों से जवाहरात छीन लिए तथा जहां-जहां उसने रुपये पैसे व कपड़े-लत्ते जमा कर रखे थे वहां-वहां से वे सब बटोर लिए। सादड़ा पहुंच कर उसने कहा कि गोपालसिंह की ओर से भी कार्यवाही करने को वह अधिकृत था। लालजी पुरोहित की उपस्थिति में वह राजनीतिक प्रतिनिधि (पोलिटिकल एजेण्ट) के सामने पेश हुआ और गोपाल सिंह को बुलाने व उसकी साख देना उसने स्वीकार किया और इस विषय में लिखावट लिखकर पहाड़जी व कनकाजी की उस पर साक्षी करवा दी। तब धीरजी को गुजारे के लिए रकम देकर घर जाने की सीख दे दी गई।

गया, जहां उसने कुछ घोड़े खरीदे और उन पर सवारों को बैठाकर वापस ईडर के इलाके में घुस गया तथा अपना उपद्रव मचाने का वही पुराना तरीका फिर अख्तियार कर लिया। अब की बार कर्नल वैलेण्टाइन ने गांव-गांव में थाने बैठा दिये, परन्तु धीरजी उन पर रात को आक्रमण करता और बहुत से सिपाहियों को मार डालता। एक बार जब उसने एक गांव के कुछ आदमियों को पकड़ लिया तो कुछ सरकारी सैनिकों और ईडर के सिपाहियों ने उसका पीछा किया। एक गहरी और चौड़ी खाई रास्ते में आई जिस पर धीरजी ने बेधड़क होकर अपनी घोड़ी कुदा दी। तब उसने मुड़कर कहा, "तुम में से कोई खाई लांघ सकता हो तो आ जाओ।" किसी की भी हिम्मत नहीं हुई।

वहां पहुंच कर उसने सरकारी थाना हटाए जाने की दरख्वास्त की जो स्वीकार कर ली गई। उसने तो गोपालसिंह को नहीं बुलाया परन्तु उस ठाकुर ने जब सुना कि बन्दोबस्त के काम में प्रगति हो रही है तो वह स्वयं तुरन्त ही सादड़ा आ पहुंचा और हाजिर हो गया। तब धीरजी को बुलाया गया तो उसने नौकर के हाथ अहमद नगर से लिखा हुआ उत्तर भेजा परन्तु उस पर मिती बांकानेर की थी। जब नौकर से पूछा गया कि उसका ठाकुर कहां था तो उसने कहा 'बीजापुर में।' कर्नल वैलेण्टाइन ने तब उसके जमानतदारों को धर दिया व उस पर मोसल (वसूल करने वाले सिपाही) कायम कर दिये। फिर, धीरजी सादड़ा पहुंचा तो कर्नल वैलेण्टाइन ने कई दिनों तक उसको नित्य तसफिए के लिए बुलाया और दिन पर दिन बीतने लगे परन्तु जब कुछ भी तय नहीं हुआ और उसके जामिन भी आगे भरोसा देने को इनकार हो गए तो उस पर मोसल बैठा दिए गए। तब धीरजी ने जाहिर किया कि यदि मोसल नहीं हटाए गए तो वह आत्मघात कर लेगा और बाद में न जाने क्या होगा क्योंकि उसके साथी उसके नियन्त्रण में नहीं थे।'

15 नवम्बर, 1823 ई०

"धीरजी पर मोसल बैठाए हुए दस दिन हो गए हैं; तभी से उसका आचरण उद्दण्ड और धमकी भरा हो रहा है; वह कहता है अपने लिए तो आवश्यक साख दिला सकता है परन्तु अपने सशस्त्र सिरबंधियों के लिए कुछ नहीं कह सकता, जिनको साथ लेकर वह छावनी में आता जाता है और लगातार अपने वचन की अवहेलना कर रहा है... जैसी कि उससे आशंका थी, धीरजी ने हुज्जत व जिद करके अपने सशस्त्र सिपाहियों में कमी करने के मेरे प्रयत्नों की अवज्ञा की है; इसके नतीजे में जब लड़ाई हुई तो उसका एक आदमी एक अरब पर वार कर रहा था कि उसी के द्वारा धीरजी की पीठ में एक घाव लग गया। इसी झगड़े →

इसके वाद टींटोई के ठाकुर का लड़का लाल जी भी धीरजी के साथ हो गया और फिर दोनों धाड़ैती मिल कर डूंगरपुर के जंगलों में चले गए, जहां उनको शरण मिल गई और वहां से ही दे दोनों ईडर के इलाके में लूटमार करने लगे।

उस समय डूंगरपुर के रावल की अवस्था वत्तीस वर्ष की ही थी, परन्तु उसके माथे में यह वात घर कर गई कि उसके पुत्र नहीं होगा इसलिए उसको किसी-न-किसी को गोद ले लेना चाहिए। इस कारण उसने देवलिया के राजकुमार दलपत-सिंह को वुलाया, जो उसी के कुल का था, और लिखत में उसको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। यह नवयुवक राजकुमार वाहरवाटियों के पक्ष में नहीं था। इस वात को देख कर उनको भी अपनी स्थिति पर भरोसा नहीं रहा और उन्होंने अपने परिवारों को शामलाजी के पड़ोस के गांव में भेज दिया। परन्तु, वे स्वयं डूंगरपुर के इलाके में ही वने रहे और ईडरवाड़े को लूटते रहे। इस पर नवयुवक राजकुमार ने चुपके से कुछ लोगों को कहा कि जो कोई मुझे उन वाहरवाटियों को दिखाएगा उसको इनाम दिया जाएगा।

एक वार धीरजी की आंखों में तकलीफ हुई और वे सूज गई, इसलिए वह और लालजी डूंगरपुर के रावल के किसी गांव में आए थे। उन्होंने एक आदमी को रसोई वनाने के लिए रखा। डूंगरपुर के राजकुमार को जव यह वात ज्ञात हुई तो वह एक सौ सवार लेकर रवाना हुआ और उस गांव में जा पहुंचा तथा उसने नक्कारे पर

में एक अरव और उसके दो आदमी सख्त घायल हुए, जिनमें से एक वाद में मर गया।

मण्डल

निदेशक न्यायालय

वम्वई सरकार का कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के नाम पत्र

1 सितम्वर, 1826 ई०

"तीनों ठाकुरों (धीरजी, कनकाजी और पहाड़जी) को अन्त में वड़ोदा में स्थानान्तरित कर दिया गया क्योंकि उनका महीकांठा में रहना ठीक नहीं समझा गया; (ईडर के) राजा को भी यह स्पष्ट कर दिया गया कि उनके वड़ोदा भेजे जाने से उनकी आधीनता में किसी प्रकार का अन्तर आने की संभावना नहीं है। उनकी जागीरों का प्रवन्ध उनके निकटतम सम्वन्धियों द्वारा कराने और स्वयं उनके व परिवार के खर्चे का भी वन्दोवस्त करा दिया गया जिनको उनके साथ वड़ोदा जाने की आज्ञा नहीं मिली थी। 24 सितम्वर, 1824 ई० को टींटोई के ठाकुर के पुत्र लालजी (जो जेल में ही रहा) की सहायता से धीरजी वड़ोदा जेल से भाग गया और महीकांठा में उपद्रव मचाने लगा जिसके कारण उसका पीछा करने के लिए डीसा से कुछ फौज भेजनी पड़ी।"

चोट की। नक्कारे की ग्रावाज सुनकर धीरजी व लालजी अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो कर भागे; डूंगरपुर के सवारों ने उनका पीछा किया और जब वे नजर में आए तो कहा, 'यह क्या, राजपूत होकर भागते हो ?' तब धीरजी ने कहा, 'तुम लोग बहुत हो और हम दो ही हैं इसलिए भागना जरूरी है।' परन्तु, उसके साथी ने अपने घोड़े की चाल धीमी कर दी और इतने ही में डूंगरपुर के सवारों ने उसको जा पकड़ा। लालजी का घोड़ा अब अड़ गया और एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा। इसी समय एक अरब ने अपनी तलवार से घोड़े पर वार किया पर तुरन्त ही लालजी की तलवार का वार उस पर हुआ। दूसरे सवार ने लालजी पर अपना भाला चलाया परन्तु वह वार बचा गया और उसने लपक कर हमलावर को मार गिराया। घोड़ा अड़ा हुआ था इसलिए लालजी नीचे उतर गया और दो अन्य हमलावरों को खत्म करके स्वयं भी मारा गया। धीर जी ने समझा कि लालजी भी पीछे पीछे आ रहा है इसलिए वह अपना घोड़ा दौड़ाता चला गया।[9]

बाद में ऐसा होने लगा कि जब कभी यह खबर मिलती कि अमुक गांव में

---

9. अंग्रेजी दफ्तर के अभिलेखों में दर्ज है कि 'मेजर थामस फौज लेकर धाड़ैतियों के पीछे डूंगरपुर गया और 11 मार्च, 1825 ई. को उसने किला ले लिया। फिर जून के महीने में डूंगरपुर के युवक राजकुमार ने लालजी को मार दिया। उसके इस काम से उसका गोद लेने वाला पिता बहुत अप्रसन्न हुआ।'

सोरठा

पाटण घोड़ा पाय, मगरी रही मेवाड़री;
आभो ऊंडल मांह, धारे तो ले धीरतो ॥1
मालव धरती मांडि, पूना लग धाहां पड़े;
कलकत्ते कामाड़, धाके जड़ियां धीरता ॥2
तूं धीरा तरवार, नव सहसा झालत नहि;
नक्षत्री निरधार, खंड नवे होते खरी ॥3

मेवाड़ के मगरों (पर्वतों) में रह कर पाटण के मैदान में अपने घोड़ों को पानी पिलाता है; यदि वह धीरजी ऐसी धारणा कर ले तो आकाश को अपनी बाहों में ले ले ॥ 1 ॥

धीरजी की धाक से मालव मही से पूना तक धांह (धाक) पड़ रही है (त्रास फैल रही है) और उसके डर से कलकत्ता शहर के दरवाजों के किवाड़ बन्द रखने पड़ते हैं ॥ 2 ॥

हे धीरा ! यदि तू ने साहस करके नए प्रकार से तलवार न सम्हाली (पकड़ी) होती तो निश्चय ही पृथ्वी के नवों खण्ड नक्षत्री (क्षत्रियविहीन) होते ॥ 3 ॥

अमुक के घर पर धीरजी ने सीरावण (प्रातःभोजन) किया है तो तुरन्त ही पचास सरकारी घुड़सवार वहां पहुंच जाते और वहां के निवासियों को बहुत तंग करते। एक बार धीरजी अपने ही गांव में आया जो एक चारण के गांव के पड़ोस में था। राजा ने चारण पर यह शक करके कि यह धीरजी से मिला हुआ है, उस पर दो घोड़ों की तलब बैठा दी। धीरजी ने जब यह बात सुनी तो वह तुरन्त उस गांव में पहुंच गया और उसने दोनों सवारों पर हमला कर दिया, जिनमें से एक तो मारा गया और दूसरा किसी तरह निकल भागा। तब वह चारण भी तुरन्त ही बाहरवटिया के सामने 'त्रास' प्रदर्शित करने लगा; उसने अपनी भुजा और जांघ पर घाव कर लिए और अपने ही परिवार की एक वृद्धा के गले में कटार भोंक दी। जब महाराजा ने घुड़सवारों पर हमले की बात सुनी तो उसने कहा कि अवश्य ही उस चारण ने इसके लिए धीरजी को उकसाया होगा इसलिए उसके गांव पर सेना भेज दी, परन्तु बाद में छानबीन करने पर मामले की पूरी असलियत सामने आ गई।

अब, धीरजी अपने मित्रों के गांवों की भूमि में होकर निकलने में भी खबरदारी बरतने लगा; वास्तव में, उसका सच्चा मित्र कोई था भी नहीं। उसने अपना निवासस्थान तो मेवाड़ की पहाड़ियों में बना लिया था, परन्तु धावे पाटण तक मारता था; प्रायः सरकारी सैनिकों को सताता था और गांवों में से आदमी व ढोर पकड़ ले जाता था। बाद में, उसने रायगढ़ के आसपास के इलाके में हमले करना शुरू किया। वह लगभग चौदह वर्ष तक बाहरवाट रहा।

अन्त में, 1827 ई. में जब वह ईडर के डूंगरों में छुपा हुआ था तो वहां पर उसके कुछ मित्रों ने उसके उपयोग के लिए बारूद भेजी जिसे सुखाने के लिए जाजम पर फैलाया गया था, तब किसी पहरेदार सिपाही के तोड़े में से आग की चिनगारी उस बारूद पर पड़ गई और वह भभक उठी। इसी दुर्घटना में धीर जी घायल हो गया और अन्त में मर गया। मृत्यु के समय उसकी अवस्था पैंतालीस वर्ष की थी। धीरजी का कद छोटा और शरीर दुबला था। अपने धाडों के कारण उसने ईडर के किसी भी महाराजा से अधिक प्रसिद्धि अर्जित कर ली थी। उसके पराक्रमों की गाथा महीकांठा भर में कही जाती है और स्त्रियों के गीतों व चारणों के छन्दों में गाई जाती है।

धीरजी की मृत्यु के समय उसका परिवार मारवाड़ में था। उसकी दो ठकुरानियों में से एक चावड़ी को धीरजी के पहनने की पगड़ी दिखा कर उसकी मृत्यु के समाचार कहे गये; तब वह अपने पति की उसी पगड़ी को निशानी लेकर चिता

पर चढ़ कर भस्म हो गई। उसके कोई सन्तान नहीं थी। दूसरी विधवा एक लड़के और एक लड़की को लेकर वांकानेर चली गई।[10]

●●

---

10. इस विद्रोही ठाकुर को काबू में लाने के लिए ब्रिटिश अधिकारियों ने जितने प्रयत्न किये वे सब निष्फल हुए। इसका एकमात्र कारण बम्बई संरकार ने यही बताया कि महीकांठा के सभी सरदार उसके धाडों में सहायता करते थे, इसलिए बड़ोदा के रेजीडेण्ट को आज्ञा मिली कि वह धीरजी से समझौता करे, उसकी शिकायतों की तहकीकात करने का आश्वासन दे और उनमें जो वाजिब साबित हों उनको दूर करे। उस समय बम्बई रेजीडेन्सी का अधिकारी मिस्टर विलवाइ था; उसने बाहरवटिए धीरजी से खतो किताबत शुरू की और इसमें कुछ प्रगति हो ही रही थी कि धीरजी की मृत्यु के समाचार मिल गए, जिसकी रिपोर्ट उन महाशय ने 6 अगस्त, 1827 ई. को दी। दुर्घटना होने के बाद भी वांकानेर का ठाकुर छः दिन तक जीवित रहा और जब उसने अपना अन्त निकट देख कर घटना की पूरी सूचना देने के लिए एक राजपूत को मिस्टर विलवाइ के पास भेजा और उसके द्वारा प्रार्थना कराई कि वह उसके परिवार का संरक्षण करे।

प्रकरण तेरहवां

ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह (2)

महाराजकुमार उम्मेदसिंह सन् 1824 ई० में शीतला के रोग से सत्ताईस वर्ष की अवस्था में ही मर गया। उसकी दो पत्नियां उसके साथ सती हुई; एक थूरोल के चौहान ठाकुर की पुत्री थी और दूसरी मानसा के चावड़ा की। इनके अतिरिक्त एक पड़दायत भी उसके साथ सती हुई। महाराजकुमार के दो और भी कुंवरानियां थीं, परन्तु उनके सत नहीं चढ़ा; वे वांसवाड़ा और देवलिया के राजाओं की पुत्रियां थीं, जो विधवा होकर अपने-अपने पीहर चली गईं।

(कुंअर उम्मेदसिंह का गीत)*

देण मोज आघाट गज वाज अत, दूथियां, ज्ञान गंभीर सुत समत गूढ़ो;
चाव चित रखण चहुआण अर चावड़ी, वभो सुरपत तणो लेण वूढो। 1

---

* कवियों को प्रसन्न होकर मौजे (गांव), वहुत से हाथी घोड़े दान में देने वाला, गूढ़ सुमतिवाला गम्भीरसिंह का पुत्र अपना मन रखने वाली चहुआणी और चावड़ी पत्नियों के साथ इन्द्र का वैभव लेने चला गया ॥ 1 ॥

शत्रुओं के लिए शल्यरूप, दक्षिणी (मरहठों) के दल को तोड़ने वाला, तलवार के वल से प्रचण्ड शत्रुओं को डाटने वाला, जिसका भाल प्रकाशमान सूर्य के समान तेज से ज्वलन्त था, मैं कहता हूं (उसका स्तवन करता हूं), वही लाल (लाड़ला) सतियों सहित सुरलोक को सिधार गया ॥ 2 ॥

इस इला (पृथ्वी) पर हे हरि! तुमने यह बुरा क्यों किया? मांगने वालों की गरज अभी पूरी नहीं हुई; रानियों में तिलक के समान रानियों को भी राठौड़ ने अपने साथ ले लिया; वह स्वर्ग की परियां वन गईं और उम्मेद सिंह इन्द्र वन गया ॥ 3 ॥

चौहाणी के स्वामी (पति) पर चंवर डुल रहे थे, वह कवियों की दौलत था, वह जोधा का वंशज हिन्दुओं का सूर्य अपने एहनाण करने के लिए (कीर्ति प्राप्त करने के लिये) शक्र (इन्द्र) के भुवन का स्वामी वनकर चला गया ॥ 4 ॥

जव तक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे तव तक यह गजसिंह का वंशज परमपद को भोगेगा, वह आशीष पूरी होगी; उम्मेदसिंह देवताओं का वैभव प्राप्त करेगा और फिर वह भू-रा (पृथ्वी का) राठौड़ गोलोक को प्राप्त हो जायेगा ॥ 5 ॥

साल सम वादियां, दखरा दल साझणो,
झाल अर डाटणो, खगां बल झोक;
तरण जेम भाल उद्योतकारी तवां,
लाल सतियां सहित गयो सुरलोक ।। 2
करी खोटी हरी अला उपर कहां,
सरी न हस पातां गरज सा भेद;
राणियां तलक साथे करी राठवड़,
अमरची पर अंद्र हुयो उमेद ।। 3
चमर ढलतां थकां साम चहुवाण रो,
आथ कवियांण रो, करन एहनाण;
धणी होय मालियो कुंवर जोधांण रो,
भुवन शक्र तणे हिन्दुवाण रो माण ।। 4
सूर अर शशि लग हरो गजसाहरो,
परमपद पामसी असी पूरो;
भेटशे वभो सुरतणो उमेऽसी,
भेटशे पछी गौलोक भूरो ।। 5.

ईडर के एक ब्राह्मण ने जब महाराजकुमार की मृत्यु के समाचार सुने तो उसे बड़ा सोच हुआ कि अब राज्य की क्या दशा होगी ? इसी शोक के आवेग में उसने अपना सिर अनाज भरने की कोठी पर दे मारा; उस कोठी पर एक भारी बाट पड़ा हुआ था, वह उस ब्राह्मण के सिर पर आ गिरा और वह मर गया। महाराजा ने माथासूल नामक गांव कूंपावतों से ले लिया था, वही उस ब्राह्मण के पुत्र को दे दिया, जो आज तक उसी के वंश में चला आता है।[1]

इसके बाद 1828 ई. में मूढ़ का ठाकुर गोपालसिंह बागी हो गया क्योंकि महाराजा ने उसकी जागीर के गांवों को लूट लिया था। उसके पास बीस सवार थे; उन्हीं को साथ लेकर वह अपने गांव चित्रोड़ चला गया। वहां का एक महाजन मर गया था इसलिए ईडर का एक वनिया भी अपनी स्त्री व बाल-बच्चों सहित उसके 'नुकते' में जीमने आया था। वे लोग वहां पर चार दिन रहे और फिर ठाकुर से 'सीख' लेकर घर के लिए रवाना हुए; वे सब लोग कोई एक सौ के करीब थे। चित्रोड़ के महाजन कुछ दूर तक उनको पहुंचा कर लौट आए परन्तु गोपालसिंह अपने आदमियों

---

1. कर्नल वैलेन्टाइन ने 17 मई, 1824 ई० के दिन ईडर के महाराजा के इकलौते पुत्र की मृत्यु के बारे में रिपोर्ट की है; इसके बाद ही 27 मई को लिखता है "लालजी साहब की तीन रानियां उनके साथ सती हो गईं, गम्भीरसिंह शोक से बहुत व्यथित हैं।"

सहित उन पर-गांववासियों के पीछे गया और सब को पकड़ कर पहाड़ियों में ले गया। जब यह खबर ईडर पहुंची तो वहां के महाजन इकट्ठे होकर रोते-चिल्लाते हुए महलों में गए। राजा ने एक ऊपर की खिड़की में से झांक कर कहा, 'यह क्या है ?' महाजनों ने उत्तर दिया, 'हमारे कुछ लोग एक नुकते में जीमने गए थे, वहां उन सब को पकड़ कर गोपालसिंह ले गया। आपने हमारे मालिक हो कर क्या किया ? यदि हमारे सिर पर कोई 'धणी' होता तो क्या कभी ऐसा हो सकता था ?' तब राजा ने कहा 'तुम्हारा धणी तो रमलेश्वर तालाब[2] के पास सो रहा है; अब तुम्हारा धणी कौन है ? मैं तो बुड्ढा आदमी हूं।' फिर भी, उसने कुछ फौज एकत्रित की और मढ़ व चित्रोड़ तक चढ़ाई की, परन्तु असफल हो कर लौट आया। महाजनों ने अब फिर हल्लागुल्ला मचाना शुरू किया और अपनी मुसीबतों की शिकायतें करने लगे; वे यह भी सन्देह करने लगे कि गोपालसिंह की कैद में जो स्त्रियां थीं वह उनकी आबरू ले रहा था। इस पर महाराजा ने अपने सिर से उतार कर पगड़ी अलग रख दी और एक कपड़ा लपेट लिया। उसने कहा 'तुम्हारे आदमियों को छुड़ा कर लाऊंगा तब ही पगड़ी बांधूंगा।' उसने अपने मन में शपथ ली कि ऐसा तभी होगा जब गोपालसिंह मारा जाय।

अब, गोपालसिंह ने फिरौती की रकम लेकर महाजनों को तो छोड़ दिया और वह स्वयं अपने परिवार सहित मढ़ की पहाड़ियों में जा कर रहने लगा तथा ईडर के इलाके में लूटपाट करने लगा। अन्त में, महाराजा ने फौज एकत्रित करके मढ़ के समीप भवनाथ महादेव के पास पड़ाव डाला और (बीजापुर के) बारहठ दामोदर मोहब्बतसिंह की साख देकर गोपालसिंह को बुलाया। जब मढ़ का ठाकुर आया तो महाराजा ने उसकी बहुत आवभगत की और उन दोनों ने साथ बैठकर कसूंभा पिया। उस समय महाराजा ने कहा, 'तुम तो मेरे पुत्र हो, तुम्हारे बराबर मेरा कौन होगा ? तुम्हें देखता हूं तो मुझे ऐसी खुशी होती है जैसे उम्मेदसिंह को ही देखा हो।' इस तरह की बातचीत करके उसने गोपालसिंह को पुनः मढ़ का ठाकुर बना दिया। इसके बाद महाराजा बराबर यह कहने लगा, 'मुझे तो गोपालसिंह को देखे बिना भोजन ही अच्छा नहीं लगता।' और इसलिए उसने उसको ईडर बुलवा लिया।

1830 ई. में महाराजा अपने लवाजमे के साथ रियासत का दौरा करने निकला उस समय उसने पोसीना जिले के खेरोड़ गांव के ठाकुर बुधसिंह को पकड़ कर उसके बेड़ियां डाल दीं। इसकी हकीकत यों है—

हडाद-पोसीना का ठाकुर 1828 ई. में मर गया; उसके एक पुत्र पर्वतसिंह था जो उस समय यद्यपि अट्ठारह वर्ष का हो गया था परन्तु कुछ जनाने किस्म का

---

2. यहां उसका आशय उम्मेदसिंह से था क्योंकि उसी की छतरी उस तालाब के पास बनी हुई है।

था। उसके दो निकट सम्बन्धी जामतसिंह और बुधसिंह थे। इनमें से पहला तो असली हकदार को ही गद्दी पर बिठाना चाहता था, परन्तु दूसरा स्वयं ही बैठने को तैयार हो रहा था। जब और कोई उपाय नहीं चला तो बुधसिंह ने ईडर आकर महाराजा को कहा, 'यदि आप मुझे गद्दी पर बिठा देंगे तो पोसीना की जागीर में से चौथा हिस्सा आपको लिख दूंगा।' महाराजा ने यह स्वीकार कर लिया। जब ठाकुर के लड़के और जामतसिंह को खबर हुई तो वे भी ईडर गए और उन्होंने महाराजा को कहा, 'असली वारिस होते हुए किसी दूर के रिश्तेदार को गद्दी पर बिठाने की परम्परा नहीं है।' तब महाराजा ने कहा, 'वह जागीर में से चौथा भाग मुझे देना स्वीकार करता है, इसलिए मैं उसी को गद्दी पर बिठाऊंगा।' जब उन्होंने देखा कि और कोई उपाय नहीं है तो कहा, 'हम भी चौथा हिस्सा दे देंगे।' गम्भीरसिंह ने कहा, 'चौथा हिस्सा देना तो वही स्वीकार करता है, तुम क्या ज्यादा देते हो जो तुमको गद्दी दी जाय?' अन्त में बहुत कुछ-हील हुज्जत के बाद युवक ठाकुर ने जागीर का तीसरा हिस्सा छोड़ने की लिखत करदी और जामतसिंह राजा की आज्ञा से उसको गद्दी पर बिठाने के लिए पोसीना रवाना हो गया। बाद में, बुधसिंह गया और उसने छः आने[3] हिस्सा छोड़ना मंजूर कर लिया तब यह हुक्म भेजा गया, 'ठाकुर के पुत्र को गद्दी पर बिठाने से पहले यहां चले आओ।' जामतसिंह लौट आया। महाराजा ने कहा, 'बुधसिंह छः आने हिस्सा देता है, इसलिए गद्दी बुधजी की है।' इसी तरह दो महीने तक कशमकश चलती रही और अन्त में, युवक ठाकुर ने आधी जागीर छोड़ना मजूर कर लिया। तब महाराजा ने सुबेर के राजकुमार को पचास बन्दूकचियों, पचास सवारों, एक हाथी, नक्कारा और चांदी की छड़ी साथ देकर ठाकुर के लड़के को गद्दी पर बिठाने और साथ ही आधी जागीर सम्हाल लेने को भेजा। तदनुसार राजकुमार ने जा कर पर्वतसिंह को गद्दी पर बिठा दिया। इस पर बुधसिंह खेरोड़ जाकर अपने घर पर रहने लगा और वहां से पोसीना की जागीर को नुकसान

---

3. हिन्दुओं में हर एक चीज आनों में या रुपये के सोलहवें भाग में विभक्त की जाती है। वेल्स (Wales) में भी ऐसी ही एक प्रथा अब तक प्रचलित है। जलपोत के विभिन्न भागीदारों से सम्बद्ध एक अभियोग चल रहा था; उसमें सभी साक्षी वेल्स के थे। वे जब अपनी बात कहते थे तो वह सब वाहन के भार से सम्बद्ध होती थी, यह सुनकर सब को आश्चर्य होता था। इसका सारांश दुभाषिए ने इस प्रकार किया—'जब वाहन बनाया जाता है तो उसका खर्चा चौंसठ भागों में बांट दिया जाता है; सब भागीदारों द्वारा मिलकर जो भाग रखा जाता है वह एक पाउण्ड एवर्डोपाइज माना जाता है। इस प्रकार $\frac{4}{64}$ जिसका भाग हो उसे एक औंस का भागीदार कहा जायगा; $\frac{2}{64}$ वाला आधे औंस का हिस्सेदार होगा और $\frac{1}{64}$ भाग वाला पाव औंस का हिस्सेदार।

पहुंचाने लगा जिसकी शिकायत नए ठाकुर ने ईडर पहुंचाई। महाराजा ने बुधसिंह को ईडर बुलाया परन्तु उसने, यह समझकर कि उसको वहां मरवा दिया जायगा, इस आज्ञा का पालन नहीं किया। फिर, साख देकर उसको बुलाया गया और वह आ भी गया, परन्तु महाराजा के प्रति उसके मन में सन्देह ही बना रहा। उन्हीं दिनों सिरोही का एक कारभारी किसी काम से ईडर आया हुआ था। बुधसिंह जाकर उसी के साथ ठहर गया। महाराजा ने उसको दरबार में बुलाकर बुरा-भला कहा परन्तु बुधसिंह ने कोई परवाह नहीं की। महाराजा ने उसको पकड़ने का इरादा तो किया था परन्तु उस समय यह सोचकर इसको प्रकट नहीं किया कि शायद सिरोही का कारभारी इसका विरोध करे इसलिए उस समय तो बुधसिंह को कुछ कह सुनकर ही सीख दे दी गई। उसने घर लौट कर अपनी वही पहले वाली पोसीना के पट्टे के गांवों को ज्यादा से ज्यादा नुकसान पहुंचाने की हरकतें चालू कर दीं। महाराजा ने उसको फिर साख देकर ईडर बुलाया परन्तु ठाकुर ने साफ इनकार कर दिया कि अब वह ईडर नहीं जायगा। तब गम्भीरसिंह ने उसके दो कामदारों (एक ब्राह्मण और एक चारण) को यह कहकर फोड़ लिया कि यदि वे अपने मालिक को दरबार में पुनः हाजिर होने को बाध्य करेंगे तो उन्हें एक-एक गांव दे दिया जायगा। इस तरह जाल में फंसकर बुधसिंह ईडर आ गया और राजा ने बहुत ही सम्मान के साथ उसका सत्कार किया तथा पूरी सतर्कता से पहले का सन्देह दूर करने के लिए उसको दरबार में बुलाया। उधर मीरू नामक सिंधी जमादार को बुधसिंह को पकड़ने का निर्देश दिया गया और उसने इस काम को उस वक्त किया जब वह अपने डेरे से दरबार में जा रहा था। मीरू ने उसको बेड़ियां पहना दीं।

जब 1830 ई. में महाराजा दौरे पर निकला तो बुधसिंह को भी बन्दी के रूप में साथ ले गया; परन्तु दो महीने बाद नीति में कुछ परिवर्तन हो गया और उसको साख पर छोड़ दिया गया; उसकी खेरोड़ की जागीर लौटा दी गई और अन्य प्रकार से भी उसे सन्तुष्ट किया गया। घर पहुंच कर बुधसिंह ने सब से पहले अपने दोनों कामदारों को बुलाया और प्रीतिभाव जताकर उनका सन्देह दूर कर दिया। फिर, पहले तो उसने ब्राह्मण का सिर काट कर कुत्तों के चबाने के लिए फेंक दिया और फिर चारण को नष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह किसी तरह बच निकला।

महाराजा अपना लवाजमा लेकर निकला; उसके साथ अहमदनगर का राजा करणसिंह, मट्ठ का ठाकुर गोपालसिंह और दूसरे सरदार भी थे। उस समय उक्त दोनों सरदारों और मूंडेटी के जालिमसिंह ने गुप्त मंत्रणा की कि सेना पालया की तरफ बढ़ानी चाहिए क्योंकि वहां के ठाकुर से उनकी दुश्मनी थी; उधर, महाराजा

ग्रौर प्रधान दुर्जनसिंह का विचार रहवरों पर चढ़ाई करने का था। जब गम्भीरसिंह ने अपना विचार प्रकट किया तो इन तीनों ने उसके समर्थन का बहाना बनाया ग्रौर स्वयं तो महाराजा की हाजरी में बने रहे, परन्तु अपने सैनिकों को ग्रागे भेज दिया जिन्होंने महाराजा के पहुंचने से पहले ही पालया को लूट कर वहां के सब घर जला दिये। वहां का ठाकुर मोहब्बतसिंह पहाड़ियों में भाग गया; भागने वाला तो वह नहीं था, परन्तु उसने समझा कि उसके धणी की फौजें हैं इसलिए उसने गांव छोड़ दिया। बाद में, जब महाराजा वहां पहुंचा तो उसे गांव में जले हुए घरों के ढेर पड़े मिले; तब उसने तीनों सरदारों को बहुत बुरा भला कहा। फिर, पालया की भूमि में ही डेरा लगाया गया। ठाकुर मोहब्बतसिंह ने तुरन्त ही भीलों की बहुत बड़ी सेना एकत्रित करके राजा की सेना के लौटने का मार्ग रोक दिया। इस बीच में, पालया से जो लूट का माल मिला उसी से सेना का खर्च चलता रहा। दुर्जनसिंह के सिपाहियों ने तो कोई दुश्मनी का काम नहीं किया परन्तु, उन तीनों षड्यन्त्रकारी सरदारों के आदमियों ने ग्रास-पास के गांवों को लूट-लूट कर ग्राग के हवाले कर दिया जिससे गम्भीरसिंह बहुत ग्रप्रसन्न हुग्रा। उसी समय समाचार मिले कि सेना के साथ वाले महाजन के माल से लदे ऊंटों की कतार को ईडर के रास्ते में भीलों ने लूट लिया ग्रौर उन जंगली लुटेरों ने कुछ ऊंटों ग्रौर शुतर-सवारों को घायल भी कर दिया। ऐसे ही ग्रवसर पर पालया के ठाकुर मोहब्बतसिंह का सन्देश मिला 'महाराजा ने मेरा गांव ग्रकारण ही लूटा है, मैं नियमित रूप से कर जमा कराता हूं।' उसने सेना का वापस घर लौटना मुश्किल कर देने की भी धमकी दी। इस पर राजा ने उत्तर भेजा कि उसका तो पालया लूटने का कोई इरादा नहीं था, जो कुछ हुग्रा, वह उन तीनों सरदारों का किया हुग्रा था। तब मोहब्बतसिंह ने फिर कहलाया, मैं उनको ग्रच्छी तरह समझ लेता, परन्तु हुजूर ने उनके साथ पधारने की तकलीफ क्यों की?' महाराजा ने उसको मिलने के लिए बुलाया परन्तु ठाकुर ने हाजिर होने से इनकार कर दिया; ग्रन्त में, गम्भीरसिंह को मंजूर करना पड़ा कि पालया के पुनर्वास के सिलसिले में ठाकुर से दो साल तक कोई कर वसूल नहीं किया जायगा। इसके बाद, महाराजा ने ग्रपना डेरा उठा दिया। इस घटना से उसका मन खिन्न हो गया था इसलिए ग्रागे न बढ़ कर वह ईडर लौट गया ग्रौर सेना को बरखास्त कर दिया।

महाराजा ने गोपालसिंह को ग्रपने पास ही रख लिया। दुर्जनसिंह प्रधान ग्रौर गोपालसिंह में कट्टर दुश्मनी थी इसलिए महाराजा ने गोपालसिंह को कहा, 'मेरा विचार तुमको ईडर का प्रधान बनाने का है ग्रौर एक बात, ग्रगर तुम पेट में रख सको तो, ग्रौर कहूं।' इस पर गोपालसिंह ने भेद ग्रपने तक ही रखने का विश्वास दिलाया। तब महाराजा ने उसके कान में कहा, 'मैं दुर्जनसिंह को रास्ते से हटाना चाहता हूं।' गोपालसिंह ने फिर कहा, 'ग्राप सच कह रहे हैं या हंसी कर रहे हैं?' महाराजा बोले, 'मैं सत्य कह रहा हूं।' 'वचन दीजिए', गोपालसिंह ने

कहा। वचन दे दिया गया। तब गोपालसिंह ने अपने घर मड़ जाने को सीख मांगी जो उसे मिल गई और साथ ही बहुत सा इनाम-इकराम भी। वह चला गया और लौटकर आया तो महाराजा ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया और उसे वह ढाल और तलवार भी बख्शीश में दे दी जो महाराजकुमार उम्मेदसिंह बांधा करता था। बहुत से लोगों ने इन बातों को देखकर गोपालसिंह से कहा कि महाराजा कभी न कभी दगा करेगा। उन्होंने कहा 'याद करो, भवानीसिंह ने चांदणी वाले सूरजमल को धोखा देकर मार दिया था और मीरासण के युवक ठाकुर के साथ भी दगा हुआ था। इस घराने के राजा तो ऐसा करते ही आए हैं।' परन्तु गोपालसिंह ने इन चेतावनियों पर कोई ध्यान नहीं दिया, यहां तक कि जब उसके श्वसुर ठोडड़ा के ठाकुर पर्वतसिंह ने भी उसको सावधान रहने को चेताया तो उसने विश्वास नहीं किया और कहा, 'ऐसे ही भय के भूत दिखा-दिखा कर टींटोई के ठाकुर कनकाजी और धीरजी को दरबार से दूर रखा गया और अब इसीलिए मुझे डरा रहे हो कि मैं भी दूर चला जाऊं।'

इसके बाद गोपालसिंह की माता की मृत्यु हो गई तब भी बहुत आग्रह करके वह क्रियाकर्म करने को छुट्टी लेकर मड़ गया। घर पर भी बहुत से लोगों ने उसको ईडर न जाने को कहा, परन्तु उसने किसी की भी बात नहीं सुनी। तब उसकी सौतेली माता और पत्नी ने ऐसा प्रबन्ध किया कि जब वह ईडर जाने लगा तो गांव के बाहर उसको काले और फूटे घड़े लिए हुए औरतों की टोली मिली; और भी कितने ही अपशकुन हुए। परन्तु, ठाकुर तो ईडर चला ही गया।

बहुत समय बाद 1831 ई. में महाराजा ने अपने कसबाती सेवकों को भेद न खोलने की सौगन्ध-शपथ दिलाकर कहा, 'आज तुमको गोपालसिंह को मार ही देना है।' परन्तु, उनमें से कोई भी इस काम के लिए राजी नहीं हुआ। तब उसने मीरू सिंधी को बुलाकर उसी तरह गोपनीयता की शपथ दिलाई और उसको इस काम के लिए रजामन्द कर लिया। पहले दिन ही महाराजा ने गोपालसिंह से कहा था, 'कल शिवरात्रि का त्यौहार है इसलिए सुबह जल्दी आना; कल ही हम दुर्जनसिंह का काम तमाम करेंगे।' दूसरे दिन गोपालसिंह जल्दी ही उठा, उसने स्नान किया, कलेवा किया और तैयार होकर वह महलों की सीढ़ियों पर जा पहुंचा। उसने महाराजा को मालूम कराया कि वह आ पहुंचा था। तब, प्रथा के अनुसार ड्योढीवान ने उसके शस्त्र ले लिए। मीरू और उसके सिपाही भरी हुई बन्दूकें लिए गोपालसिंह के प्राण लेने को तैयार थे; अच्छे चरित्र- वान व्यक्तियों और दरबार में जो कुछ उसके मित्र या हितू थे उनको किसी न किसी बहाने से दूर भेज दिया गया था। जब गोपालसिंह महलों में पहुंचा तो महाराजा ने उसे बड़ी रानी[4] के रावले में बुलवा लिया, जहां गद्दी तकिये लगा कर वह बाकायदा

4. उसका नाम दौलतकुंवर बा था और वह ओशवा (ओसियां) के भाटी सरदार की पुत्री थी, जो मारवाड़ में जैसलमेर की भायात में था। जब महाराजा देव हुए तब यह रानी भी सती हुई थी।

दरबार में विराजमान था। जब जीमन का समय हुआ और थाल आया तो महाराजा ने गोपालसिंह को कहा, 'तुम भी मेरे साथ ही भोजन करो।' उसने माफी चाही परन्तु बहुत आग्रह करने पर उसे जीमना ही पड़ा। जीमन के बाद महाराजा ने बीड़ा मुख-वास इनायत किया। उस समय गोपालसिंह के श्वसुर ने उसको एकान्त में लेकर कहा, 'मुझे भय है कि आज यह सब कुछ तुम्हें मार डालने के लिए ही किया जा रहा है; जरा सोचो, मैंने तुमको अपनी लड़की ब्याही है, जिसकी अवस्था केवल चौदह वर्ष की है; मेरा कहना मानो, उसी की खातिर अपने प्राण बचाने का प्रयत्न करो।' गोपालसिंह ने इसका इतना ही उत्तर दिया, 'तुम्हारी आशंका निर्मूल है।' तब वह गोपालसिंह का श्वसुर हुक्का पीने का बहाना करके किसी तरह बड़ी मुश्किल से वहां से अपने घर सटक गया और घोड़े पर सवार होकर अपने प्राण लेकर भागा। इस पर सिन्धी जमादार और भी सतर्क हो गया और बाद में किसी को भी वहां से नहीं निकलने दिया।

फिर महाराजा ने अपने एक सेवक को इत्र की शीशी लाने की आज्ञा दी। जब वह ले आया तो उसने कहा, 'यह तो वह नहीं है जिसके लिए मैंने कहा था।' सेवक कई बार शीशी लाया परन्तु हर बार महाराजा ने वही बात कही और अन्त में वह स्वयं अपनी पसन्द की शीशी लाने के बहाने बाहर चला गया। तुरन्त ही दरवाजे बन्द कर दिये गये और महाराजा ने धीरे से सिन्धी से कहा 'अब, अगर वह बच गया तो इसके जवाब में तुम्हारा सिर ले लूंगा।' इतना कहते ही खिड़कियों में होकर चारों तरफ से कमरे में गोलियों की बौछार होने लगी। गोपालसिंह के साथ बारह नौकर थे जो अपने ठाकुर के आस-पास आड़े हो गए परन्तु गोलियों की मार से वे एक एक करके मर गए। गोपालसिंह भी घायल हो गया। तब महाराजा सामने आया और जोर से बोला, 'अरे गोपाल! बोलो, क्या ईडर के महाजनों को पकड़-कर ले जाना वाजिब था? अब अपना बल दिखाओ! यह लो, तुम्हारे बांधने को दो दो तलवारें हैं।' यह कह कर उसने दो तलवारें कमरे में फेंक दीं। तब गोपाल-सिंह ने रानी को जोर से पुकारकर कहा, 'मैं तुम्हारे महल में हूं, तुम्हीं मेरी रक्षा करो।' यह सुन कर कर रानी महाराजा के समीप जाकर बोली, 'जो कुछ हो गया, सो हो गया। अब यदि तुम गोपालसिंह को मारोगे तो मैं भी उसी के साथ प्राण दे दूंगी।' महाराजा ने कहा अब अगर मैं उसे जिन्दा छोड़ दूंगा तो वह मुझे मार देगा।' रानी ने उत्तर दिया, 'जो कुछ कड़ा से कड़ा प्रबन्ध हो, वह करो परन्तु उसके प्राण मत लो।' रात भर और दूसरे दिन गोपालसिंह को वहां बन्द रखा गया। जब रात हुई तो उसने फिर महल की चार-दीवारी पर चढ़कर भाग जाने का निश्चय किया। जब इस इरादे से वह बाहर निकला तो पहरेदार ने तुरन्त ही काट कर उसके दो टुकड़े कर दिए और वह वहीं ढेर हो गया। फिर, भंगियों को बुलवा कर उसकी लाश महल के चौक में घिसटवाई गई और महाराजा ने आज्ञा दी कि उसके

टुकड़े-टुकड़े करके चीलों के खाने के लिए फेंक दिए जावें। जब नगर के प्रमुख महाजनों को महाराजा का यह विचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने महलों में आ कर कहा, "महाराज! अपराधी को दण्ड मिल गया; अब इस मिट्टी के ढेर से आपको कोई वैर नहीं है; इसे जलाने की आज्ञा दीजिए।" इस पर सब लाशें एक गाड़ी में रख कर श्मशान में ले जाई गईं और वहीं उनका अग्नि-संस्कार हुआ। इसके बाद ही महल के सब लोगों ने अपना व्रत खोला क्योंकि जब से गोपालसिंह ने वहां प्रवेश किया था तब से किसी ने एक कौर भी मुंह में नहीं डाला था।

मह के ठाकुर के दो पुत्र थे, भारतसिंह और पर्वतसिंह[5]। पिता की मृत्यु के समय बड़े लड़के की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। ईडर में जो दुर्घटना हुई उसके

---

5. पर्वतसिंह की अवस्था तीन वर्ष की थी। (गु. अ.)

टिप्पणी—मह के ठाकुर गोपालसिंह की इस दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के विषय में अंग्रेजी दफ्तर में कोई लेख नहीं मिलता है। लेफ्टिनेन्ट कर्नल बैलेण्टाइन के चले जाने के बाद महीकांठा में कोई पोलिटिकल एजेण्ट नहीं रहा था। ऐसी अवस्था में इस प्रकार के कृत्य को या तो अंग्रेज अधिकारियों से छुपा लिया गया होगा या फिर किसी तरह का फेरफार करके कहा गया होगा। महाराजा गम्भीरसिंह के बारे में जो कुछ लिखा मिलता है उससे तो यह विश्वास दृढ़ होता है कि उसके हाथों ऐसा कुकृत्य होना कोई असम्भव बात नहीं थी। उसके स्वभाव में धोखेबाजी थी, यह बात अब तक ईडरवाड़े में कुप्रसिद्ध है और चारण-भाटों ने जो उसके अन्य कितने ही कृत्यों के बारे में उल्लेख किया है उससे भी लक्षित होती है।

1821 ई० में मेजर माइल्स ने महाराजा गम्भीरसिंह के विषय में लिखा है—"ईडर के वर्तमान महाराजा के चरित्र के विषय में यहां के लोगों का कहना है कि उसमें धोखेबाजी, ठगी और अस्थिरता का सम्मिश्रण है। ऐसी प्रसिद्धि है कि अपने स्वार्थ के आगे लोगों की गुण-सम्पदा और योग्यता के प्रति उसकी कोई आस्था नहीं है। उसकी अविश्वसनीयता तो सर्वप्रसिद्ध है और मुझे बताया गया है कि सम्पूर्ण ईडरवाड़ा में शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जो शपथपूर्वक उसके साधारण से साधारण वादों और करारों पर विश्वास कर सके। उपज का प्रबन्ध करने के विषय में वह अविवेकपूर्ण और उड़ाऊ गिना जाता है; परन्तु, वोहरों और सैनिकों को ठगने में वह कोई कसर नहीं छोड़ता। वह पूरी तरह से ब्राह्मणों और गोसाइयों के हाथों में खेलता है जो उसको भारी ब्याज पर रुपया उधार देते हैं और उसकी आमदनी को आगे से आगे हड़पते रहते हैं। चरित्र की यह बुराई कुछ बातों में तो निःस्संदेह सही मालूम होती है परन्तु दूसरे मामलों में कुछ बढ़ा-चढ़ा कर कही हुई भी प्रतीत होती है। वैसे, यह

→

समाचार सुनकर मृत ठाकुर के सेवक और परिवार के लोग पहाड़ियों में चले गये। तब महाराजा ने मह् की तरफ कूच किया और उसी गांव के पास अपना डेरा कायम किया। इसके बाद उसने गोपालसिंह के बालकों को बुलवाकर उनकी बपौती की जागीर पर कायम कर दिया।



महाराजा योग्य मालूम देता है। साथ ही, इसमें चालबाजी और फरेब की भी खासियत है। पुरुष-परीक्षा के ज्ञान के कारण वह अपने कितने ही कारभारियों और सम्बन्धियों से विशिष्ट हो गया है इसलिए कई बार जब वे राजनीतिक प्रबन्धों में इसकी बराबरी नहीं कर पाते हैं तो अपनी योग्यता और दूरदर्शिता में हीनता अनुभव करने के बजाय सारा दोष इसी की कपट-विडम्बना पर डाल देते हैं। फिर, इसके चरित्र की जांच, परिस्थितियों, आसपास के लोगों और जिनसे इसको टक्कर लेनी पड़ती है, उनको देख कर भी करनी चाहिए।" इन बातों के लिए छूट देते हुए भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि महाराजा गम्भीरसिंह एक असाधारण और ऊँचे दर्जे का छलछन्दी था; उसमें छद्म और क्रूरता का वह सम्पूर्ण सम्मिश्रण पाया जाता था, जो राजपूतों में राठौड़ जाति का विशिष्ट लक्षण माना जाता है। अंग्रेज कवि शेक्सपीयर के ग्लोसेस्टर[×] के साथ वह भी कह सकता था—

> "मैं मुस्करा सकता हूँ, और मुस्कराने के साथ ही वध भी कर सकता हूँ; और, जो मेरे हृदय को दुःखी करता है उसी के प्रति सन्तोष का उद्घोष भी कर सकता हूँ; मैं कृत्रिम अश्रुओं से अपने कपोलों को सिक्त कर सकता हूँ, और सभी अवसरों के अनुकूल अपनी मुखाकृति बना सकता हूँ।"

(हेनरी षष्ठ, 3. 2. 182–5)

× ड्यूक ऑफ ग्लोसेस्टर इंगलैण्ड के राजा एडवर्ड चतुर्थ का भाई था। वह अपने भाई के बाद रिचार्ड तृतीय के नाम से राजा हुआ। उसने अपने भाई एडवर्ड के दो पुत्रों को छल से मार दिया था।

प्रकरण चौदहवां

ईडर का महाराजा गम्भीरसिंह (3)

सन् 1804 के लगभग उदयसिंह के मर जाने पर उसका पुत्र जालिमसिंह मूंडेटी[1] ठिकाने की गद्दी पर बैठा। गोता का ठाकुर, जो स्वर्गीय ठाकुर (उदयसिंह) का भाई था, निःसन्तान मर गया, इसलिए वह जागीर भी जालिमसिंह के हाथ लगी। उसने इस जागीर को अपने पुत्र उम्मेदसिंह के नाम कर देना चाहा, जिसकी माता वरसोड़ा के चावड़ा की पुत्री थी। गोता की जागीर का पट्टा राज्य की ओर से अलग मिला हुआ था इसलिए यह आवश्यक था कि महाराजा नये ठाकुर से नजर ग्रहण करे। अतः जालिमसिंह ने अपने कामदार को ईडर भेजा तब महाराजा ने स्वीकृति दे दी और यह भी कहा कि उम्मेदसिंह के पगड़ी बंधने का दस्तूर जिस दिन हो उसकी सूचना उसको दे दी जाय जिससे वह स्वयं मूंडेटी आकर पाग बंधवा दे तथा बांह भर कर मिलने का सम्मान भी प्रदान करे। निश्चित तिथि पर महाराजकुमार उम्मेदसिंह अपने पिता के प्रतिनिधि रूप में मूंडेटी गया। उसकी सगाई जालिमसिंह की राठौड़ ठकुरानी की पुत्री गुलाब कुंअर बा से हुई थी, जो सूरजमल और शेरसिंह की सगी बहन थी; इसलिए महाराजकुमार की मंगेतर (वाग्दत्ता पत्नी) की माता राठौड़ानी चावड़ी के पुत्र की एवज अपने पुत्र अर्थात् महाराज कुंअर के साले शेरसिंह को गोता की पगड़ी बंधवाने में सफल हुई। इसी बात को लेकर जालिमसिंह और उसकी राठौड़ पत्नी तथा पुत्रों में वैमनस्य का बीज जम गया जिससे आगे चलकर उन पर बहुत सी आपत्तियां आईं और महाराजा व ठाकुर में भी आपस में अनबन रही।

शेरसिंह गोता[2] जा कर रहने लगा। उसके दूसरे गांव रतनपुर की सीमा वलासण ठाकुर के गांव खास्की से मिलती थी इसलिए दोनों ही पक्षों की ओर से इन दोनों गांवों में सशस्त्र सिपाही रहते थे। वर्षा ऋतु में दोनों गांवों के किसानों

---

1. मूंडेटी का पट्टा महाराजा शिवसिंह ने मानसिंह चौहान को संवत् 1741 में बख्शा था।
2. ठाकुर अभयसिंह की ठकुरानी भी राठौड़ी थी; वह गोता में ही रहती थी। शेरसिंह उसी का वारिस हुआ था।

में सीमा के वारे में तनाजा (झगड़ा) हुआ। उस समय तो उनको समझा-बुझा कर दोनों ही दलों को अलग-अलग कर दिया गया परन्तु वाद में दोनों ही पक्षों ने अपने अपने 'धणी' के पास जाकर पुकार की तव दोनों ही मालिकों ने अपने-अपने आदमियों से कहा, "तुम मर्द थे या क्या ? अगर मर्द होते तो वहीं लड़ कर झगड़ा निपटा देते।" दूसरे दिन जव वे किसान तनाजे की जमीन पर हल चला रहे थे तो उनके हाथों में शस्त्र भी थे इसलिए लड़ाई शुरू हो गई। शेरसिंह की तरफ का एक आदमी मरा और कुछ घायल हुए तथा दूसरी ओर के भी वहुत से आदमी जख्मी हो गए। जव गोता के ठाकुर ने यह परिणाम सुना तो उसने मूँडेटी जा कर अपने पिता से सहायता मांगी और कहा, 'यदि इस समय सहायता नहीं करोगे तो वलासण जाकर मरणान्त युद्ध करूंगा यद्यपि विरोधी के पास अत्यधिक बल है।" तव जालिमसिंह ने अपने सैनिक इकट्ठे किए और उनको लेकर वह स्वयं वलासण गया; युद्ध चालू हो गया। मूँडेटी के ठाकुर ने ईडर के महाराजा से भी सहायता मांगी तव उसने धन एवं सिरबंधिये देने का आश्वासन दिया और उसके सन्देशवाहक को यह कहकर विदा किया कि कदाचित् वलासण का ठाकुर जीत जायेगा तो मारवाड़ की इज्जत चली जायेगी और कभी वह स्वयं मूँडेटी का मालिक वन वैठेगा। वलासण के ठाकुर ने भी उससे मदद मांगने को आदमी भेजा क्योंकि उसकी आधी जागीर ईडर के अधीन थी, परन्तु उसको भी गम्भीरसिंह ने वैसा ही उत्तर दिया जैसा जालिमसिंह को दिया था। वास्तव में, उसके दोनों हाथों में लड्डू थे और वह इनमें से किसी की भी विजय होने पर प्रसन्न था, परन्तु एक न एक पक्ष की तो पराजय होनी ही थी।

वलासण में एक साध्वी रहती थी जो पुरुषों के से वस्त्र पहनती थी और उसने अपना नाम भी पुरुषों जैसा ही 'मानदास' रखा था। वह समझौता कराने के काम में प्रसिद्ध थी। इसी रूप में ईडर आ कर वड़े दर्प के साथ महाराजा के सामने उपस्थित हो उसने कहा—'वलासण के लोगों ने ऐसी बुरी तरह से मारवाड़ियों को पीछे हटा दिया कि उनकी वहुत वेइज्जती हुई।' दुर्जनसिंह प्रधान, जो उस समय दरवार में ही वैठा था, इस खवर को सुन कर वहुत विचलित हुआ क्योंकि उस समय उसका पुत्र और भाई भी मूँडेटी ठाकुर के साथ ही थे। उसने जालिमसिंह को लिख भेजा कि वह या तो वलासण को विजय करे अन्यथा ईडर में आकर कभी अपना मुंह न दिखावे। इसके साथ ही उसने कुछ द्रव्य देने को भी लिखा। उसका पत्र वलासण पहुंचा उससे पहले दिन ही झगड़ा शुरू हुआ परन्तु एक पड़ोसी ठाकुर ने आकर वीचवचाव कर दिया था। जव प्रधान का पत्र पहुंचा तो जालिमसिंह ने दृढ़ता के साथ धावा मारा और उस गांव को लूटकर अग्नि की भेंट कर दिया; उसने वहां के कुछ लोगों को कैद कर लिया, ढोर घेर लिए और खास्की के ठाकुर को वह मृत अवस्था में रणक्षेत्र में छोड़ गया। इस प्रकार वह झगड़ा खतम हो गया और मारवाड़ी घर लौट आए। ब्रिटिश सत्ता ने वलासण के लोगों को वैर का वदला लेने से

रोक दिया परन्तु वे कहते रहे कि जब कभी यह सत्ता नहीं रहेगी तब मूँडेटी से बदला अवश्य लेंगे।

ई० सन् 1820 में चौहान शाखा का अन्तिम पुरुष मृत्यु को प्राप्त हुआ तो गम्भीरसिंह ने उसके गांवों को इस आधार पर खालसा करना चाहा कि उसका पट्टा मूँडेटी से भिन्न था इसलिए अब वह वापस राज्य में मिल जाना चाहिये। जालिमसिंह ने इस व्यवस्था को मानने से इनकार कर दिया और बागी हो जाने की धमकी दी। यह प्रायः उसी समय की बात है जब कर्नल बैलेण्टाइन ईडरवाडा का प्रबन्ध करने में लगा हुआ था। उसने जालिमसिंह को कैद कर दिया परन्तु जब चार मास बाद उसने विवादास्पद जागीर को छोड़ना, महाराजा के अन्य अधिकारों को मानना और दस वर्ष तक अच्छे चाल-चलन की जमानत दाखिल करना कबूल कर लिया तो उसको रिहा कर दिया गया।[3]

---

3. कर्नल बैलेण्टाइन ने सादड़ा से ता० 15 अक्टूबर, 1822 की रिपोर्ट में लिखा है—

"इस ठाकुर (मूँडेटी के जालिमसिंह) के चालचलन के बारे में सरकार को पिछली तारीख 7 अप्रेल की रिपोर्ट में अवगत करा चुका हूं और उसके दंगा फसाद करने का प्रमाण दे चुका हूं। उसके बाद जुर्माना देकर ठाकुर ने ईडर से समझौता कर लिया और नया पट्टा करके उसको वापस ठिकाने पर बैठा दिया गया है।......हर एक पटावत के कुछ जिलायत होते हैं जिनसे उसका वही सम्बन्ध होता है जो उसका राजा से होता है। वे चाकरी की एवज में जमीनें भोगते हैं और, वास्तव में, वे जमीनें भी इस बन्दोबस्त में शामिल की गई हैं। इस पट्टे में चार जिलायत हैं परन्तु इनको सीधी ईडर से जमीनें मिली हुई हैं इसलिए इनको भी समान हक-हकूक और दर्जा प्राप्त है। इसकी हकीकत इस प्रकार है—इस राजवंश की संस्थापना के समय वर्तमान जिलायतों के पूर्वज राजा के पटावतों के अनुयायी, रिश्तेदार या हिस्सेदार थे और उनको ईडर की तरफ से गुजारे के लिए प्रायः समान करारों पर भूमि मिली हुई थी। पटावत उनसे नौकरी ले सकता है परन्तु उनको जमीनों से बेदखल नहीं कर सकता; इनमें अन्तर केवल इतना ही है कि जिलायत अपनी जमानतें अलग से अपने वरिष्ठ पटावतों को पेश करते हैं जो फिर अन्तिम रूप से उनके लिए भी ज़िम्मेदार हो जाते हैं।......यह ठाकुर गम्भीरसिंह का सम्बन्धी है। इसकी पुत्री महाराजकुमार उम्मेदसिंह को ब्याही गई है। परन्तु इस सम्बन्ध से मेल की अपेक्षा शत्रुता में ही वृद्धि हुई है। स्वयं जालिमसिंह का विवाह पोल के राव की पुत्री से हुआ है और उससे उसके एक पुत्र सूरजमल है, जो उसका पाटवी कुंअर है। →

ई० सं० 1826 में गोरल के ठाकुर की मृत्यु हुई; उसके चांद वा नामक एकमात्र पुत्री थी जो महाराजा गम्भीरसिंह को ब्याही थी। इसलिए उसने जाहिर कि उसका ससुर अपना गांव उसकी पत्नी के दहेज में दे गया था अतः उसका इरादा वहां पर थाना कायम करके या तो खालसा करने का था या रानी को हाथखर्च में दे देने का था। ठाकुर की विधवा ने इस प्रबन्ध के लिए रजामन्दी प्रकट की क्योंकि महाराजा ने जागीर की आय में से 'खाणगी' देना कबूल कर लिया था। मूंडेटी के जालिमसिंह ने कहा कि वह स्वर्गीय ठाकुर का दत्तक पुत्र था इसलिए उसने दाढ़ी-मूंछ मुंडवा कर उसका क्रियाकर्म करने को प्रस्थान किया, जो महाराजा स्वयं करना चाहता था। गम्भीरसिंह को भय था कि जालिमसिंह बागी हो जायगा इसलिए उसने उसको प्रसन्न रखा और बाद में वह अनुकूल अवसर की ताक में रहा। इस तरह गोरल की जागीर मूंडेटी में मिल गई। एक वर्ष बाद, जालिमसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल से कहा, 'शुरू से ही मेरा इरादा गोता की जागीर उम्मेदसिंह को देने का था, परन्तु तुम्हारी माता ने वह तुम्हारे भाई शेरसिंह को दिला दी इसलिए अब यह गोरल की जागीर उम्मेदसिंह को देना चाहता हूं।' सूरजमल इस बात से सहमत नहीं हुआ और उसके इनकार करने पर वह नाराज होकर उसी समय जोधपुर महाराजा मानसिंह के दरबार में चला गया और वहां छः मास तक रहा।[4] परन्तु,

---

ये दोनों, माता और पुत्र, बहुत दिनों से उसके खिलाफ हैं। कुछ समय तक उन लोगों ने ईडर में जाकर शरण ली और ऐसा लगता है कि गम्भीरसिंह ने भी सूरजमल और उसकी माता को खानगी दिलाने के प्रयत्न किए परन्तु सफलता नहीं मिली। जालिमसिंह इस बात से नाराज हुआ और बाहरबाट होने को ही था कि मैंने उसको बुलाया। तब से कुंअर सूरजमल तो सिरोही में नौकरी करता है और उसकी माता पोल चली गई है।"

4. तारीख 24 दिसम्बर, 1826 ई० को कर्नल वैलेण्टाइन ने बड़ोदा के रेजीडेण्ट को इस प्रकार लिखा—

इस प्रसंग में गम्भीरसिंह और मूंडेटी के कुंवर सूरजमल ने भी मुझ से प्रार्थना की है कि मैं यह बात सरकार को सूचित करूं कि कुछ समय से जालिमसिंह मूंडेटी छोड़कर चला गया है और पता चला है कि वह जोधपुर के महाराजा मानसिंह के पास रहता है। पिछले वर्ष बहुत समय तक ठाकुर कोटा में रहा और वहां अपने दूसरे पुत्र के लिए भी नौकरी प्राप्त कर ली। इन सब बातों का कारण गृह-कलह बताया जाता है जिसके मूल में, अपने ज्येष्ठ पुत्र और अधिकारी सूरजमल को खारिज करने की, ठाकुर की इच्छा है।" कर्नल वैलेण्टाइन ने सिफारिश की कि 'खाली ठिकाने' पर सूरजमल को कायम कर

→

उसको वहां पर पट्टा प्राप्त करने में सफलता नहीं मिली और उसका स्वयं का व उम्मेदसिंह का, जो उसके साथ ही था, खर्चा भारी पड़ने लगा इसलिए वह जोधपुर से कोटा चला गया। वहां उसको नौकरी मिल गई और वह एक वर्ष तक रहा। जालिमसिंह को आशा थी कि उसके जाने के बाद सूरजमल उसे मनाने आवेगा और उसकी इच्छानुसार कार्य करना स्वीकार करेगा, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। वह मूंडेटी में ही रहा और उसने जागीर के बहुत बड़े भाग का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया; केवल तीन गांव जालिमसिंह के सेवकों के हाथ में रहे। वर्ष के अन्त में जालिमसिंह ईडरवाड़ा में लौट आया और उसने सूरजमल को कहलाया कि गोरल उम्मेदसिंह को नहीं दिया गया तो उसका पक्का इरादा पूरी-की-पूरी जागीर महाराजा को सौंप देने का था। सूरजमल ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया तब उसके पिता ने सिरबंधिये एकत्र करना शुरू कर दिया। जब सूरजमल को यह सूचना मिली तो उसने अपने पिता को लिखा, 'आप सेना क्यों इकट्ठी करते हैं ? मूंडेटी की जागीर जिसको चाहें उसको दे दें, मैं तो स्वयं भावनगर या और कहीं जाकर नौकरी तलाश कर लूंगा।' ठाकुर ने उत्तर में लिखा, "मैं जीवित हूं तब तक तुम्हारी 'खाणगी' में दो गांव तुम भोगो, मेरी मृत्यु के बाद सम्पूर्ण पट्टे के तुम मालिक हो, परन्तु अभी मूंडेटी छोड़ दो।" सूरजमल इससे सहमत नहीं हुआ और रोष में भरकर अहमदनगर चला गया। वहां उसने तीन सौ बन्दूकची और अपने पिता के उन जिलायतों को एकत्रित किया जो उसके पक्ष में थे। सन् 1829 ई० के मार्च मास में वह अपने सैनिक लेकर नादरी गांव के पड़ोस में आया, जहां उसका पिता ठहरा हुआ था; उसका विचार गांव पर अचानक हमला करने का था इसलिए उसने कड़ी आज्ञा दी कि बन्दूक का एक भी भड़ाका न किया जाय। फिर, जब सैनिक निश्चित स्थान पर पहुंच गए तो उन्होंने दनादन गोलियां चलाना शुरू कर दिया और इस तरह सूरजमल का आगमन सब को विदित हो गया; उसके पिता के सेवकों ने मुकाबला किया परन्तु जालिमसिंह ने देखा कि विपक्षियों की संख्या बहुत अधिक थी और वह आसानी से सामना नहीं कर सकता था इसलिए अपनी चावड़ी ठकुरानी को लेकर निकल भागा। बाद में ठकुरानी को दांता जिले में कहीं सुरक्षित स्थान पर रखकर वह स्वयं पहाड़ियों में भाग गया। सूरजमल ने नादरी पर अधिकार करके अपना थाना कायम कर दिया। इसके बाद वह मूंडेटी आ गया और फिर वहीं अपना रहठाण बना लिया।

दिया जाय। रेजीडेण्ट ने सिर्फ इतना ही मुनासिब समझा कि सूरजमल को उसके पिता के प्रतिनिधि के रूप में ठिकाने का इन्तजाम ही सुपुर्द कर दिया जाय। बम्बई सरकार ने इस अपर प्रस्ताव को मान लिया और इसको अप्रेल, 1827 में क्रियान्वित भी किया गया, परन्तु आने वाले जून मास में ही समाप्त भी कर दिया गया।

महाराजकुमार उम्मेदसिंह की मृत्यु को अब पांच वर्ष हो गए थे इसलिए महाराजा ने सूरजमल की बहिन गुलाब के साथ, जिसकी सगाई उसके पुत्र के साथ हुई थी, स्वयं विवाह करना चाहा। मूंडेटी का ठाकुर और उसकी राठौड़ पत्नी, दोनों ही, इस प्रस्ताव से प्रसन्न नहीं हुए क्योंकि महाराजा अब बुड्ढा हो गया था। परन्तु, सूरजमल ने अपनी बहन का विवाह गम्भीरसिंह के साथ इस शर्त पर करना स्वीकार कर लिया कि वह उसके पिता के विरुद्ध उसकी मदद करे। जब जालिमसिंह पहाड़ियों में चला गया तब उसको आशंका हुई कि मौका देखकर सूरजमल अपनी बहन का विवाह राजा के साथ कर देगा इसलिए उसने चुपके से एक पत्र में कन्या की माता को लिखा कि लड़की को उसके पास भेज दे तो वह किसी योग्य वर के साथ उसका विवाह करने का प्रबन्ध करे। इसके अनुसार उस बाला को उसके पिता के पास पहुंचा दिया गया और उसने उसका विवाह सैलाना के ठाकुर के साथ कर दिया, जो रतलाम के छुटभाइयों में था।

इस समय तक जालिमसिंह ने छः सौ अरब और मकरानी बन्दूकधारी सिपाही इकट्ठे कर लिए थे; उनको लेकर उसने एक रात को नादरी पर हमला कर दिया। सूरजमल के थानेदार कानजी ने बहादुरी से युद्ध करके आक्रमणकारियों को पीछे हटा दिया।

सोरठा

वाकरियो थे वाघ, आयो खड़ अदमाल रो;
कनयो कालो नाग, निश्चल कीधी नादरी ॥[5]

जालिमसिंह ने पर्वतों में एक ऐसे स्थान पर मोर्चा जमाया जहां जंगल के घने वृक्षों में वह और उसके आदमी सुरक्षित रह सकते थे; लौटते समय उन्होंने सूरजमल के एक गांव में आग लगा दी। थोड़े दिनों बाद उसने मूंडेटी पर धावा करने का विचार किया, जहां उसका पुत्र कुछ सैनिकों के साथ रहता था। युवक ठाकुर के गुप्तचरों ने उसके पिता की तैयारियों के बारे में सूचना दी और उसने उसी समय अपने ईडर के वकील को लिखा कि महाराजा को उसकी प्रतिज्ञानुसार मदद भेजने को कहे। गम्भीरसिंह ने यह आमन्त्रण स्वीकार कर लिया और सेना एकत्रित की। वह पूरा दिन तो यों ही बीत गया; दूसरे दिन महाराजा अपनी सेना के साथ उत्तर दिशा में रवाना हुआ और वकील को बताया कि उसका इरादा जालिमसिंह और मूंडेटी के बीच का रास्ता रोकने का था। परन्तु, ठाकुर ने तो पहली रात को ही हमला कर दिया था। सूरजमल के आदमियों का इमारतों के कारण बचाव हो गया और उनकी बन्दूकों की मार से आक्रमणकारियों के पैंतीस आदमी मारे गए;

5. गुस्से में भरे हुए वाघ की तरह अदमाल (उदयसिंह) का पुत्र आया परन्तु काले नाग के समान कन्हैया (कानजी) ने नादरी को निश्चल कर दिया।

परन्तु, उसके छोटे से थाने के छः आदमी, गोलाबारूद-भरी एक गोल बुर्ज की रक्षा करते हुए, बारूद भभक जाने के कारण स्वाहा हो गए। स्वयं युवक ठाकुर के हाथ में भी बन्दूक की गोली लगकर घाव हो गया परन्तु उसने गांव पर कब्जा नहीं छोड़ा। दूसरे दिन एक पड़ोसी ठाकुर और मूंडेटी के निवासियों ने जालिमसिंह को अपने पुत्र से समझौता करने के लिए जोर देकर कहा, "अगर सूरजमल मारा गया तो दुनियां में तुम्हारा मुंह काला हो जायगा।" अन्त में, इन शर्तों पर समझौता हुआ कि सूरजमल मूंडेटी छोड़ दे और पिता के जीवन काल में दो ही गांवों पर गुजारा करे; पिता की मृत्यु के बाद उसकी जागीर का ठाकुर बनने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी। इस पर वह युवक कुंवर अपनी माता को साथ लेकर उसे मिले हुए गांवों में रहने को मूंडेटी से विदा हो गया; जालिमसिंह ने अपने गांव में पुनः प्रवेश किया।

सूरजमल ने वहां से निकल कर, अपने पिता के भय से, कोई अधिक सुरक्षित स्थान तलाश करने का प्रयत्न किया परन्तु कोई भी पड़ोसी ठाकुर उसको शरण देने को राजी नहीं हुआ। वह कुवावा गया जहां एक सुदृढ़ परकोटे वाला गढ़ था। वह गांव चारणों का था, जो इस अतिथि के आने से प्रसन्न नहीं हुए। सूरजमल ने उनको समझा-बुझा कर शान्त किया कि उसका विचार अधिक लम्बे समय तक ठहरने का नहीं था; वह तो घाव ठीक होने तक ही रहना चाहता था। उसी समय महाराजा भी उधर आ निकला तब चारण उसके पास गए और सूरजमल को ठहराने की लिखित अनुमति प्राप्त की। तब वह कुंवर बहुत दिनों तक उन चारणों के गांव में रहा और अन्त में अपने परिवार को वहीं छोड़कर अहमदनगर चला गया। वहां के राजा करणसिंह ने उसको अपनी नौकरी में रख लिया और उसको एक गांव व नक्कारों की जोड़ी बख्शीश में दी।

सन् 1833 ई० में महाराजा गम्भीरसिंह देवलोक हुआ। उसके शव के साथ चौदह रानियां सती हुईं परन्तु, उत्तराधिकारी महाराजा जवानसिंह की माता अपने शिशु के पालनपोषण के लिए जीवित रही।

छप्पय×

पड़े नक्षत्र भुव पंथ, घड़ाके कंप हुइ धर;
सुरभी निसासा होय, शब्द कठिण विललात कर;
इन्द्र व्रषा तुछ अंब, व्रषा अनमंत उपलवह;
तेज खंड भये तंड, मंड, घुमंड मारुतह;

× बहुत से नक्षत्र पृथ्वी-पथ पर गिर पड़े, घड़ाके की आवाज हुई, धरा घूमने लगी; गायें निःश्वास डालने लगीं और कठिनता से भयभीत आवाज करके रम्भाने लगीं; इन्द्र ने जल तो थोड़ा बरसाया, परन्तु अनगिनती ओले साथ में गिराये; मार्तण्ड का तेज (बादलों से ढंक जाने के कारण) खंड (मंद) हो गया, आकाश

→

अस उद्घट ओसगुन आगमन, हा भावी बंल होय हो
तरण माट हुवो ओत्तम वपू, भूप भाणकुल भाण भो ।।1।।[6]

उमंड-घुमंडने वाले बादलों से मंडित हो गया, तेज हवा चलने लगी; ऐसे अघटित अपशकुनों के आगमन से वलात् यह भान होने लगा कि कोई अनिष्ट होने वाला है (भावी प्रवल हो गया है); उसका उत्तम शरीर तुच्छ मिट्टी में मिल गया और सूर्यवंशी राजा सूर्य हो गया (सूर्यलोक को चला गया) ।। 1 ।।

6. नक्षत्र टूटने व भूकम्प आदि का जो वर्णन किया गया है वह वास्तव में सत्य है । 1833 ई० का वर्ष दुष्काल का वर्ष तो नहीं था परन्तु उस समय वस्तुओं की असाधारण तंगी आ गई थी । वम्बई सरकार ने अपने 10 दिसम्बर के पत्र में संचालक मण्डल (Board of Directors) को लिखा है—

"पालनपुर के राजनीतिक अधीक्षक (Political Agent) ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि खरीफ की फसल विल्कुल नष्ट हो गई है जिसके कारण अनाज के भाव सन् 1812–13 में पड़े अकाल की अपेक्षा भी कहीं ज्यादा वढ़ गए हैं । अनाज की आमद में सहूलियत पैदा करने की नजर से और जहां तक हो सके वहां तक गरीब तवके के लोगों को राहत पहुंचाने की गरज से पालनपुर के दीवान ने, लेफ्टिनेन्ट प्रेसकॉट की सलाह मान कर, आने वाले अनाज पर चुंगी लेना विल्कुल वन्द कर दिया है; और खुशकिस्मती से इस इलाके में सिंचाई के लिए वहुत वड़े हिस्से में सहूलियत होने की वजह से किसानों को कुएं खोदने के लिए हर तरह की इमदाद दी जा रही है और इस वजह से मौजूदा कमी को किसी हद तक दूर किया जा सकेगा । फिर भी, ऐसा अन्देशा है कि गुजरात भर में फैले हुए कोली और दूसरे उपद्रवी लोग, फसलें खराव हो जाने व कीमतें वढ़ जाने से वेकार और नाउम्मीद होकर, गिरोह वनाकर रियाया के अमन में दखल व धमकियां दे सकते हैं; इसको रोकने के लिए सभी वाजिव तरीके और वचाव के पहलू अपना लिए गए हैं ।

16 अगस्त के लेख में मिस्टर विलोवॉई (Willoughby) कहता है कि उस समय प्रायः समस्त काठियावाड़ में विल्कुल वर्षा नहीं हुई थी और ऐसी आशा भी नहीं थी कि ठीक समय पर मेह वरस जायगा और फसलों की रक्षा हो सकेगी । इसका नतीजा यह हुआ कि अनाज और चारे की वहुत कमी आ गई और व्रिटिश व गायकवाड़ सरकारों के लिए लगान में भारी छूट करना जरूरी हो गया । अनाज की कीमत तिगुनी हो गई और दिनों-दिन वढ़ती जा रही थी । चारे की तो खास तौर से कमी आ गई थी और रोजाना वहुत से

→

भूपत पड़े गम्भीर, अभंग हिन्दुवाण उजागर;
सुणी सवे रणवास, हरखी सतियां कहे हर हर;
तके वंश तारवा, सधा अहू पखां चढावां;
साथ करां सामरो, किरत नव खंड कहावां;
इम धार वात मन में अडग, परम ज्योत पिछानिया;
पति तणी अवे छेटी पड़े, मुज राजधर्म केहौ राणियां ।। 2 ।।*

ढोर मारे जा रहे थे। मि. विलीवॉई ने आगे लिखा है, "मेरी राय में कर देने वालों को करीव-करीव आधी छूट देनी पड़ेगी।"

"भुजके वायव्य और नैऋत्य कोण वाले परगनों से तो वहुत ही खराव हालत की रिपोर्ट आई जिस पर रेजीडेण्ट को दौरा करके अपनी आंखों से हालात देखने को मजवूर होना पड़ा। ऐसा लगता है कि इन रिपोर्टों में अनावश्यक रूप से वढ़ा-चढ़ाकर विवरण नहीं दिया गया था। वहुत से स्थानों पर इस साल वर्षा विल्कुल नहीं हुई और गए साल भी वहुत थोड़ी ही हुई थी इसलिए चारा तो विल्कुल नहीं रहा और नित्य वड़ी संख्या में भूखों मरते जानवर नष्ट होने लगे। इस इलाके में पहले जव कभी अकाल पड़ता था तो लोग गुजरात, काठियावाड़ और सिन्ध में अपने परिवार और ढोरों के टोले लेकर चले जाया करते थे परन्तु इस बार तो इन प्रान्तों में भी सहारा नहीं है। दरवार ने गरीवों और मजदूरों का दुःख दूर करने के लिए फैसला किया है कि शहर के पास तालाव खोदने वाले प्रत्येक व्यक्ति को एक सेर अनाज रोजाना दिया जायगा और दीवान ने इसमें एक पाव रोजाना अपने खर्चे से देना और जोड़ दिया है।"

इस रिपोर्ट के वाद थोड़ी सी वारिश हुई परन्तु इससे उत्पन्न हुई आशा भी जल्दी ही नष्ट हो गई और फसल का भविष्य अधिक अन्धकारपूर्ण हो गया क्योंकि टिड्डियों के दल के दल आकर देश में छा गए और उन्होंने सभी तरह की फसलों को नष्ट कर दिया। इस आघात से लोग घोर निराशा में डूव गए और अगली फसल वोने के लिए भी उत्साहित नहीं हो रहे हैं; ऐसा विश्वास है कि दरवार, सामान्य रूप से, चौथे हिस्से का ही राजस्व वसूल कर सकेंगे।

---

* गम्भीरसिंह राजा का देहान्त हो गया, जिसका तेज हिन्दुओं में अभग्न (अभंग) था; जव पूरे रणवास में यह खवर फैली तो सतियों ने हर्षित होकर हर! हर! कहा; वे वोलीं, अपने वंश का विस्तार करने के लिए, अपने पिता, माता और पति इन तीनों पक्षों को ऊँचा वढ़ाने के लिए तथा नवों खण्डों में कीर्ति विस्तार करने के लिए हम स्वामी का साथ करेंगी; इस प्रकार मन में निश्चित करके उन्होंने परम ज्योति को साक्षी करके पहचान लिया और कहा "यदि पति में और हम में अन्तर (दूरी) पड़ गया तो हमारा (रानियों का) राजधर्म कहां रहा"? ।।2 ।।

→

नेह नाथ नारियां, केक मन हरष करे वे;
नेह नाथ नारियां, धंख चित्र उमंग धरे वे;
नेह नाथ नारियां, वड़ी ठकरात सजावे;
नेह नाथ नारियां मीत मरदंग गवावे;
तन भवान तणी हम कहे त्रिया, सुकुल वाट किय सारिया।
नाथ रे साथ वलवे नहि, नेह नाव कि नारियां ॥ 3 ॥

अण समये एटला, मरम-छद वचन उचारे;
सतियां कर संकल्प, अग्निस्नान हि उर धारे;
प्रथम दौलतकुंवरी, भजे चढ़ी भटियांणी;
जसुकुंवरी चहुंवाणी, जगत-माता सी जांणी;
सत अधिक सती सीसोदणी, कुंवरी अजव अधिक चढ़ती कला;
सती संग करत महाराज रो, वध्यो सुजस चहुवे वला ॥ 4 ॥

कुंवरी लाल आहड़ी, सति सुता जनक सरीखी;
वखतकुंवरी चावड़ी, प्रकट सुरसुरी परीखी;
चंदकुंवरी चहुंवाणी, अखां ज्यम भवा अनोपम;
पारवती ज्यम प्रकट, कुंवरी वदन सत रे क्रम;

(पति के) स्नेह के कारण (याद करके) कितनी ही स्त्रियां हर्षित हो रही हैं; (पति के स्नेह) के कारण कितनी ही स्त्रियां अपने चित्त में उमंगें भर रही हैं स्नेह के कारण कितनी ही नारियां (अन्तिम) जलूस को ठकुराई से सजा रही हैं, और स्नेह के नाम पर कितनी ही नारियां गीत गायन और मृदंग वादन की व्यवस्था कर रही है; तव भवान के पुत्र की सभी पत्नियों ने सत्कुल का मार्ग ग्रहण किया और कहा "यदि पति के साथ नहीं जलीं तो स्त्रियों का पति के प्रति क्या प्रेम हुआ ?" ॥ 3 ॥

उस समय उन्होंने इस तरह के बहुत से मर्म को छेदने वाले वचनों का उच्चारण किया; सतियों ने दृढ़ संकल्प करके अग्नि-स्नान करने की बात मन में धारण की; सर्वप्रथम दौलतकुंवरी भटियाणी (चिता पर) चढ़ी; जसकुंवरी चहुंवाणी जगन्माता दुर्गा-सी जान पड़ी; अजवकुंवरी सीसोदणी के अधिक सत चढ़ा, वह वढ़ती हुई कला के समान थी; जब सतियां महाराज का साथ दे रही थीं तो उनका सुयश चारों ओर बढ़ता जा रहा था ॥ 4 ॥

→

पासवान उभय नाथी, वनां खुशी उमंग चित खलभली ।
गढपति लार गंभीर रे, मेहलां वलण कज हलमली ॥ 5 ॥
उमेदां उमंगी, हुई सत करण सजूरण;
जसुवाई धा-वहिनी, जके तन उठी जलण;
सु-मुरतां सव जान, आप सत काल उमगे;
जेठी, दोली जोड़, लार पति के ऊ ए लगे;
अणवार तीय कथ ओचरे, कलजुग लता न कामरी ।
सतिपुरे जाय वसशां सही सेवा करशां सामरी ॥ 6 ॥
मरदाना के मांह, तवे कृत अडग तणी तक;
पिछे सदन निज पहूंची, करे स्नान गंगोदक;
अधिक पोसाकां अंग, जरी गरकश (जरकश) जाणे जण;
तन भूसण मोतियां, पहीरी मज माती आपोपण;
वरणाव करे तण ही वकत, धर्म सुभारथ उर धरी ।
भवानरा नंद साथे मेली, सती वलण कज संचरी ॥ 7 ॥

लालकुंवरी आहड़ी जनकसुता सीता जैसी सती थीं; वखतकुंअरी चावड़ी गंगा के समान थीं; चन्दकुंवरी चहुंआणी का हम अनुपम भवपत्नी भवानी के समान वखान करते हैं; इसी सत् के क्रम में वदनकुंवरी पार्वती की तरह प्रकट हुई; नाथी और वनां नाम की दोनों पासवानों (उप-पत्नियों) के भी चित्त में खुशी और उमंग के कारण खलबली मच गई; इस प्रकार गढ़पति गम्भीरसिंह के साथ जलने के लिए महिलाएं हिलमिल कर तैयार हुईं ॥ 5 ॥

उमेदां नाम की खवामिन उमंग में भर कर सती होने के लिए तैयार हुई; जसुवाई धाय-वहन के शरीर में भी जलन (अग्नि) उठी; सुमुहूर्त जानकर सती होने की उमंग उनमें उमगी; जेठी और दोली नाम की दोनों ही दासियाँ अपने स्वामी का अनुसरण करने को तत्पर हुईं; उस समय वे स्त्रियां कह रही थीं "यह कलियुग की वेल (लता) अव काम की नहीं रही, हम तो सतियों के पुर में जाकर वसेंगी और स्वामी की सेवा करेंगी ॥ 6 ॥

वे मरदाने (पुरुषों के रहने के महलों) में वहुत देर तक इस तरह वोलती रहीं, फिर अपने-अपने सदन (रावले) में जाकर उन्होंने गंगाजल से स्नान किया; शरीर पर खूव (अच्छी-अच्छी) पोशाकें धारण कीं, वे पोशाकें जरी और जरकश की थीं; मोतियों के आभूषण शरीर पर सजाकर वे अपने आप में मस्त हो गईं; वे उस समय अपना वणाव (शृंगार) करके सुन्दर भारतीय धर्म को हृदय में धारण करती थीं; भवान के पुत्र के साथ भली सतियां जलने को संचार करने लगीं (आगे वढ़ीं) ॥ 7 ॥

नेऊवानुं नत वर्ष, संवत बधते एक सत्तर;
अपा रितु, वरण, अषा, भया सम गत भासंकर;
श्रावण दिन पख श्याम, सोम अगीयारस जाणो;
पतंग चढ़ते पड़ी पंदर प्रान गंभीर प्रयाणो;
सो रात दिवस रनिवास रह, सतियां करत चलामणो।
निसि होत असो नृप राजरो, हवो प्रभात हलामणो ॥ 8 ॥

गाज नाद घणकार, तांत झणकारत वामा;
अहक अहक अंवालु, डहक करतालं दमामा;
अमंगल मंगल असो, तसो तण घड़ी अतायो;
जण विनितारो जूथ, सुपुह जातरा सिधायो;
सो गंभीर नृप सतियां सहित, हा-हसत मुख हेंडली
ले चल्यो अस्त पामण कजे, मयंक उडगण मंडली ॥ 9 ॥

हा-हसती हिंडती, आणंद करती उकसंती;
पग पग जश पावती, कर्म अश्वमेघ करंती;
दाण पुण देयती, नेह तोड़ती पुरांनर;
ध्यान स्वामि धारती, पिंड मानती तृणापरि;

सत्रह से एक अधिक और नव्वे सहित (अर्थात् अट्ठारह सौ नव्वे (1890) संवत् में, वर्षा रहित वर्षा ऋतु में, जब भास्कर की गति समान हो गई थी, श्रावण, कृष्ण पक्ष, सोमवार एकादशी के दिन, पन्द्रह घड़ी दिन चढ़े, गम्भीरसिंह के प्राणों ने प्रयाण किया; उस दिन और रात भर वह (उसका शव) रनिवास में रहा, जहां सतियां चलामणा (महाप्रस्थान) की तैयारियां करती रहीं; रात्रि बीत जाने पर प्रभात समय में राजा का 'चलावा' हुआ ॥ 8 ॥

घणकार नाद गूंजने लगा, तन्तु वाद्यों (तांत के बाजों) को स्त्रियां झन-कारने लगी, अंवाल (तांबे के बने वाद्यों) छोटे नक्कारों से अहक-अहक शब्द होने लगा, करताल और दमामें भी डहकने (बजने) लगे; उस अमंगल की घड़ी में भी ऐसा मंगल का सा बरताव (समां) हुआ मानों अपने पुरुष (राजा) के साथ स्त्रियों का झुण्ड यात्रा के लिए निकला हो। वह गम्भीर राजा अपनी सतियों के साथ इस तरह चला जैसे हाथी (अपनी) हथिनियों को आगे करके चल रहा हो अथवा अस्तोन्मुख चन्द्रमा तारिकाओं की मण्डली के साथ प्रस्थान कर रहा हो ॥ 9 ॥

हंसती हुई, झूमती हुई और आनन्द से उत्कण्ठित होती हुई; पद-पद पर अश्वमेघ यज्ञ से प्राप्त होने वाले यश को प्राप्त करती हुई; दान-पुण्य करती हुई,

→

कुण विरद एहि सतियां कहुं, पण में एहड़ी पारखी ।
स्त्रियां नाम अबला अवर, आ सबला सूरा सारखी ।। 10 ।।

अंत थान ऊपरां, आय सतियां अणवारे;
पतंग करी प्रणाम आदि कथ एह उचारे;
हे दिनकर ! हे देव ! सदा तुम सती सहाई;
शुद्ध ईडर सामरो, साम तण भांन सदाई;
कर जोड़ अरज वंदन करे, उर पर ध्यांन अनूप रां;
मरडाय शक्ति हाली मसत, भर डरथी रही ऊपरां ।। 11 ।।

भूपत धन्य माटियां, पृथवी जश वास प्रमाणां;
सिसोदा धन्य साख, साख धन्य हे चहुवांणां;
धन्य साख चावड़ां, उमर सौभाग्य वड़ाले;
धणी साथ धुव घड़े, पावक तन सती प्रजाले;
के साख साख धन्य धन्य कवीन्द्र, पति धन्य नृप तो परणियां;
साम रो नांव भवसिंधु सें, तारण भोका तरणियां ।। 12 ।।

पुर (नगर) के लोगों से नेह (मोह) छोड़ती हुई, अपने स्वामी का ही ध्यान करती हुई और शरीरपिंड को तुच्छ समझती हुई, (ऐसी) वे सतियां थीं; मैं उनका विरुद कहने वाला कौन हूं ? (अर्थात् मुझ से उनका यश नहीं कहा जा सकता) परन्तु, यह परीक्षा मैंने की है कि जिन स्त्रियों का नाम 'अबला' है वे और हैं ये तो सबल शूरवीर के समान हैं ।। 10 ।।

अन्त में दाह-स्थान पर आकर सतियों ने सूर्य को प्रणाम करके इस प्रकार प्रार्थना की "हे दिनकर देव ! आप सदा ही सतियों के सहायक हो (हम यही मांगती हैं कि) भांन (भवांन) का पुत्र सदा ही शुद्ध रूप से ईडर का स्वामी हो; इस प्रकार वे हाथ जोड़कर वंदना कर रहीं थीं और हृदय में (परमात्मा का) अनुपम ध्यान धरे हुए थीं; बड़ी मरोड़ के साथ मस्त होकर शक्ति के समान वे चलीं और (समस्त) भय से ऊपर रहीं ।। 11 ।।

भाटी राजा को धन्य है जिसका यश पृथ्वी पर प्रामाणिक रूप में निवास करता है; सीसोदियों की शाखा धन्य है, चहुंवाण शाखा भी धन्यवाद की पात्र है; चावड़ा शाखा धन्य है जिसका ऐश्वर्य और सौभाग्य वड़ा है; (इन शाखाओं की पुत्रियां) [अपने धणी (स्वामी) के साथ सतियां ध्रुव (अविचल) भाव से अपने शरीरों को जला देती हैं; कवीन्द्र इनमें से प्रत्येक शाखा को धन्यवाद देता है; वह राजा भी धन्य है जिसके साथ इनका परिणय हुआ; ये अपने स्वामी के नाम (यश) को भवसिंधु (संसार समुद्र) की लहरों में तैराने के लिए नौका (तरणी) स्वरूप हैं ।। 12 ।।

→

मंड वंश मरजाद, मंड आनंद अतिय मन;
मंड रसन हरि मन्त्र मंड वैराग्य साधुजन;
मंड कंप कायरां, मंड क्षत्रिय पुरुषातन;
कमध मंड थरू कीर्ती कर मंड सुजस कर्म;
वड मंडी धर्म संसार विच, साम साथ तन छंडियां।
पतनी गंभीर चिता परे, ए पग मंडे मंडियां ।। 13 ।।

मर्यादा वंश (कुल) के लिए मंडन (भूषण) रूप है; अतीत आनन्द मन का मंडन है; हरिमंत्र (का जाप) रसना (जिह्वा) का भूषण है, इसी प्रकार वैराग्य साधुजनों का मंडन है; कंप (कंप कंपाना) कायरों को शोभा देता है और पुरुषातन (पौरुष) क्षत्रिय का भूषण है; कमधजों का भूषण स्थिर कीर्ति है और कीर्ति का मण्डन सुयश-सम्पादक कर्म होते हैं; जिन स्त्रियों ने अपने स्वामी के साथ तनुत्याग किया है उन्होंने संसार के बीच धर्म को मंडित (सुशोभित) कर दिया है; गम्भीरसिंह की चिता पर जब उसकी पत्नियों ने पग मांडे (आरोहण किया) तो उसके साथ ही ये सब सुशोभित हो गए ।। 13 ।।*

---

* अक्टूबर 8, 1833 के दिन बम्बई सरकार की तरफ से संचालक मंडल (Court of Directors) के नाम जो डाक गई उसमें महाराजा गम्भीरसिंह के मरण समय का वृतान्त इस प्रकार लिखा है—

"ईडर के राजा गम्भीरसिंह की मृत्यु 15 अगस्त के दिन हुई। इस अवसर पर गुजरात के राजनीतिक आयुक्त (Political Commissioner) ने अपने प्रथम सहायक मिस्टर अर्स्किन (Mr. Erskin) को ईडर भेजा। इसका अभिप्राय यह था कि उस मौके पर कोई गडवड़ी हो तो वह उसको रोक दे और वहां के ठाकुरों आदि को यह समझा दे कि अंग्रेज सरकार का विचार यह था कि वालक राजा को गद्दी पर विठा दिया जाय और माजी (राजमाता) राजकाज चलाती रहे। राजा के अग्नि-संस्कार के समय जो खेद एवं करुणा-जनक दृश्य उपस्थित हुआ उससे मंडल (कोर्ट) को वड़े अफसोस के साथ अवगत कराते हैं—

"राजा कुछ दिन वेहोश पड़ा रहा और फिर उसकी मृत्यु हो गई। यह वात वालक राजा की माता को उसके अग्निदाह होने के कुछ समय वाद तक मालूम नहीं होने दी गई। परन्तु, अन्य सात रानियां राजा के साथ जलने को तैयार हो

→

गईं। इस प्रकार 13 अगस्त को प्रातःकाल वे सत चढ़ी हुई उन्मादिनी स्त्रियां, राजा की दो अन्य-जातीय रखैलें, एक हजूरण (प्रधान सेविका) और चार दासियां समस्त ईडर की वस्ती की आंखों के आगे और सभी कामदारों के समक्ष चिता में जलकर राख हो गईं। इस रोमांचकारी घटना को सभी कामदारों का आश्रय प्राप्त था; राजा का कोई भी कुटुम्वी जन ऐसा नहीं था जिसने इसको रोकने का प्रयत्न किया हो और न ईडर में कोई ऐसा सत्ताधारी ही था जो इस विनाशकारी कर्म का निवारण करता। मिस्टर अर्स्किन लिखता है कि एक रानी को तो कुछ मास का गर्भ था और एक दूसरी रानी का तो राजा के साथ सहवास ही नहीं हुआ था; उसने जलने के लिए नामर्जी (असहमति) जाहिर की थी। अवस्था में सबसे वड़ी और पदवी में दूसरे स्थान पर जो रानी थी, उसकी उम्र साठ वर्ष थी; सब से छोटी, जिसके विवाह को केवल उन्नीस महीने ही हुए थे, छब्वीस वर्ष की थी। लोगों के मन में धर्म की भ्रान्त धारणा होते हुए भी उन्होंने इस रोमांचकारी कृत्य को सामान्यतः धिक्कारने योग्य ही समझा था; आम लोगों का यह विचार था कि यदि उचित उपाय काम में लाए जाते तो तीन प्राणियों से अधिक का वलिदान नहीं होता। एक दर्शक ने कहा कि जब चिता प्रज्वलित हुई तो सबसे वड़ी रानी ने कारभारियों को वुलाकर कहा, मैंने तो सती होने का निश्चय किया ही था और तुम यदि मुझे समझाने आते तो मैं मानने वाली भी नहीं थी, फिर भी किसी की भी ओर से कोई दयाभाव प्रकट नहीं किया गया, यह आश्चर्य की वात है" अन्त में, उसने कहा, "अपने राजा के सम्पूर्ण कुटुम्व का नाश करा कर जो लूट मचाने की आशा रखते हो तो जाओ, उसको भोगो।" कारभारियों ने राजा के एकमात्र पुत्र की माता रानी को ही वचाने का लोभ इस लिए किया है कि यदि उसका भी नाश हो जाता तो उनके मनसूवों पर आशंका की जा सकती थी।"

प्रकरण पन्द्रहवां

महीकांठा का प्रबन्ध

सन् 1828 ई. में महाराजा गम्भीरसिंह ने रूपाल के ठाकुर फतेहसिंह के कीड़ी नामक गांव को लूट लिया। इस पर फतेहसिंह ने पालनपुर स्थित ब्रिटिश प्रतिनिधि मेजर माइल्स[1] को फरियाद की, जो उस समय अस्थायी रूप से महीकांठा प्रांत की भी देखभाल करता था। कुछ समय बाद उस अधिकारी ने निर्णय दिया कि गांव लूट लेने के कारण फतेहसिंह को महाराजा हर्जाने की रकम दे। उसके द्वारा कायम की हुई रकम इतनी भारी थी कि ईडर में कहावत चल पड़ी "कीड़ी (चींटी) तो कुंजर भई।" अस्तु, महाराजा ने वह रकम मरणपर्यन्त नहीं चुकाई और रूपाल के ठाकुर ने इरादा किया कि या तो बारहवाट हो जाय या ईडर के किसी ऐसे बड़े आदमी को पकड़ ले जाय जिसकी 'फिरौती' में रकम वसूल हो सके। उन्हीं दिनों ईडर के कारभारियों में एक खेमचन्द था जिसके भाई का नाम अखैचन्द था; वह व्यापारी था। एक बार अखैचन्द प्रतापगढ़ से ईडर लौटते हुए रात के समय रूपाल ठहरा; उसके साथ बहुमूल्य सामान, अफीम और अन्य व्यापार की वस्तुएं थीं, जिनकी सुरक्षा के लिए दस बन्दूकधारी मनुष्य भी थे। रूपाल के ठाकुर ने उस व्यापारी की बहुत अच्छी आवभगत की और दूसरे दिन सुबह माल तो रक्षकों के साथ रवाना कर दिया तथा अखैचन्द को बहुत मनुहार करके भोजन के लिए रोक लिया और उसे सुरक्षित घर तक पहुंचा देने का आश्वासन भी दिया। जीमण के बाद ठाकुर सुरक्षा के बहाने से दस घुड़सवार साथ लेकर सेठ को पहुंचाने के लिए रवाना हुआ परन्तु, एक ऐसे स्थान पर पहुंचते ही जो उसके मतलब के लिए अनुकूल था ठाकुर ने अपने मेहमान को बन्दी बना लिया और उसको जंगल में ले गया। सेठ ने अपनी मुक्ति के लिए ठाकुर को मुंहमांगा धन देना स्वीकार किया, परन्तु फतेहसिंह ने कहा, "मुझे तुम्हारा धन नहीं चाहिए, केवल खेमचन्द के नाम एक चिट्ठी लिख दो कि मुझे कीड़ी के मुआवजे की रकम चुका दें या फिर कबूल कर ले कि जब तक रकम न चुक जाय रूपाल से कोई कर वसूल नहीं किया जाय।" सेठ ने ठाकुर के कहे अनुसार खेमचन्द को पत्र लिख दिया, परन्तु उसने उत्तर दिया "मैं इस मामले में कुछ

---

1. ऐसा मालूम होता है कि उस समय, मेजर माइल्स नहीं, लेफ्टिनेन्ट प्रेस्कॉट पालनपुर का एजेन्ट था।

नहीं कर सकता क्योंकि ईडर रियासत[2] ब्रिटिश सरकार की जब्ती में है। इस पर रूपाल का ठाकुर अखैचन्द को बहुत तंग करने लगा; वह कई दिनों तक उसको खाना नहीं देता, पीटता और उसके कान में बारूद रखकर सुलगा देता। अब बेचारे बनिए ने अपने पास से दोगुनी रकम देने के लिए कहा, परन्तु फतेहसिंह ने उत्तर दिया,

---

2. बम्बई सरकार ने अपनी 15 सितम्बर, 1834 ई० के डिस्पैच में कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के नाम इस प्रकार लिखा है—

"गम्भीरसिंह की मृत्यु के बाद ईडर राज्य की सत्ता छाजूराम नामक एक ओछे चालचलन वाले आदमी ने हथिया ली। वह पहले राजा के बड़े पुत्र उम्मेदसिंह की सेवा में रहता था और महाराजकुमार से एक बड़ी रकम मार लेने में सफल हुआ था। लालजी साहब की मृत्यु के बाद गम्भीरसिंह ने उसको अपना दीवान बना लिया और कुछ समय तक वह नाममात्र के लिए उसका प्रधान मंत्री भी रहा। बाद में, गम्भीरसिंह अपना काम आप ही सम्हालने लगा और मृत्यु के कुछ समय पूर्व तो उसका छाजूराम पर से बिलकुल विश्वास उठ गया था, यद्यपि राजा की मृत्यु के समय तक तो वह दीवान ही कहलाता था परन्तु राजकाज के विषय में न उससे सलाह ही ली जाती थी और न कोई काम ही उसके सुपुर्द था। रानी के भाई पीथोजी के जरिए वह उसका कृपापात्र बन गया था और मूंडेटी का ठाकुर ज़ालिमसिंह तो शुरू से ही उसके दुष्कर्मों में सहायक था; उसी की मदद से वह अपना सारा कारोबार चलाता था तथा उसी आधार पर उसने वह लूट भी चालू रखी जो उसने सतियों के अवसर पर चालू की थी और जिसके विषय में हम अपने 8 अक्टूबर, 1833 ई० के पत्र में रिपोर्ट कर चुके हैं। मानव जीवन के उस निर्दय बलिदान को पूरा कराने में सर्वोपरि उसी का हाथ था और उसके इस हृदयहीन कृत्य के फलस्वरूप एवं प्रजापीड़न के अन्य अनेक दुष्कार्यों के कारण वह समस्त ईडरवाड़ा में घृणा का पात्र बन गया। इससे स्पष्ट प्रतीत होता था कि इस प्रबन्ध के कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा संरक्षित बालक महाराजा की सम्पत्ति नष्ट हो जाती और प्रजा से वसूल किया हुआ राजस्व भी इस तरह लूट जाता कि सरकार के लिए गायकवाड़ दरबार से किए हुए अहदनामे का पालन करना, असम्भव नहीं तो, कठिन अवश्य हो जाता; इसलिए आयुक्त (Politioal Commissioner) के अनुरोध पर हमने यह स्वीकृति दे दी कि बालक महाराज की नाबालिगी में निम्नलिखित व्यक्तियों की एक प्रतिनिधि सभा कायम करदी जावे—महारानी, कुकड़िया का दुर्जनसिंह (प्रधान), हमीदसिंह (सुवर का) जो स्वर्गीय महाराजा का चचेरा भाई है, और मूंडेटी के ठाकुर जालिमसिंह का कारभारी मीरजी सेठिया।"

"इससे कोई फायदा नहीं, मुझे यह रुपया रखने कौन देगा"? अन्त में, खेमचन्द ने मूंडेटी से सूरजमल को बुलाया और उसको अपने भाई की रिहाई कराने के लिए बड़ी रकम देने को कहा और साथ ही उसके लिए हुण्डी भी लिख दी।

अब सूरजमल, अपने तत्कालीन निवास-स्थान, कुवावा, से रूपाल के ठाकुर की खबर लेने निकला। बावड़ी गांव के भीलों और फतेहसिंह में झगड़ा रहता था क्योंकि वह रहवर राजपूत था और रहवरों ने पहले बहुत से भीलों को मार दिया था। इस लिए सूरजमल ने उन भीलों को ठाकुर की तलाश करने को नियुक्त किया। वे लोग दूसरी घुमक्कड़ जाति के वेश में निकले और अन्त में उन्होंने पता लगा लिया कि फतेहसिंह कहां था। यह सूचना मिलने पर सूरजमल ने चुपचाप सिरबंधिये एकत्रित करना शुरू कर दिया; उसने दो सौ सिपाही तो अहमदाबाद और मोड़ासा में रखे और दो सौ का जमाव टींटोई में किया। अपने जिलेदारों के सवारों के आने तक वह कुवावा में ही रहा और फिर बन्दूकचियों को साथ लेकर भीलों के पीछे-पीछे उस स्थान की ओर रवाना हुआ जहां रूपाल का ठाकुर छुपा था। जब मूंडेटी की सेना आई तो एक ब्राह्मण, जो अखैचन्द की रसोई बनाता था और एक भील एक ऊँची टेकरी पर खड़े हो कर देखने लगे। सूरजमल के आदमियों ने उसकी तरफ गोली दाग दी जिससे ब्राह्मण का पैर जख्मी हो गया और भील जान से मारा गया। बन्दूक की आवाज सुन कर रूपाल के ठाकुर ने बनिए को एक खड्डे में उतार दिया और स्वयं उसके पास ही कटार निकाल कर खड़ा हो गया तथा बनिये को कह दिया कि आवाज निकालेगा तो तत्काल मार दिया जायेगा। ठाकुर के पुत्र गोकुलजी ने यही हाल ब्राह्मण का किया। इस प्रकार उसको हल्ला मचाने से रोक दिया गया सूरजमल के आदमियों ने इधर-उधर बहुत तलाश की, परन्तु जब कोई नहीं मिला तो प्रयत्न छोड़ दिया और रूपाल तथा चांदणी की ओर बढ़ गए, जहां वे लोग पन्द्रह दिन तक ठहरे रहे।

चांदणी से सूरजमल ने खेमचन्द को लिखा कि सिरबंधियों का वेतन चुकाने के लिए रकम भेजे, परन्तु उसने रुपया पेशगी देने से इनकार कर दिया और कहा कि सूरजमल ने उसका काम सुधारने के बदले बिगाड़ दिया। सेना के लोग तनख्वाह के लिए हायतोबा मचाने लगे तो सूरजमल को उन्हें शान्त करने की और कोई तरकीब नहीं सूझी और वह उन्हें वापस रूपाल की तरफ ले गया और वहां से कुछ मनुष्य व ढोर उठा लाया। ढोरों की कीमत कायम कर के उन्हें सेना में बांट दिया गया और मनुष्यों की फिरौती में प्राप्त रकम भी इसी तरह वितरित कर दी गई, परन्तु, फिर भी उनका पूरा चुकारा न हो सका। तब सूरजमल अपने आदमियों को बोखार ले गया, जो रूपाल ठिकाने का ही गांव था, और वहां पर लूट शुरू कर दी।

रूपाल के ठाकुर ने, कुछ समय पहले, एक व्यापारी से कुछ अफीम लूट कर बोखार के एक ब्राह्मण के घर में रख दिया था। सूरजमल को मालूम हुआ तो उसने

ब्राह्मण से अफीम तलब किया। ब्राह्मण और उसकी स्त्री ने तुरन्त ही 'त्रागा' शुरू कर दिया; उन्होंने अपने शरीरों पर घाव कर लिए और जो कोई उनके घर में घुसता उसी पर अपने रक्त के छींटे मारने लगे। इस पर राजपूतों ने अपना यह प्रयत्न तो छोड़ दिया परन्तु गांव में से मवेशी और अन्य सामान ले गए तथा उन्होंने उनको पहले की तरह सेना में बांट दिया। इसके वाद मूंडेटी के ठाकुर ने दो-तीन ईडर के गांव भी लूट लिए क्योंकि वहां के मंत्री ने उसकी मांग पूरी करने से इनकार कर दिया था। फिर, वह मूंडेटी के पास 'फारकी' नामक जंगल में जाकर रहा और वहां से ही ईडर के गांवों से घास, अफीम, तम्बाकू, गन्ना और अन्य आवश्यक वस्तुएं वसूल करने लगा। जव कभी गांव वाले उसकी मांग पूरी करने से इनकार कर देते तो वह उस गांव को लूट लेता; परन्तु, यह सव होते हुए भी सिरवंधियों का वेतन पूरा नहीं चुकाया जा सका। तव 'फारकी' के जंगल में ही सिरवंधियों ने अनशन शुरू कर दिया और सूरजमल को भी दो तीन दिन तक कुछ नहीं खाने पीने दिया तथा उसे धमकी भी दी। इस पर सूरजमल ने उनसे वायदे किये और उनको अपने साथ वड़ाली जाने को मजवूर किया; वहां उन्होंने एक सरोवर के किनारे डेरा डाला और गांव वालों से जवरन खुराक-खर्च वसूल करने लगे।

सन् 1835 में अहमदनगर के राजा कर्णसिंह की मृत्यु हो गई। ब्रिटिश प्रतिनिधि मिस्टर अर्स्किन उस समय राजधानी से कुछ मील दूर वखतापुर में था। खवर मिलते ही वह रानियों को सती होने से रोकने के लिए अहमदनगर गया। राजा का शव तीन दिन तक पड़ा रहा; उसका पेट चीर कर मसाला भर दिया गया था। तीसरे दिन मिस्टर अर्स्किन के पास कुछ राजपूत सरदार यह समझाने के लिए भेजे गए कि जवरदस्ती से कोई औरतें नहीं जलाई जावेंगी, जो स्वेच्छा से सती होना चाहेंगी उन्हें ही होने दिया जायगा; यही उनके वाप-दादों से चला आया रिवाज था। मिस्टर अर्स्किन ने सन्देशवाहकों को तो अपने पास रोक लिया और वापस कोई जवाव नहीं भेजा, इसलिए जो राजपूत नगर में थे उन्होंने आस-पास के गांवों से भीलों को वुलाया और सूरजमल को कहला भेजा कि वह अपने सैनिक लेकर आ जावे ताकि वे चुपचाप औरतों को सती हो जाने दें अथवा ब्रिटिश एजेण्ट वाधा उत्पन्न करे तो वह उसको वलपूर्वक रोक ले। सूरजमल समय पर नहीं आया। भीलों ने चुपके से नगर के दूसरे सिरे पर अंग्रेज ऐजेण्ट के मुकाम से वहुत दूर चिता वनाई; उन्होंने उस पर वहुत सी रूई, घी, नारियल और अन्य ज्वलनशील वस्तुएं रखीं। मिस्टर अर्स्किन ने नगर के सभी दरवाजों पर पहरा वैठा दिया था इसलिए राजपूतों ने एक नया ही द्वार निकाल लिया और आधी रात को शस्त्रास्त्र से लैस होकर उसी मार्ग से सतियों को वाहर ले गए। तीन रानियों पर सत चढ़ा था; वे क्रमशः सिरोही के देवड़ा राजवंश, वरसोड़ा के चावड़ा और रणासन के रहवर राजपूतों की पुत्रियां थीं। राजपूतों ने मिस्टर अर्स्किन के डेरे पर निगाह रखने के लिए भीलों को तैनात कर

दिया था इसलिए ब्रिटिश एजेण्ट को तभी खबर हुई जब सतियाँ जल गईं और चिता से ऊंची-ऊंची लपटें उठने लगीं; तब उसने इसकी जांच करने को आदमी भेजे। भीलों ने उन पर तीर चलाए और उनका सामना किया। इस पर स्वयं एजेण्ट घोड़े पर सवार होकर दलबल सहित चढ़ा परन्तु उस समय तक खेल खत्म हो चुका था और राजपूत अपने अपने घरों को लौट गए थे। इस प्रसंग में भीलों द्वारा एक ब्रिटिश अफसर मारा गया।[3]

सतियों के दाह के दूसरे दिन सूरजमल अहमदनगर के पड़ोस में आया और उसने हालात की जानकारी करने के लिए सवारों का एक दस्ता आगे भेजा। उन लोगों ने अहमदनगर आकर, जो कुछ हुआ था वह, सब देखा और लौट कर ठाकुर को सब हाल बताया। तब वह वड़ाली के तालाब पर वापस लौट गया।

मिस्टर अर्स्किन ने सूरजमल को लिखा, 'तुम खरगोश की तरह भागते हो तो मैं शिकारी कुत्ते की तरह तुम्हारा पीछा करूंगा।' इस पर ठाकुर ने अपना परिवार तो पानौरा भेज दिया और स्वयं घूंआ की प्रसिद्ध पहाड़ियों में चला गया, जो घने जंगल से घिरी हुई हैं। ब्रिटिश एजेण्ट के पास जब और अधिक सेना आ गई तो वह ग्यारह गोरे अफसरों को साथ लेकर गांता पर चढ़ा। वहां सूरजमल के दरवाजे पर एक भेड़ बंधी हुई थी। 'अंग्रेजी फौज का एक सवार उनको लेने आया

---

3. बड़ोदा के रेजीडेण्ट के नाम मि. अर्स्किन का पत्र, ता. 9 फरवरी, 1835 ई. 'डेरा लगभग आठ बजे हटाया गया था और सुबह के ढाई बजे तक बिल्कुल शांति रही; ढाई बजे के करीब हल्ला हुआ कि चिता जल उठी है। हमने पहले जिस स्थान पर डेरा लगाया था उसके और नदी के बीच में गायकवाड़ के सवारों की छावनी थी; इस नदी के किनारे पर ही चिता बनाई गई थी। आज प्रातः मुझे खबर दी गई कि स्त्रियों का क्रन्दन और कोलाहल इतना तेज था कि जो सोया हुआ था, जाग पड़ा। उन्होंने (राजपूतों ने) इस हिंसापूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए काफी आदमी साथ रखे थे परन्तु फालतू आदमियों को नहीं; स्त्रियों को किले की टूटी हुई दीवार के रास्ते से घसीट कर जल्दी-जल्दी नदी की ओर ले गए; कर्णसिंह के दोनों पुत्र भी साथ थे। फिर, बड़ी तेजी से उन स्त्रियों को चिता पर चढ़ा दिया गया जो तेल और घी से तरांतर हो रही थी; आग लगा दी गई और वह त्रासदायक कर्म सम्पन्न हो गया। सतियों को रोकने के लिए कोई भी प्रयत्न करने को समय नहीं था और जब मुझे खबर दी गई उस समय खूब ऊंची ऊंची लपटें उठ रही थीं; मैं समझ गया कि सब कुछ समाप्त हो चुका था।

(अंग्रेजी दफ्तर में इससे भी अधिक विवरण प्राप्त होता है—वह इस प्रकरण के अन्त में दी हुई टिप्पणी में पढ़िए।)

तो तुरन्त गोली मार दी गई। और भी बहुत से आदमी मारे गए जिनमें एक गोरा अफसर भी था, परन्तु गांव पर कब्जा नहीं हो सका। रात को सूरजमल की बुआ, जो पोल के राव की विधवा थी, कुछ भीलों के साथ पानोरा चली गई। दूसरे दिन प्रातःकाल फिर हमला हुआ परन्तु दोपहर तक भी गांव फतह नहीं हुआ। धरोई का कोली ठाकुर अंग्रेजों के साथ था; उसका सूरजमल के साथ झगड़ा था इसलिए उसने गांव में घुसने की परवानगी मांगी। अन्त में, जहां घोड़े बंधे हुए थे उधर से वह घुसा और फौजें भी प्रविष्ट हो गईं, गांव को उन्होंने लूट लिया और फिर जला दिया। कुछ राजपूत मारे गए और कुछ घायल हुए। उनमें रतना राठौड़ भी था जो बहुत से हमलावरों को मार कर काम आया; उसकी तलवार का चिह्न एक वृक्ष पर अब तक गांव वाले दिखाते हैं।

सोरठा

आगे कहता एम, सिर पडियां धड़ ऊठसे;
नर रतना तैं नेम, सो राख्यो भड़ शेर रा ॥[4]

उस समय सूरजमल कुछ मील दूर घूंआ की पहाड़ियों में था। जब उसने बन्दूकों की आवाजें और जलते हुए गांव की आग देखी तो जासूस भेज कर खबर मंगाई; उन जासूसों को गांव से भागते हुए मनुष्य रास्ते में मिले और उनसे पूरा वृत्तान्त ज्ञात करके उन लोगों ने लौटकर अपने स्वामी को खबर पहुंचाई। इस पर सूरजमल अपना राजपूत रिसाला व चार सौ बन्दूकची साथ लेकर तुरन्त गोता के लिए रवाना हो गया। उस समय अंग्रेजी सेना गांव के तालाब पर थी; बहुत से घायलों को डोलियों में लिटा दिया गया था और दूसरे लोग तालाब के पास विश्राम कर रहे थे। सूरजमल ने अपने बन्दूकचियों को आगे घाटी में भेज दिया, जो गोता से वड़ाली के मार्ग में पड़ती है। बाद में, जब अंग्रेजों की सेना रवाना हुई तो वह स्वयं भी अपने सवारों सहित उनके पीछे हो लिया। जब वे लोग इस तरह शिकंजे में आ गए तो झड़प शुरू हुई जिसमें बहुत से मारे गए, और बहुत से घायल हुए; कहते हैं, उस स्थान पर एक और अंग्रेज अफसर मारा गया था।

सेना किसी तरह वड़ाली पहुंच गई और वहां से ईडर होती हुई सादड़ा[5] चली गई। सूरजमल घूंआ लौट गया और गलौड़ा के एक महाजन को अपने गुजरान

---

4. कहते हैं कि जब योद्धा का सिर उतर जाता है तो उसका धड़ उठकर युद्ध करता था; हे शेरसिंह के पुत्र रतना! तुमने इस नियम का निर्वाह किया।
5. कैप्टेन डेलामेन (Captain Delamain) ने ईडर से मिस्टर अर्स्किन के नाम तारीख 22 फरवरी, 1835 ई. को जो पत्र लिखा उसमें से गोता सम्बन्धी वृत्तान्त नीचे उद्‌धृत किया जाता है :—

के लिए पैसे वसूल करने को पकड़ कर पानौरा ले गया। अंग्रेज एजेण्ट बाद में दो तोपें लेकर अहमदनगर और ईडर पहुंचा। ईडर में, उसने मूंडेटी के जालिमसिंह को बुलाकर कहा, "तुम अपने लड़के को बुलाओ।" सूरजमल उस समय 'फारकी' में था। जालिमसिंह ने एजेण्ट को उसका पता तो बता दिया परन्तु साथ ही सूरजमल को भी बच निकलने को कहला दिया। इसलिए जब फौज फारकी पहुंची तो सूरजमल

"सूरजमल को जिस स्थान पर बताया गया था वहां मैं सवेरा होते ही जा पहुंचा परन्तु वे लोग उस जगह को छोड़कर जा चुके थे। पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि वह दो दिन पहले ही वहां से दो कोस की दूरी पर गोता नामक गांव में या उसी तरफ कहीं चला गया था। यह भी बताया गया कि वह गांव उसके भाई के पास था और शायद वह उसी के पास कहीं ठहरा हुआ था। मैंने तुरन्त ही उधर प्रस्थान कर दिया और जब सेना के अगले सवार गांव की मुख्य गली में हो कर जा रहे थे तो एक ऊंची गढ़ी पर से बन्दूक का भड़ाका हुआ और कुछ ही मिनटों में दोनों ओर से गोलाबारी चालू हो गई। नतीजा यह हुआ कि जो चार या पांच आदमी मारे गए उनके अतिरिक्त कुल पचीस आदमी, जो उस समय गांव में थे, बन्दी बना लिए गए।

"मुझे यह जाहिर करने में दुःख होता है कि इस झगड़े में हमारा बहुत नुकसान हुआ और जो परिणाम प्राप्त करने का पूर्व-अनुमान किया गया था उसको देखते हुए तो और भी अधिक हानि हुई है। यह सब नुकसान केवल सात आदमियों द्वारा हुआ जिन्होंने एक बहुत मजबूत और ऊंची गढ़ी में मोर्चा ले रखा था; यह गढ़ी एक चौक के बीच में स्थित थी और एक छोटे से दरवाजे के सिवाय इसके अन्दर पहुंचने का कोई मार्ग नहीं था। यह दरवाजा भी चौक में था, जिसके चारों ओर रक्षकों के मकान बने हुए थे और उन्हीं में तीरकश लगाकर इस द्वार की रक्षा की जा रही थी। उनके निशाने अचूक थे और सुरक्षा के लिए उन्होंने जो व्यवस्था की थी वह, आदमियों की संख्या देखते हुए, प्रशंसनीय थी। हमारा जो नुकसान हुआ उसके विषय में पहले ही खेद प्रकट कर चुका हूं। अब मैं आपको अत्यधिक शोक की बात बताता हूं कि जो लोग मारे गए उनमें लेफ्टिनेण्ट पॉटिन्जर भी थे। वे सेना के अग्रभाग का नेतृत्व करते हुए बहुत बहादुरी से लड़ते हुए घायल होकर गिरे और यद्यपि उनको इस स्थान पर ले आए थे परन्तु गई रात के दस बजे वे खत्म हो गए। मैंने उनके शव को इसी क्षण आपके डेरे के लिए रवाना कर दिया है और मुझे आशा है कि यह पत्र उससे पहले ही आपके पास पहुंच जायेगा।

गोता गांव को करीब करीब जला दिया गया था। मैं नम्रतापूर्वक आपको यह भी बताना चाहूंगा कि इस गांव की बनावट के बारे में जो सूचनाएं आपको

→

भाग गया, परन्तु वह इतनी जल्दी में भागा कि अपनी जाजम भी जमीन पर बिछी हुई छोड़ गया, ऊंट की 'काठी' भी नीचे गिरा गया और जिस महाजन को पकड़ा था उसको भी वहीं छोड़ गया। फारकी और पोल के बीच में घोड़ादरो नामक तालाव है, वहीं जाकर सूरजमल ठहरा। ब्रिटिश एजेण्ट ने फिर जालिमसिंह को धमकाया और उसने, यह सोच कर कि अब फौजें उसका पीछा करने की हिम्मत नहीं करेंगी, अपने पुत्र का पता फिर वता दिया कि वह घोड़ादरो में था। अब ब्रिटिश फौजें फिर आगे बढ़ीं और मूंडेटी के ठाकुर को इतना समय नहीं मिला कि वह सूरजमल को अगाऊ खवर भेज पाता। इसलिए जव फौज पहुंची तो उस पर गोलियां चलाता हुआ वह निकल गया। भागते समय उसका भाई शेरसिंह भी उसके साथ था, जो कुछ घवरा गया था, और कैद कर लिया जाता परन्तु सूरजमल के साथी उसे पहाड़ी पर ले गए। इस तरह सूरजमल पुनः पानौरा पहुंच गया।

मिली हैं और जो मेरे पास भेजी गई हैं वे वहुत गलत हैं। इसमें वहुत सी ऊंची ऊंची चट्टानें हैं जो घने जंगलों से ढंकी हुई हैं; घुड़सवार सेना के तो विल्कुल काम की जगह नहीं है और पैदल फौज को भी पूरी असुविधा के कारण गंभीर खतरे की ही आशंका रहती है। इस का सुवूत हमको कल मिला जव हम गांव खाली कर रहे थे। सूरजमल कहीं आसपास ही में था और वह हमारी घुड़सवार सेना के पिछले हिस्से पर अपने साथियों सहित जंगल में से आकर टूट पड़ा; गोलियां चलीं और हमारा एक सवार मारा गया। उस पर आक्रमण करना असंभव था और यदि ऐसा किया जाता तो उसके द्वारा जो कुछ हमारी हानि पहले हुई थी उसमें और वृद्धि हो जाती। मेरे साथ जो पैदल सेना थी उसको मैंने कैदियों को लेकर आगे रवाना कर दिया इसलिए वह हमें उपलब्ध नहीं हो सकी।

मेरा इरादा रात को वड़ाली में मुकाम करने का था परन्तु हम भूल से एक तालाव और मैदान की तलाश में, जो मैंने सुवह देखा था, एक कोस आगे चले आए; वाद में मुझे मालूम हुआ कि उससे हमारा काम नहीं चल सकता था इसलिए हम यहां पहुंचने के लिए आगे वढ़ते रहे और रात के आठ वजे आ कर पहुंचे। आदमी और घोड़े दोनों ही थक कर चूर हो गए हैं।

जो लोग घायल हुए अथवा मारे गए उनका विवरण-पत्रक साथ में भेज रहा हूं; इसमें जिनको लापता वताया गया है उनको वहुत करके शत्रु पकड़ ले गए हैं या मार डाला गया है। मेरा खयाल है कि एकत्रित होने का विगुल वजने के वाद भी वे लूट की आशा में गांव में ही ठहरे रहे और सूरजमल व उसके साथियों के आस-पास में होने का उनको ध्यान नहीं था।

इस ठाकुर को पकड़ना या नष्ट करना आसान नहीं है क्योंकि मेरे विचार से वह एक के वाद दूसरे मजवूत और सुरक्षित प्रदेश में जाता रहेगा। इस प्रकार →

जब जालिमसिंह और उसके पुत्र में वैर था तब सूरजमल कुवावा में रहा था इसलिए वह वहां के निवासियों से भी नाराज था। उसने ब्रिटिश एजेण्ट को समझाया कि रूपाल का ठाकुर (फतेहसिंह), अहमदनगर के राजा पृथीसिंह और तखतसिंह, जो सतियों के मामले में बाहरवाट हो गए थे, और स्वयं सूरजमल, ये सब कुवावा में मौजूद थे। इसलिए एजेण्ट अपने घुड़सवारों के साथ वहां पहुंचा। जिन चारणों का यह गांव था (जिनमें से एक इस किस्से का बयान करने वाला भी था) उनको साहब के रूबरू बुलाकर पूछा गया कि सूरजमल कहां था? जब उन्होंने कहा "हमें कुछ पता नहीं है" तो गांव पर गोले चलाना शुरू कर दिया गया, किला बरबाद कर दिया गया और गांव को लूट कर जला दिया गया। बहुत से गांववाले तो भाग गए और बहुतों को मवेशियों के साथ पकड़ कर अंग्रेजी सेना के मुकाम पर वड़ाली पहुंचा दिया गया। इसके बाद सूरजमल को पकड़ने के लिए सेना पानौरा पहुंची; वहां पर युद्ध हुआ, जिसमें आक्रमणकारियों का एक अफसर और पचास आदमी मारे गए परन्तु, गांव ले लिया गया और जला दिया गया; वहां के रहने वाले गांव छोड़ कर भाग गए। इसके बाद अंग्रेजों की सेना ने मेवाड़ के गांव मानपुर को जला दिया। इस बीच में सूरजमल सपरिवार पहाड़ियों में भाग गया; उसकी पत्नी जोधीजी बड़ी कठिनाई से उन जंगलों में उसके साथ चल रही थी, उसके पैर कांटों से छिद गए थे और उसकी लड़की को (जो बाद में ईडर के महाराजा जवानसिंह को व्याही थी) को गोदी में लिए लिए चलती हुई वह थक कर चकनाचूर हो गई थी।

जब अंग्रेजी फौज सादड़ा लौट गई तो पानौरा फिर बस गया और सूरजमल अपने परिवार को वहां छोड़ कर कुवावा के समीप किसी स्थान पर चला गया और वहां से यदा कदा ईडरवाड़े पर धावे करता रहा। उस समय सिद्धपुर के एक मठ का अतीत महन्त मर गया इसलिए उसके दो चेलों में उत्तराधिकार का झगड़ा खड़ा हुआ। उनमें से एक का नाम राज भारती था; वह राजपूतों के से कपड़े पहन कर बागी हो गया और सूरजमल से जा मिला। उसने ठाकुर से वादा किया कि अगर वह उसकी मदद करेगा तो उसके सिरबंधियों की तनख्वाह का पैसा जुटाता रहेगा। सूरजमल ने यह बात मंजूर कर ली और सिद्धपुर के आसपास के इलाके पर धावे मारना शुरू कर दिया। एक दिन सूरजमल और राज भारती अठारह सवारों के साथ सिद्धपुर के पास सरस्वती नदी के किनारे ठहरे और रसोई बनवाने लगे;

की स्थिति में केवल दो सौ पैदल सेना लेकर उसके लश्कर पर आक्रमण करना मुझे वाजिब नहीं लगता। इसमें सन्देह नहीं है कि मैं उसको पीछे हटा सकता था परन्तु हमारा अब से दस गुना अधिक नुकसान होता और, मेरे ख्याल से, उससे कोई लाभ भी नहीं हो पाता।

राहगीरों को उन्होंने वताया कि वे ईडर के रहने वाले थे और पालनपुर की यात्रा करने जा रहे थे। शाम होते ही राजपूत नगरसेठ को पकड़ने के इरादे से वाजार में गये परन्तु, उनको उसका पता नहीं लगा। तव वे दूसरे व्यापारी लख्खू सेठ के घर गए और उन्होंने उसके मुनीम से पूछा "तुम्हारे सेठजी कहां हैं? हमको एक हुण्डी भुनवानी है।" गुमाश्ते ने कहा, "हुण्डी का पैसा तो मैं ही चुका दूंगा, इसके लिए सेठजी को कष्ट देने की क्या आवश्यकता है? वे ऊपर भोजन कर रहे हैं।" तव राजपूत अपने घोड़ों से उतर गए और ऊपर जाकर उन्होंने सेठ को पकड़ लिया; वे उसको घर में से गली में घसीट लाए और एक सवार ने घास के गट्ठर की तरह उसको अपने घोड़े पर बांध लिया। इसके वाद वे वाजार में होकर अपने घोड़े दौड़ाते हुए चले गए। अव तो, वाजार में हाय-तौवा मच गई। जव घुड़सवार दरवाजे पर पहुंचे तो उन्होंने किवाड़ों को चूल पर झूलते पाया; एक सवार ने द्वारपाल को गाली देकर तलवार खींच ली तव उसने दरवाजा खोल दिया। अव, सूरजमल और उसके साथी ओड़ा के रास्ते चले गए। गायकवाड़ थाने के अफसर ने कुछ सवारों को उनका पीछा करने भेजा परन्तु उनको इसका कुछ इनाम मिलने की तो आशा थी नहीं इसलिए वे कुछ दूर तक वैसे ही घूमधाम कर वापस आ गए। सूरजमल ओडा से धूआं और वहां से पानौरा चला गया। लख्खू सेठ ने प्रार्थना की कि उसे दुख न दिया जाय और 'फिरौती' की रकम लेकर छोड़ दिया जाय। सूरजमल ने पहली वात तो मान ली परन्तु दूसरी के लिए यह कहकर इनकार कर दिया कि पहले अतीत का मामला तय होना चाहिए। तव महाजन ने सूरजमल को हुण्डियां लिख दीं जिनको उसके आदमियों ने भुनवाकर नकद पैसा वसूल कर लिया और उससे वे अपने व कैदियों के लिए सामान ले आए।

सिद्धपुर के व्यापारियों ने वड़ोदा सरकार से शिकायत की कि लख्खू सेठ को नहीं छुड़ाया जायगा तो वे शहर छोड़कर चले जावेंगे। इस पर गायकवाड़ मन्त्रि-मंडल ने कैप्टेन आउट्रम को लिखा, जो उस समय महीकांठा का ब्रिटिश एजेण्ट था, कि साहूकार को मुक्त कराया जाय। उस अफसर ने ईडर जाकर सभी वाहरवाटियों को आश्वासन देकर बुलवाया कि उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जायगा। सवसे पहले सूरजमल आया और उसने अपनी तलवार फेंक कर एजेण्ट से माफी मांगी। ठाकुर ने कहा, "मेरे सिरवंधिये चढ़ी हुई पगार के लिए तंग करेंगे और मेरे पास अपना गुजारा चलाने को भी कुछ नहीं है।" तव मूंडेटी ठिकाने के गांवों में से दो गांव उसको दे दिए गए और उसने वीस घुड़सवार रखकर वाकी सिपाहियों का वरखास्त कर दिया। ईडर राज्य की तरफ से उसको भीलौड़ा के थाने का कप्तान नियुक्त कर दिया गया और सवारों को भी नौकरी में रख लिया गया। उसके जिलेदारों को भी, जो उसके साथ ही वागी हो गए थे, अपनी अपनी जगह पर फिर से कायम कर दिया गया। उसके साथी राज भारती ने गायकवाड़ सरकार को

आत्म-समर्पण कर दिया। उन्होंने कुछ मास बन्दी रखा और फिर जुर्माने के तौर पर कुछ रकम लेकर सिद्धपुर के महन्त की गद्दी पर बिठा दिया, जहां वह बहुत पैसे वाले की हैसियत से रहता रहा। इसी तरह रूपाल, अहमदनगर और अन्य स्थानों के बाहरवाटियों को अपने अपने घर भेज दिया गया और ईडरवाड़े में शान्ति की संस्थापना हो गई।

सन् 1838 में मूंडेटी का ठाकुर जालिमसिंह मर गया और सूरजमल अपनी पैतृक जागीर का ठाकुर हुआ। उसके भाई शेरसिंह के पास रतनपुर और गोता की जागीर रही।

अंग्रेज दफतर से प्राप्त लेखों के आधार पर महीकांठा के अन्तिम प्रबन्ध विषयक पश्चात् टिप्पणी।

बम्बई सरकार का 17 सितम्बर, 1835 ई० का डिस्पैच।

"जब मिस्टर अर्स्किन पिछली 16 फरवरी को अहमदनगर पहुंचा तो उसके साथ तीन सौ आदमी थे; वे अन्य उपद्रवों को दबाने के लिए आए थे; इस घटना से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। नगर में पहुंचने पर उन्हें खबर मिली कि उस रियासत का राजा कर्णसिंह इतना बीमार था कि वह दिन भी शायद ही निकाल सके। इस पर मिस्टर अर्स्किन ने यह जानने का उद्योग किया कि जिस प्रकार अगस्त, 1833 ई० में ईडर के महाराजा के साथ जबरन सतियों का दाह हुआ उसी प्रकार कहीं यहां भी महाराजा की रानियों को, जिनकी संख्या सात थी, बरबस सती कर देने का विचार तो नहीं चल रहा था। इस विषय में वह कोई सन्तोषप्रद सूचना प्राप्त नहीं कर सका। 6 फरवरी की रात को महाराजा दिवंगत हुआ, परन्तु इस समाचार को दूसरे दिन शाम तक गुप्त रखा गया और उस समय स्पष्ट रूप से चर्चा होने लगी कि सात में से पांच विधवाएं अवश्य ही चिता पर चढ़ा दी जावेंगी। सात तारीख को सुबह मिस्टर अर्स्किन ने दिवंगत महाराजा के सत्रह वर्षीय युवक ज्येष्ठ पुत्र पृथीसिंह और उसके काका के लड़के सुलर के हमीरसिंह को बुलाया और उनसे कहा कि ब्रिटिश सरकार इस अमानवीय प्रथा को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखती है और उसने उनको इस बात से भी सूचित कर दिया कि वह उस अत्याचारपूर्ण रस्म को अपने भरसक प्रयास से रोकने का प्रयत्न करेगा। अंग्रेज सरकार ने पहले-पहले तो इस रिवाज को बर्दाश्त किया, परन्तु बाद में उन्होंने अपने अधीन इलाकों में इसको कानून जुर्म करार दे दिया था। दूसरा पूरा दिन पृथीसिंह और हमीरसिंह ने यह समझाने में व्यतीत कर दिया कि वह एक आवश्यक सामाजिक रिवाज था और उसे पूरा करने दिया जाय। उधर, मिस्टर अर्स्किन लगातार उनको इस बात के लिए मनाते रहे कि वे उसके दृष्टिकोण को समझकर क्रियान्वित करने में सहयोग करें। मिस्टर अर्स्किन को इस बात की बिलकुल खबर नहीं थी कि यह वाद-विवाद सिर्फ समय बिताने के लिए ही बढ़ाया जा रहा था और उधर अहमदनगर जिले के हर गांव

में से सशस्त्र भीलों और बन्दूकचियों को एकत्र करने को आदमी भेजे जा चुके थे जिससे कि बलपूर्वक भी सतीप्रथा को पूरा करवाया जा सके। शाम को सभी दिशाओं से सशस्त्र पुरुषों के टोले के टोले नगर की ओर आते हुए हमारे डेरे में से दिखाई दिए। इस पर अर्स्किन ने अपनी सेना के अफसर को निर्देश दिया कि हर एक आदमी के शस्त्र उतरवाकर रख लिए जावें क्योंकि राजा के दाह-संस्कार में तो इस तरह की सशस्त्र सेना की कोई आवश्यकता नहीं थी इसलिए स्पष्ट था कि उनके एकत्रित होने का इरादा नेक नहीं था। एक या दो टोली के शस्त्र तो यह कहकर उतरवा लिए गए कि दूसरे दिन वापस कर दिए जावेंगे परन्तु इसी बीच में खबर मिली कि किले में सशस्त्र आदमियों की बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गई है और एक पचास या साठ कोलियों, बन्दूकचियों और अन्य आदमियों का जत्था कर्णसिंह के कोटवाल के नेतृत्व में लेफ्टिनेन्ट लेविस (Lieutenant Lewis) के पास होकर निकला, जो नगर के परकोटे के नीचे कवायद करा रहा था; उन लोगों के पास जलते हुए पलीते और चढ़े हुए कामठे (धनुष) थे। उस अफसर ने अश्वारूढ़ कोटवाल को बुलाकर हुक्म सुनाया तथा अपने साथ के सभी आदमियों के शस्त्र उतारकर रख देने को कहा, परन्तु कोटवाल ने तुरन्त ही अपने पीछे आने वालों को लेफ्टिनेन्ट लेविस पर गोली दाग देने की आज्ञा दी। उन लोगों ने बेखटके गोली चला दी और वह लेफ्टिनेन्ट लेविस की पसलियों में पार हो गई। तब वह जत्था तेजी से शहर में घुस गया और तुरन्त ही दरवाजे बन्द कर दिए गए तथा परकोटे पर से हमारे सैनिकों पर गोलियां बरसने लगीं, जो मुश्किल से दो सौ कदम पर ही जमा थे। शहर में तोपें भी थीं जो अगर रात में मोर्चों पर चढ़ा दीं जाती तो हमारा बहुत नुकसान होता इसलिए यही मुनासिब समझा गया कि सेना को कुछ सौ कदम और पीछे हटा देना चाहिए। इसी अवसर पर मिस्टर अर्स्किन ने अहमदाबाद और हरसोल के सैनिक अधिकारियों को तोपें भेजने के लिए लिख दिया था ताकि दरवाजा तोड़कर नगर पर अधिकार किया जा सके। दूसरे दिन (9 तारीख) को सुबह के ढाई बजे तक सब कुछ शान्त रहा परन्तु उसी समय अचानक सूचना मिली कि चिता जला दी गई है। अब उस घातक कर्म को रोकने या उसमें बाधा डालने के लिए बहुत देर हो चुकी थी क्योंकि काम शुरू हो चुका था। इस बर्बर कृत्य के सम्पादकों ने जो विधि अपनाई थी वह सफल हुई और वे अभागिनी स्त्रियां उन हत्यारों के जंगली मनसूबों का शिकार हो गईं। हम मानवीय न्याय-मण्डल के सामने इस भयानक दुष्कार्य का यथावत् वर्णन यहां नहीं कर रहे क्योंकि वह हाशिये में सूचित मिस्टर अर्स्किन के पत्र से अवगत हो जायगा।

"यह रोमांचकारी घटना पूरी हुई। मृतक राजा के दोनों पुत्र कुछ राजपूतों और अन्य लोगों के साथ नगर के बाहर निकले। सुबह-सुबह तो हमारी सेना के प्रति कोई शत्रुभाव प्रकट नहीं किया गया सिवाय इसके कि नादी से पानी लाने वालों पर

ग्राते जाते समय किले में से एक दो बार बन्दूकें चलाई गईं। बहुत से कोली और भील रात को ही अपने-अपने घरों को लौट गए थे। उस समय मिस्टर अर्स्किन को जो समाचार मिले उनसे उसको विश्वास हो गया कि सतियों के दाह का कर्म जोर-ज़ब से किया गया था परन्तु यह सब पृथीसिंह की इच्छा के विरुद्ध हुआ था और उसका विचार तो मि. अर्स्किन की सलाह मान लेने का ही था।

9 तारीख को तीसरे पहर हरसोल से पचास आदमियों की अतिरिक्त मदद आ पहुंची और कप्तान लार्डनर (Captain Lardner) ने, जो उस टुकड़ी का अध्यक्ष था, उसी संध्या को नगर पर अधिकार कर लेने का इरादा किया; यदि निम्नलिखित परिस्थिति उत्पन्न न हो जाती तो ऐसा हो भी जाता।

"सती काण्ड से कुछ मास पूर्व मूंडेटी के ठाकुर जालिमसिंह चौहान के ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल ने उपद्रवकारियों की एक बड़ी भारी टोली इकट्ठी कर ली थी और वह स्वयं उसका नेतृत्व करता था। इस सेना को एकत्रित करने का मुख्य उद्देश्य डूंगरपुर के साहूकार, अहमदाबाद की प्रसिद्ध पेढ़ी के खेमचन्द के भाई को रिहा कराने व हिम्मतसिंह और रूपाल के ठाकुर फतेहसिंह से युद्ध करने का था; इन ठाकुरों से उसका व उसके भाईबन्धुओं का पुराना वैर चला आता था। शत्रुओं के साथ उसकी कुछ असफल झड़पों और सेना द्वारा वेतन के लिए तंग करने के कारण वह मुसीबत में पड़ गया था। रूपाल के ठाकुर ने डूंगरपुर राज्य में जो ज्यादतियां की थीं उनके लिए तुरन्त ही उसको कोई दण्ड नहीं मिला था, इसलिए उसने सोचा कि क्यों न वह भी अपने सिपाहियों को सर्वत्र लूटमार में लगा दे? बाद में, उसने घास-दाणा के गांवों में से दरोवी नामक गांव पर धावा किया और लूट के माल को अपने सिपाहियों में तकसीम कर दिया। उस समय ईडर की व्यवस्था इतनी बिगड़ी हुई थी कि मिस्टर अर्स्किन ने, यह खबर मिलने पर, इन सब बातों का निपटारा हो जाने तक इन्तजार करने के बाद ही सूरजमल से निपटना उचित समझा। अतः उस समय तो उसने सूरजमल के नाम एक शिक्षाप्रद पत्र ही लिख दिया। परन्तु, कुछ ही समय बाद उसको सूचना मिली कि सूरजमल ने नान्हीं मारवाड़ में घास-दाणा के दूसरे गांव हरसोल पर धावा बोल दिया है। इस पर मिस्टर अर्स्किन ने उस पर पांच मोसल भेज दिए और तुरन्त ही सिरबन्धी खतम करने की ताकीद की। उसने पांचों मोसलों को तो विदा कर दिया और सिरबन्धी खतम करने के लिए साफ इनकार कर दिया। इस पर बीस मोसल भेजे गए परन्तु इसका भी कोई परिणाम नहीं निकला।

सूरजमल द्वारा अपने डेरे से लौटाए हुए पांच मोसलों में से एक ने 9 फरवरी को शाम के चार बजे आकर खबर दी कि वह (सूरजमल) बखतपुर के पास अहमदनगर से चार मील दूर, लगभग एक हजार मकरानियों और साठ या सत्तर

सवारों सहित अंग्रेजी सेना से मुकावला करने को तैयार खड़ा है। यह सूचना मिलने पर मिस्टर अर्स्किन ने अपनी टुकड़ी के अफसर को सलाह दी कि वह कुछ समय तक अहमदनगर के विरुद्ध कोई कार्रवाई न करे और उसने उत्तरी विभाग के सेनानायक को निर्देश दिया कि वह सूरजमल की सेना को व उस से उत्पन्न गड़वड़ियों को दवाने के लिए अपनी इच्छानुसार पर्याप्त मदद तुरन्त भेज दे।

3 मार्च को अंग्रेजी सेना ने अहमदनगर शहर पर कब्जा कर लिया और 6 मार्च को मिस्टर अर्स्किन ने लिखा कि वह जल्दी ही महीकांठा का वन्दोवस्त कर सकेगा।"

वम्बई सरकार का 15 अक्टूबर, 1835 का डिस्पैच

इस प्रकार महीकांठा में उपद्रवकारियों के तीन दल थे; पहला, पृथीसिंह और उसके साथी; दूसरा, रूपाल का ठाकुर और घोड़वाड़ का ठाकुर तथा उनके साथी; और तीसरा, सूरजमल और उसके साथी।

कैप्टेन डेलामेन (Captain Delamain) दो सौ पैदल, एक घुड़सवारों की टुकड़ी और एक सौ पचास गायकवाड़ के पायगों (घोड़ों) की मिली-जुली सेना लेकर सूरजमल पर हमला करने को रवाना हुआ और 17 फरवरी को ईडरवाडा में वड़ाली नामक स्थान पर पहुंचा, जहां सूरजमल का डेरा था। वहां जाने पर मालूम हुआ कि वह भागकर दो मील दूर गोता गांव में चला गया जहां उसका भाई शेरसिंह रहता था, इसलिए डेलामेन उस गांव के लिए चल पड़ा। गांव ले लिया गया, शत्रु के चार या पांच आदमी मारे गये और वचे हुए पचीस या तीस आदमियों को वन्दी वना लिया गया। परन्तु, हमारा भी वहुत भारी नुकसान हुआ; 17वीं रेजीमैण्ट एन. आई. का लेफ्टिनेण्ट पॉटिन्जर मारा गया। यह शोकपूर्ण परिणाम इसलिए हुआ कि वहां पर एक सुदृढ़ गढ़ी थी जिसके रक्षकों ने जी-जान से वचाव किया और हमारी सेना के पास तोप नहीं थी क्योंकि रवाना होते समय यह नहीं सोचा गया था कि उसका भी काम पड़ सकेगा................

जब युद्ध के लिए और सेना आ गई तो रूपाल के ठाकुर के विरुद्ध कार्रवाई आरम्भ की गई। 1835 ई. की फरवरी खतम होते-होते हमारी फौजों ने कानौरा और दोढर गांव ले लिए जिसमें अपना कोई नुकसान नहीं हुआ; दोढर के पास ही एक गुसांई का मठ भी अधिकार में आ गया और 5 मार्च, 1835 ई. को पीरमली पर भी अधिकार हो गया। ये सव रूपाल के भीलों के गढ़ थे जिन पर दुर्दम्य वाहर-वाटियों ने अधिकार कर लिया था। रूपाल गांव पर भी हमारी फौजों ने कब्जा कर लिया।....रूपाल के वागियों को तितर-वितर कर देने के वाद मेजर मोरिस (Major Morris) की अध्यक्षता में 24वीं पलटन एन. आई. ने सूरजमल के विरुद्ध अभियान चालू किया और 11 मार्च को मूंडेटी के पास की पहाड़ियों में गोरल के सामने जा डटीं जो उसके मुख्य गढ़ों में समझा जाता था। सेना ने गढ़ पर अधिकार कर लिया

श्रौर किलेदारों को खदेड़ दिया; इस झड़प में शत्रु के आठ आदमी मारे गए और सत्रह-अठारह घायल हुए। सूरजमल तो पहले ही वहां से भाग गया था और उसका भाई शेरसिंह ही दो सौ या ढाई सौ मकरानियों के साथ बचाव कर रहा था।.... मार्च, 1835 ई. के मध्य तक सूरजमल और उसके साथियों का पीछा करती हुई हमारी सेना पहाड़ी इलाके में और भी आगे घुस गई और उसने फारकी, पानौरा, मानपुर व बादरवाड़ा के गढ़ों को वरवाद कर दिया अथवा उन पर कब्जा कर लिया। पानौर गांव में एक भील सरदार का रहठाण था; वह बहुत समय से आसपास के प्रदेश के लिए हौवा बना हुआ था और सूरजमल का तो आज्ञावर्ती पक्का सहयोगी था। इन लड़ाइयों में हमारी 17वीं रेजीमेण्ट, एन. आई. का अफसर लेफ्टिनेण्ट क्रुइकशेंक (Lieutenent Cruikshank) और सत्रह सिपाही घायल हुए और शत्रु के लगभग 370 आदमी मारे गए या जख्मी हुए।

"हम स्वीकार करते हैं कि इस पत्रावली में वर्णित घटनाओं और प्रयत्नों ने हमारे मनों पर बहुत ही दुखद प्रभाव के चिह्न अंकित किए हैं; इस अत्यन्त पथरीले, दुरूह और अनजाने प्रदेश में सेना ने असह्य कष्टों को झेलकर तथा अथक परिश्रम करके, सामने आने वाले सशस्त्र दलों को तो भगा दिया परन्तु अभी तक उनके सरदार नहीं पकड़े जा सके और यहां पर वह स्थिति अब तक बनी हुई है जिसमें कोई भी उत्साही मनुष्य किसी भी समय लूटपाट और बरवादी के कामों के लिए मनचाही सशस्त्र सेना एकत्रित करके उसका अगुआ बन सकता है। इन इलाकों की अधिकांश प्रजा, वास्तव में लड़ाकू है-और यद्यपि वे लोग लगातार लूटमार नहीं कर पाते हैं तो भी इन कामों के लिए उनकी इच्छा बनी ही रहती है। परिस्थिति यह है कि हमको तो इस प्रदेश की अधिक जानकारी नहीं है और यहां कदम-कदम पर ऐसे विकट स्थान हैं जहां थोड़े से ही उत्तम शस्त्रधारी वीर अपने से बहुत अधिक संख्या वाले सैनिकों को आसानी से रोक सकते हैं, इसलिए इन सरदारों से वर्तमान में जो हमारे सम्बन्ध हैं, उनमें और हमारे प्रभाव में वृद्धि नहीं हुई तो हमको इतने सारे दुर्दम्य उपद्रवियों को शान्त रखने की आशा तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक कि हम बहुत बड़ी सेना न रखें और प्रान्त में जगह-जगह थाने कायम करके उनका जाल न बिछा दें, जिस पर अत्यधिक खर्चा करना अनिवार्य होगा।

"इन वातों से हमारे मन में यह विचार आता है कि इस प्रान्त का पूरी तरह से सर्वेक्षण कराया जाय और हमारे प्रेसिडेण्ट (सर रावर्ट ग्राण्ट) ने यह सलाह दी है, जिसमें मण्डल (बोर्ड) के दूसरे सदस्यों की भी राय शामिल है, कि महीकांठा के लड़ाकू स्वभाव के लोगों पर ऐसी हुकूमत वैठाने का यत्न किया जाय जिससे मुल्क में अमन कायम हो सके और अन्तिम रूप से इनको सभ्य वनाने का बीज उसी प्रकार बोया जाय कि जिस तरह हमने खानदेश में कार्य किया और हमें सफलता प्राप्त हुई।"

बम्बई सरकार की पत्रावली, दिनांक 31 दिसम्बर, 1835 ई.

"कप्तान आउट्रम (अब मेजर जनरल सर जेम्स आउट्रम के. सी. बी. अवध के मामलों के चीफ कमिश्नर) की खानदेश में की हुई सेवाएं और कुछ वर्षों पहले डांग प्रदेश में शान्ति संस्थापना के प्रसंग में प्रदर्शित सूझबूझ एवं योग्यता को देखते हुए लगता है कि यह अधिकारी इस विश्वस्त कार्य के लिए उपयुक्त सिद्ध होगा। इन परिस्थितियों में हमारे प्रेसिडेण्ट ने प्रस्ताव किया है कि कप्तान आउट्रम को आज्ञा दी जावे कि वह उपर्युक्त सुझावों के आधारभूत निर्देशों को समझकर तुरन्त गुजरात के लिए रवाना हो जावे।"

बम्बई सरकार का डिस्पैच, तारीख 15 मई, 1836 ई.

"स्वयं कप्तान आउट्रम अपनी 14 नवम्बर, 1835 ई. की योग्यतापूर्ण एवं मनोरंजक रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त करता है कि महीकांठा के असन्तुष्ट और उपद्रवी सरदारों को संतुष्ट करना चाहे कितना ही आवश्यक हो परन्तु उनमें से कितने ही ऐसे हैं जिनके प्रति दयाभाव प्रकट करना नितान्त असंभव है; ये वे लोग हैं जिन्होंने ब्रिटिश हुकूमत का प्रत्यक्ष विरोध किया है; इनको कड़ा दण्ड देकर दूसरों के लिए उदाहरण सामने रख देना चाहिए; इनको बागी घोषित करके, ये जहां भी मिलें, पहचाने जावें या पकड़े जावें तो, कोर्ट मार्शल (फौजी अदालत) में पेश करके डंके की चोट फांसी की सजा दे दी जाय। कप्तान आउट्रम की इन भावनाओं का पोलिटिकल कमिश्नर ने भी समर्थन किया है और कतिपय दूसरे अधिकारियों ने भी, जिनकी यह राय और भी अधिक गौरवपूर्ण और मानने लायक है कि महीकांठा में शान्ति स्थापित करने के लिए इन लोगों का दमन करना अत्यावश्यक है।"

"इस विषय पर आवश्यक विचार करने के उपरान्त हमने इसके विपरीत नीति पर चलने का निश्चय किया और गए समय में जो कुछ हुआ उसके लिए क्षमा प्रदान करने की घोषणा कर दी—परन्तु, वह इस शर्त के साथ कि जो बाहरवाटिए बाहर हैं वे उपस्थित होकर भविष्य में शान्त भाव से रहने की जमानत दें। हमें, आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह नीति तो पूर्णतया सफल होगी ही और साथ ही यह भी कि इसके अलावा और कोई भी प्रयत्न महीकांठा में शान्ति स्थापित करने में सफल नहीं हो सकता।................

"पहली बार तो हमारे विचार में यह है कि मुख्य बाहरवाटियों या बागियों ने यह नियम विरुद्ध मार्ग अपनी विशुद्ध इच्छा या रुचि से नहीं अपनाया है वरन् पारिवारिक झगड़ों, अत्याचारों अथवा ब्रिटिश नीति के द्वारा खड़ी की गई मुसीबतों के कारण ही वे इसमें पड़ गए हैं। इस विषय में हमको जो जानकारी मिली है वह अपने आप में परिपूर्ण नहीं है परन्तु यह विश्वास करने का दृढ़ प्रमाण मौजूद हैं कि महीकांठा में जो गड़बड़ियां उत्पन्न हुई हैं और लम्बे समय तक चलती रहती उनके मूल कारणों में से यह भी एक है अथवा यही मात्र मूल कारण है।

"दूसरे, हमारा ख्याल है कि जिस कठोर दण्ड व्यवस्था के लिए कप्तान आउट्रम और अन्य अधिकारियों ने अनुरोध किया है और कहा है कि पूर्णतया शान्ति स्थापना के लिए इसकी सर्वप्रथम आवश्यकता है, वह तो पहले ही हो चुकी है। गत वर्ष की सैनिक कार्यवाहियों में, यद्यपि बाहरवाटियों में से कोई भी हमारे हाथ नहीं आया, परन्तु उनकी ताकत तो तोड़ ही दी गई है; उनके साथी तितर-बितर हो गए, उनके कुछ गढ़, नगर और गांव जला दिए गए या दूसरी तरह बरबाद कर दिए गए और उनके सिपाहियों में से बहुत से मारे गए, जख्मी हो गए या कैद कर लिए गए हैं।

बम्बई सरकार के 26 अप्रेल, 1837 के डिस्पैच का सार

कैप्टेन आउट्रम ने महीकांठा के राजनीतिक प्रतिनिधि (Political Agent) का कार्यभार 20 जनवरी, 1836 ई. को सम्हाला। 7 फरवरी को सरकार द्वारा समझौता-नीति के निर्देशानुसार उसने सभी बाहरवाटियों को पत्र लिखे कि वे उसके डेरे में आकर मिलें जिससे कि उनके द्वारा किये गये कार्यों को किन्हीं शर्तों पर क्षमा करके भविष्य के लिए समझौता किया जा सके। पत्रों में उपस्थिति के लिए जो तिथि निश्चित की गई थी उसकी अवधि सूरजमल की सुविधा के लिए दस दिन और बढ़ाई गई और वह ठाकुर 8 मार्च को एजेण्ट के डेरे पर हाजिर हुआ। उसने पश्चात्ताप प्रकट किया और माफी मिल जाने पर जमानत दाखिल करने का करार किया। इसके बाद वह जमानत तलाश करने व अपने सैनिकों को सीख देने के लिए चला गया।

इसके दस दिन बाद जब कैप्टेन आउट्रम सिद्धपुर पहुंचा तो ईडर से एक सन्देशवाहक ने आकर कहा, "कोई तीन मास पूर्व हमारे गांव का एक व्यापारी पकड़ लिया गया था, आप उसको छुड़ाने में मदद करें।" इस पर ब्रिटिश एजेण्ट ने तुरन्त ही सूरजमल के नाम पत्र लिखा कि व्यापारी को तीन दिन के अन्दर-अन्दर छोड़ दिया जाय, यदि इस निर्देश का पालन नहीं किया गया तो जो माफी दी गई है वह रद्द कर दी जावेगी। सरकार ने इस कार्यवाही को बिल्कुल पसन्द नहीं किया और सर राबर्ट ग्राण्ट ने टिप्पणी करते हुए लिखा "मुझे शुरू से ही डर था कि कैप्टेन आउट्रम को जिस कार्य के लिए तैनात किया गया है उसमें वह सैनिक कार्यवाही का ही रुख अधिक अपनावेंगे।" इसी बीच में सूरजमल ने उत्तर भेजा कि जिस अतीत को उसने व्यापारी को पकड़ने में साथी बनाया था वही उसको अपने साथ ले गया इसलिए वह उसे पेश करने में मजबूर था। ऐसा उत्तर प्राप्त होने पर भी एजेण्ट उस व्यापारी को पेश करने पर बल देता रहा तो विवश हो कर सूरजमल को पानोरा जाकर आश्रय ग्रहण करना पड़ा। इस पर कैप्टेन आउट्रम ने तुरन्त ही उस ठाकुर को बागी घोषित कर दिया और उसका सर काट कर लाने वाले के लिए इनाम का ऐलान कर दिया और सेना की एक टुकड़ी उसका पीछा करने को रवाना कर दी। जब सेना रवाना हो गई तो पानोरा के राजा को आशंका हुई कि सन् 1835 ई.

के मार्च मास में जिस तरह उसका गांव बरवाद कर दिया गया था उसी तरह फिर नष्ट कर दिया जायेगा इसलिए उसने सूरजमल को सहायता या संरक्षण देने से साफ इनकार कर दिया। अतः उस ठाकुर ने तुरन्त आत्मसमर्पण कर दिया। सरकार ने बयान दिया "हालां कि कैप्टेन आउट्रम के जोशीले लेकिन कुछ सख्ती के कदम से जो खुश-किस्मत नतीजा हासिल हुआ है उस पर खुशी जाहिर किए विना नहीं रह सकते लेकिन हम सूरजमल को बागी करार देने को सख्ती का कदम और फौजों की रवानगी को गैर-जरूरी समझते हैं; फिर भी, यह सब काम ऐसी होशियारी के साथ पूरा हुआ है जिसको कैप्टेन आउट्रम ही कर सकते थे; हम इसकी दाद देते हैं। इसलिए हमने उनको सूचित कर दिया है कि हम तहे दिल से और खुशी के साथ मंजूर करते हैं कि यह सफलता उनके द्वारा निर्देश का पालन करने के कारण नहीं, वल्कि उसका उल्लंघन करने के कारण प्राप्त हुई है; साथ ही, उनको इस बात के लिए भी पाबन्द कर दिया है कि भविष्य में हमारे निर्देशों को पूरी तरह ध्यान देकर समझें और तदनुसार ही उनका पालन करें।

मई मास की 7 तारीख को सूरजमल (जो इस बीच में प्रतिज्ञा-मुक्त कैदी था) सिद्धपुर के व्यापारी को लेकर पोलिटिकल एजेण्ट के सामने हाजिर हुआ विगत घटनाओं के बारे में उन दोनों के बयान समान थे इसलिए कैप्टेन आउट्रम ने सूरजमल को बिना जुर्माने के गिरफ्तारी से मुक्त कर देना ही उचित समझा; इस अनपेक्षित सहृदयतापूर्ण व्यवहार के कारण वह ठाकुर वहुत आभारी प्रतीत हुआ।

सरकार लिखती है, "सूरजमल को जब से माफी दी गई है तब से उसके व्यवहार में जो परिवर्तन आया है उसकी सूचना देने में हमको खुशी होती है; और सम्माननीय मण्डल (Court) को यह लिखते हुए भी हमें हर्ष का अनुभव होता है कि महीकांठा में पुनः शान्ति स्थापना और व्यवस्था कायम करने में उसके प्रयत्न कैप्टेन आउट्रम के प्रयासों में सम्मिलित हो गए हैं। वाहर-वाटिया खूमला का विनाश और उसकी भयानक टोली को विखेरने में जो सफलता मिली है उसमें अधिक श्रेय इसी ठाकुर की सहायता को मिलना चाहिए।

'पहली सितम्बर, 1836 ई. से पहले-पहले बचे हुए धाड़ैतियों ने भी आत्मा-सम्पर्पण कर दिया और उदयपुर से ईडर तक पानौरा होकर नई सड़क चालू हो गई; यह एक वड़ा काम हो गया। सभी सम्बद्ध सरदारों ने यह स्वीकार कर लिया है कि एक नियत समय तक वे इस मार्ग के यात्रियों से चुगी वसूल नहीं करेंगे।

'पानौरा में ठहर कर पोलिटिकल एजेण्ट ने जो गांवों के सीमा सम्बन्धी विवाद निपटाने में प्रयास किए है वे वहुत सफल हुए हैं; एक खून का झगड़ा तो पीढ़ी-दर-पढ़ी कोई चालीस वर्षो से चला आ रहा था। पहाड़ियों के जंगली हिस्सों में उसकी इस उपस्थिति से एक यह भी लाभ हुआ कि सीमावर्ती ठाकुरों को धीरज और विश्वास देने का भी उसको अच्छा अवसर मिल गया क्योंकि इससे पहके उन

लोगों ने यूरोप-वासियों को अपनी सेना के सम्मुख शत्रुभाव के अतिरिक्त और किसी रूप में नहीं देखा था। उसने कई ऐसे झगड़े और विवाद भी निपटाए जो कई वर्षों से चले आ रहे थे और जिनके विषय में गुजरात के राजनीतिक अधिकारियों से एक कभी खत्म न होने वाली खतो-किताबत चल रही थी। कैप्टेन आउट्रम ने उन लोगों में अपने प्रति ऐसा विश्वास उत्पन्न कर दिया था कि बहुत से बाहरवाटियां भी अपने आप उसकी मध्यस्थता के लिए प्रार्थना करते थे।

'इस प्रत्र को समाप्त करते हुए स्वयं कैप्टेन आउट्रम के दिनांक 30 अप्रेल 1836 के पत्र में से अनुच्छेद उद्धृत करने में भी हमें हर्ष होता है, जिसमें उसने उस मित्रतापूर्ण व्यवहार का उल्लेख किया है जो, उसके मेलमिलाप-पूर्ण प्रयत्न के कारण, अंग्रेजी सेवाओं को, आवागमन के समय, इन इलाकों में प्राप्त हुआ है :—

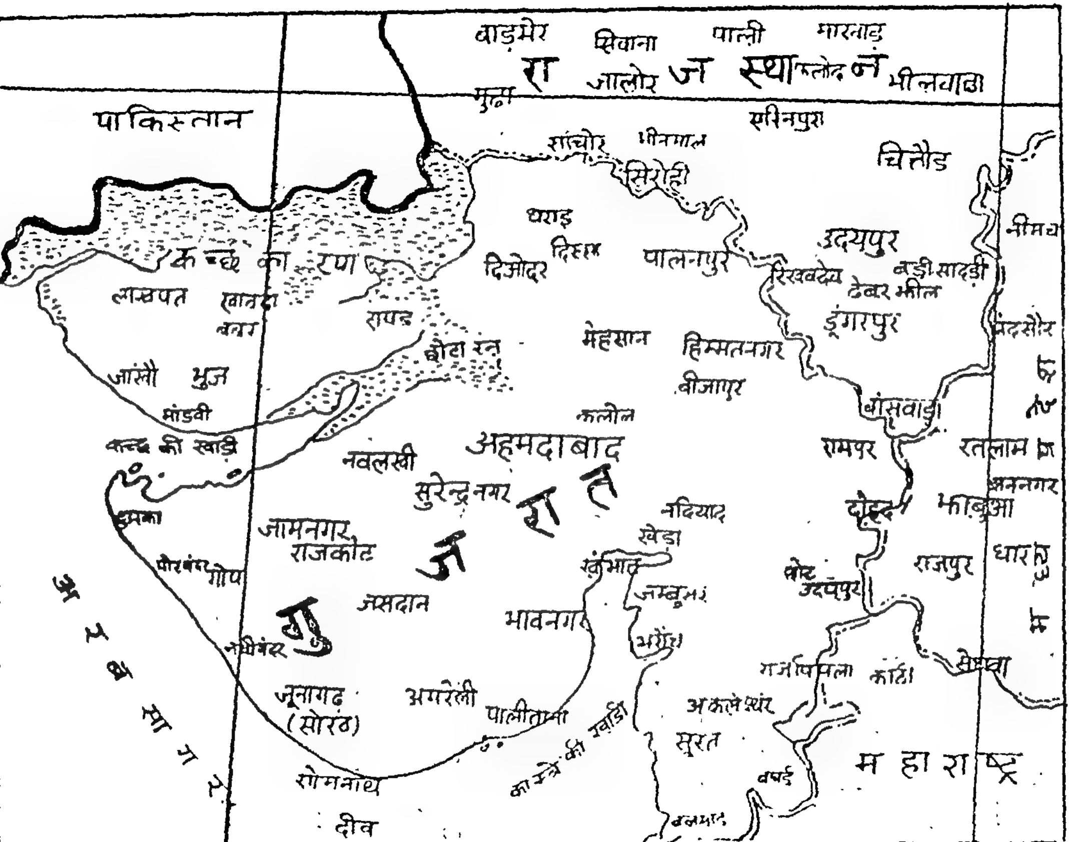
"हमारी सेनाएं इन प्रान्त में, शत्रुओं की तरह नहीं मित्रों की तरह गुजरी। जो भील पहले सैनिकों को देखते ही भाग ज ते थे अब वापस आ गए और जिस तरह का सद्-व्यवहार उनके साथ किया गया उसे देखकर चकित रह गए। अथवा, पहले जब उनके गाँव के पास फौजी दस्ते ठहरते तो वे डर के मारे सामने भी नहीं आते थे परन्तु अब की बार लौटने पर जब उन्होंने देखा कि उनकी अनुपस्थिति में कोई नुकसान नहीं हुआ है तो वे दंग रह गए। सेना के आदमियों और ग्रामवासियों में व्यक्तिगत सम्पर्क भी स्थापित किए गए जिसका परिणाम यह देखा गया कि लौटते समय सेना को बहुत ही प्रसन्नता एवं विश्वासपूर्ण व्यवहार प्राप्त हुआ। वास्तव में, इस वर्ष महीकांठा में जो सेना का दौरा हुआ उससे शान्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ है; और, इस बार सेना के आगमन को यहां वरदान के रूप में ग्रहण किया गया है, देश पर आफत समझ कर उसको दूर टालने के प्रयत्न नहीं किए।

इस प्रकार गुजरात के आरम्भिक इतिहास काल से लेकर यहां पर मरहठों और तदनन्तर ब्रिटिश के आगमन एवं सत्ता संथापन तक का ऐतिहासिक वृत्तान्त अलेक्जैण्डर किनलॉक फार्बस की रासमाला के तीन भागों में स्थानीय रास साहित्य को आधार बनाकर संकलित किया गया है। सन् 1854 में पुस्तक पूरी करके फार्बस स्वदेश चले गए और बाद में लौट तो दूसरे कार्यों में लग गए, ऐसी दशा में वह इसी समय तक का इतिहास लिख सके परन्तु एक जिज्ञासु और अध्ययनशील अंग्रेजी विद्वान होने के नाते उन्होंने इस प्रदेश की संस्कृति का भी विस्तृत अध्ययन किया जो रास-माला का चतुर्थ भाग है। भारत के विभिन्न प्रदेशों की संस्कृति, स्थान, काल एवं सम्पर्क भेद से यद्यपि विविध रूप से विकसित हुई परन्तु मूलभूत भारतीय संस्कृति इन सभी प्रान्तों की विविधता में सूक्ष्म रूप में विद्यमान है। अतः किसी भी प्रान्त की संस्कृति के अध्ययन से भारतीय संस्कृति की आत्मा का दर्शन किया जा सकता है। फार्बस लिखित यह अध्ययन आवश्यक टिप्पणियों सहित पृथक रूप से प्रकाशित हो रहा है।

●●

अनुक्रमणिका

आधुनिक गुजरात



बाड़मेर
सिवाना
पाली
मारवाड़
रा ज स्था न
जालोर
भीलवाड़ा
पाकिस्तान
एरिनपुरा
सांचोर
भीनमाल
सिरोही
चित्तौड़
नीमच
थराद
दिसा
दियोदर
पालनपुर
उदयपुर
ऋषभदेव
बड़ी सादड़ी
ढेबर झील
डूंगरपुर
मंदसौर
कच्छ का रण
लखपत
खावड़ा
बन्नी
रापड़
छोटा रन
महेसाना
हिम्मतनगर
बीजापुर
जांखौ
भुज
मांडवी
कलोल
बांसवाड़ा
कच्छ की खाड़ी
नवलखी
अहमदाबाद
रामपुर
रतलाम
गु ज रा त
सुरेन्द्रनगर
नडियाद
दोहद
झाबुआ
जामनगर
राजकोट
खेड़ा
खंभात
पोरबंदर
गोप
जसदान
भावनगर
जम्बुसर
छोटा उदयपुर
राजपुर
अ र ब सा ग र
भरूच
नर्मदा
जूनागढ़
(सोरठ)
अमरेली
पालीताणा
अंकलेश्वर
सूरत
म हा रा ष्ट्र
सोमनाथ
दीव